देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला—१६

प्रकाशक
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

निवेदन

इस ग्रंथ के प्रथम भाग में इसके मूल फारसी ग्रंथ का तथा ग्रंथकार का परिचय दिया जा चुका है और उसी भाग की भूमिका में लगभग चालीस पृष्ठों में मुग़ल-राज्य संस्थापन से पानीपत के तृतीय युद्ध तक का संक्षिप्त इतिहास भी दे दिया गया है, जिससे एक एक सर्दार की जीवनी पढ़ने पर यदि कोई घटना अशृंखलित-सी जान पड़े तो उसकी सहायता से इसकी शृंखला ठीक ज्ञात हो सकेगी। प्रथम भाग में केवल हिंदू सर्दारों की इक्यान्नबे जीवनियाँ अलग कर संगृहीत कर दी गई हैं। मुसल्मान ग्रंथकर्ता ने हिंदुओं के संबंध में जानकारी की कमी से अतीव संक्षिप्त जीवनियाँ लिखी हैं और इस कारण अस्पष्ट स्थलों पर पाद-टिप्पणियाँ देना आवश्यक हो गया। इसीलिए प्रथम भाग में यथाशक्ति काफी टिप्पणियाँ दी गई हैं पर मुसल्मान सर्दारों की जीवनियाँ ग्रंथकार ने स्वतः विशेष विस्तृत लिखी हैं, जिससे टिप्पणियों की अधिक आवश्यकता नहीं रह गई है। यह ग्रंथ यों ही इतना विशद है कि टिप्पणियाँ देकर इसे अधिक विशद बनाना उचित नहीं ज्ञात हुआ। तब भी कहीं-कहीं अत्यावश्यक टिप्पणियाँ दी गई हैं। पहिले चार भाग में इसे प्रकाशित करने का निश्चय किया गया था पर अब एक भाग और बढ़ाना पड़ा। यह पूरा ग्रंथ तीन सहस्र पृष्ठों से अधिक होगा।

मुसल्मान सर्दारों की छः सौ से अधिक जीवनियाँ इस ग्रंथ में दी गई हैं, जिनमें से द्वितीय भाग में एक सौ चौवन

जीवनियाँ तथा तीसरे भाग में एक सौ उनसठ जीवनियाँ संकलित हो चुकीं। अब सवा तीन सौ जीवनियाँ बची हैं जो चौथे तथा पाँचवें भाग में दी जायँगी। इनमें मुग़ल साम्राज्य के प्रधान मंत्री, प्रसिद्ध सेनापति, प्रांताध्यक्ष आदि सभी हैं, जिनके वंश-परिचय, प्रकृति, स्वतः उन्नयन के प्रयत्न आदि का वह विवरण मिलता है, जो बड़े-से-बड़े मुग़ल-साम्राज्य के इतिहास में प्राप्त नहीं हो सकता। इसके पठन-पाठन से इतिहास प्रेमियों का बहुत कुछ कौतूहल शांत हो सकता है। यह ग्रंथ भारत-विषयक इतिहास-संबंधी फारसी या अरबी ग्रंथों में अद्वितीय है और विस्तृत होते भी बड़ी छान-बीन के साथ लिखा गया है।

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला ट्रस्ट सन् १९१८ ई० में स्थापित हुआ और उसके कुछ ही दिन बाद इस ग्रंथ के हिंदी अनुवाद का इस माला में प्रकाशित किए जाने का निश्चय

माला का परिचय

जोधपुर के स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ इतिहास और विशेषतः मुसलिम-काल के भारतीय इतिहास के बहुत बड़े ज्ञाता और प्रेमी थे, तथा राजकीय सेवा के कामों से वे जितना समय बचाते थे, वह सब वे इतिहास का अध्ययन और खोज करने अथवा ऐतिहासिक ग्रंथ लिखने में ही लगाते थे। हिंदी में उन्होंने अनेक उपयोगी ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे हैं जिनका हिंदी-संसार ने अच्छा आदर किया है।

श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद की बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि हिंदी में ऐतिहासिक पुस्तकों के प्रकाशन की विशेष रूप से व्यवस्था की जाय। इस कार्य के लिए उन्होंने ता० २१ जून १९१८ को ३५०० रुपया अंकित मूल्य और १०५०० रु० मूल्य के बम्बई बंक लि० के सात हिस्से सभा को प्रदान किये थे और आदेश किया था कि इनकी आय से उनके नाम से सभा एक ऐतिहासिक पुस्तकमाला प्रकाशित करे। उसीके अनुसार सभा यह 'देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला' प्रकाशित कर रही है। पीछे से जब बंबई बंक अन्यान्य दोनों प्रेसीडेंसी बंकों के साथ सम्मिलित होकर इंपीरियल बंक के रूप में परिणत हो गया, तब सभा ने बंबई बंक के हिस्सों के बदले में इंपीरियल बंक के चौदह हिस्से, जिनके मूल्य का एक निश्चित अंश चुका दिया गया है, और खरीद लिए और अब यह पुस्तकमाला उन्हींसे होनेवाली तथा स्वयं अपनी पुस्तकों की बिक्री से होनेवाली आय से चल रही है। मुंशी देवीप्रसाद का वह दान-पत्र काशी नागरीप्रचारिणी सभा के २६वें वार्षिक विवरण में प्रकाशित हुआ है।

विषय-सूची



बैठे हुए— मुहम्मदशाह बादशाह

पीछे—मुज़फ्फरखाँ, बुर्हानुल्मुल्क सआदतख़ाँ, रोशनुद्दौला ज़फ़रखाँ।

सामने—निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह, एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ, मज़ोमुल्ला खाँ, समसामुद्दौला खानदौराँ खाँ, राजा जयसिंह, सवाई।

(ऊपर से)

मुग़ल दरबार

अथवा

मआसिरुल् उमरा



१. क़ज़िलबाश खाँ अफशार

यह क़ादिर आक़ा के पुत्र तह्मास्प बेग का पुत्र था, जो कुछ समय तक ईरान के शाह इस्माइल सफ़वी का वकील था। यह समुद्र के मार्ग से हिंदुस्तान आकर बीजापुर पहुँचा। वहाँ के सुलतान इब्राहीम आदिल खाँ ने इसको एतमाद खाँ की पदवी देकर अपना सेनापति बनाया। शाहजहाँ के राज्य के पाँचवें वर्ष में बादशाही सेवा में आकर इसने दो हजारी १००० सवार का मनसब, क़ज़िलबाश खाँ की पदवी और बीस सहस्र रुपए पुरस्कार पाए। छठे वर्ष शाहज़ादा शुजाअ के साथ दक्षिण में परिंदः दुर्ग विजय करने गया। शाहज़ादा ने खानजमाँ को सेना का अग्गल नियत कर आगे भेजा और स्वयं उसी ओर पीछे-

पीछे चला। जब बुर्हानपुर के पास सेना पहुँची तब क़िज़िलबाश खाँ को एक सहस्र सवार के साथ शाहगढ़ में मार्ग की रक्षा के लिए नियुक्त किया। इसके अनंतर नवें वर्ष में बादशाह दक्षिण पहुँचे और जब तीन सेनाएँ तीन बड़े सरदारों की अधीनता में साहू भोसला को दंड देने और आदिलशाही राज्य पर अधिकार करने को भेजी गईं तब इसका मनसब ढाई हजारी ५०० सवार तक बढ़ाकर इसे खानदौराँ के साथ नियत किया। दसवें वर्ष में इसका मनसब बढ़कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया और यह बरार के अंतर्गत पाथरी का थानेदार नियत हुआ। १३वें वर्ष में मनसब में एक हजार सवार की उन्नति के साथ यह सैयद मुर्तजाखाँ के स्थान पर अहमदनगर दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। १५वें वर्ष में इसे डंका मिला। १८वें वर्ष में खानदौराँ खाँ की प्रार्थना पर इसके मंसब के ५०० सवार दोअस्पा सेअस्पा नियत हुए। २२वें वर्ष (सन १०५८ हि०, सन १६४८ ई०) में यह अहमदनगर में मर गया। प्रगट में यह कठोर स्वभाव का ज्ञात होता था। अच्छे स्वभाव तथा

ही में पैदा हुआ था और सीधे ईरान से यहाँ आया था। पिता की मृत्यु पर उसका मनसब एक हजारी १००० सवार का हो गया और बरार में बालापुर का फौजदार नियत हुआ। ३०वें वर्ष (सन् १६५६–५७ ई०) में बरार के अंतर्गत बालाघाट के जफ़र नगर का दुर्गाध्यक्ष रहते हुए मर गया। एरिज खाँ, जो क़िज़िलवाश खाँ के पुत्रों में सबसे योग्य था, तथा अन्य चार भाई हिंदुस्तान में एक पेट से पैदा हुए थे। पिता की मृत्यु पर एरिज खाँ डेढ़ हजारी मनसब और खाँ की पदवी पाकर अपने पिता के स्थान पर अहमदनगर का अध्यक्ष नियुक्त हुआ। मिर्ज़ा रुस्तम संगमनेर का फौजदार हुआ, जिसे औरंगजेब के समय में ग़ज़नफर खाँ[1] की पदवी मिली। मिर्जा बहराम बालाघाट बरार के देवल गाँव का थानेदार नियत हुआ और औरंगजेब का पक्ष लेने से इसे पिता की पदवी मिली। मिर्जा हाशिम विद्या तथा लेखन कला में योग्य था। मुहम्मद रज़ा अल्पवयस्क था। क़िज़िलवाश खाँ के सगे लोगों में एक मिर्जा सिकंदरबेग था, जिसका पिता सुलतान बायसन्कर उक्त खाँ का चचेरा भाई था। यह शाह अब्बास सफ़वी की ओर से मक़ाज़रू का दुर्गाध्यक्ष था। यह दुर्ग ईरान की सीमा पर है। शाह सफ़ी के समय रूमियों से युद्ध करने में इसपर दोष लगाया गया और इसे व्यर्थ प्राणदंड मिला। इसका बड़ा पुत्र कैद होकर रूम गया था

१. औरंगजेब के समय अल्लाहवर्दी खाँ के एक पुत्र को भी गजनफर खाँ की पदवी मिली थी, जो सन् १६६७ ई० में मरा था। इसके बाद मिर्जा रुस्तम को यह पदवी मिली होगी।

और वहाँ के खूंदकार[1] की सेवा में भर्ती हो गया। सिकंदर वेग ने दक्षिण आकर बादशाही सेवा में मनसब पाया। दूसरा मिर्जा वैसवेग दक्षिण में नियत था। दक्षिण में बहुत दिनों तक ये सब अच्छे नाम के साथ रहे, इसलिये इन सबका थोड़ा हाल यहाँ लिख दिया गया।

क़ज़्ज़ाक़ खाँ बाक़ी बेग उजबक

यह जहाँगीर के एक सरदार वली उजबक के ससुर का भाई था। जब यह राणा की चढ़ाई के समय स्वाभाविक रूप से मर गया तब बाक़ी बेग ने नौकरी और मनसब छोड़कर हज्ज जाने का विचार किया। जहाँगीर ने इसका मनसब और विश्वास बढ़ाकर अपनी शाही कृपा से इसका शोक दूर किया। यह बहुत दिनों तक जालौर का जागीरदार रहा और वहाँ इसने वीरता तथा साहस में नाम कमाया। प्रजा को बसाने और शासन करने में यह पूरी योग्यता रखता था। शाहजहाँ के नवें वर्ष में खानदौराँ बहादुर के साथ जुझारसिंह बुंदेला का पीछा करने में इसने अच्छा काम किया, जिससे बादशाह ने इसे क़ज़्ज़ाक खाँ की पदवी दी और मनसब बढ़ाकर डेढ़ हजारी ८०० सवार का कर दिया। इसके अनंतर यह सिविस्तान का फौजदार होकर वहाँ गया और वहाँ के हेमचः आदि जाति के विद्रोहियों का घोर युद्ध के अनंतर दमन कर इसने उस प्रांत में शांति स्थापित किया, जिससे इसका मनसब बढ़कर दो हजारी २००० सवार का हो गया। मुहम्मद औरंगजेब बहादुर की सूबेदारी[1] के समय यह गुजरात में नियत हुआ। इसका व्यय बहुत बढ़ गया था और जागीर की आय कम थी, इसलिये सिपाहियों से इसे कष्ट

---

१. दक्षिण की सूबेदारी से तात्पर्य है।

मिलता था। इस्लाम खाँ मशहदी के शासनकाल में यह दक्षिण में नियत हुआ और इसे पाथरी की थानेदारी तथा जागीरदारी मिली। उस परगने को फिर से इसने आबाद किया, जिससे इसको कुछ आराम मिला और आयवृद्धि से संतोष हुआ। इस पर इसने हज्ज जाने की इच्छा छोड़ी। २४वें वर्ष सन् १०६१ हि० (सन् १६५१ ई०) में यह मर गया और पाथरी में गाड़ा गया। कहते हैं कि यह बहुत विनोदप्रिय, मिलनसार तथा मुरव्वती था। दो अल्पवयस्क पुत्र छोड़ गया, जिन्हें बादशाह की सरकार से रोज़ीना मिलता था। कहते हैं कि इसकी माँ एक सौ बीस वर्ष का हो जाने पर भी खड़ी होकर नमाज़ पढ़ती थी और उसकी खुराक भी अच्छी थी। अपने पुत्र को इतना चाहती थी कि उसके दरबार जाते ही घबड़ा जाती थी। उसकी मृत्यु पर प्राण निकलने की कठिनता से कुछ वर्ष जीती रही।

क़तलक़ क़दम ख़ाँ क़रावल

यह पहिले मिर्ज़ा कामराँ का सेवक था, पर बाद को आप ही आप हुमायूँ की सेवा में चला आया। अकबर के समय में यह एक सरदार हो गया। १९वें वर्ष में मुनइम बेग खानखानाँ के साथ बंगाल की चढ़ाई पर नियत होकर इसने वहाँ अच्छा काम किया, जिससे इसका मंसब बढ़कर एक हजारी हो गया। समय पर इसकी मृत्यु हुई। इसका पुत्र असद खाँ शाहजादा सुलतान मुराद के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर गया और ४६वें वर्ष (सन् १६०१-२ ई०) में जब शेख अबुल्फ़ज़ल क़तलग़ तालाब के पास ठहरा हुआ था तब यह भी साथ था। उसी समय दौलताबाद दुर्ग से एक गोला आकर इसे लगा, जिससे इसका पेट फट गया और आँतें बाहर निकल आईं पर इसने साहस नहीं छोड़ा। आधी रात को इसकी मृत्यु हो गई।

क़बचाक़ खाँ अमान बेग शक़ावल

यह बलख के पास की 'रीश सुफेद' क़बचाक जाति का था। जब शाहजहाँ के २०वें वर्ष में हिंदुस्तानी सेना उस नगर में पहुँची और वहाँ का शासक नज़र मुहम्मद खाँ अविचार और अदूरदर्शिता से शंका करके जंगलों में चला गया तब यह उससे अलग होकर जेजकतू और मारवचाक़ के बीच रहकर कालयापन करने लगा। बहादुर खाँ रुहेला और एसालत खाँ मीर बख्शी ने, जो दरबार से उस बलवाई को दंड देने के लिये भेजे गए थे, बादशाही आज्ञा से इसके नाम पत्र भेजकर इसे बादशाह की राजभक्ति स्वीकार कर लेने के लिये लालच दिखलाया। यह सुविचार और दूरदर्शिता से सेवा करना स्वीकार कर बलख

अंदखूद का प्रांताध्यक्ष रुस्तम खाँ गुजरवान के अंतर्गत दरसाज के मार्ग से हिंदुस्तान चला। यह भी उक्त खाँ के पास पहुँचकर यकःऔलंग मार्ग से जब कई पड़ाव आगे गया तब इसके साथियों ने पीछे से पहुँचकर कहा कि हम सभी उज़बकों से घबड़ा गए हैं और बादशाह की राजभक्ति तथा सेवा के लिये कमर बाँध ली है पर सामान ठीक करने के लिये कुछ दिन रुकना आवश्यक है। जब रुस्तम खाँ ने यह समझ लिया कि उक्त खाँ के साथियों के पास इतना सामान नहीं है कि जाड़े में वे साथ चलें और बसंत के आरंभ तक इनका रुकना जरूरी है, तब पाँच हजार रुपए सहायता देकर उन्हें लौटा दिया। यह कंधार की सीमा से मिले हुए चारहद में जाड़ा व्यतीत कर २२ वें वर्ष में ख्वाजा ओजैन के मार्ग से कंधार पहुँचा। दरबार से बुलाहट हुई और ५० हजार रुपया कंधार के कोष से इसे पुरस्कार दिया गया। जब इसी समय शाह अब्बास द्वितीय के कंधार पर चढ़ाई करने का निश्चित समाचार मिला, तब इसने दुर्गाध्यक्ष से काम करने की इच्छा से कहा कि इस कार्य के अंत तक वह बादशाह की सेना के साथ रहना चाहता है। उसने भी ठीक समझकर यह स्वीकार कर लिया। अभी एक महीना भी नहीं हुआ था कि ईरान के शाह ने आकर कंधार घेर लिया। दोनों ओर से लड़ाई आरंभ हो गई। शादी खाँ उज़बक ने, जो दुर्ग में नियुक्त था और उस समय वैसकरन फाटक का रक्षक था, कायरता तथा अनुत्साह से शत्रु से मिलकर कबचाक़ खाँ को, जो बहुत शील-वान पुरुष था और बादशाह से भेंट करने की बहुत इच्छा रखता था, बहका दिया। यद्यपि वह अच्छे हृदय का था, तथापि इस

काम में दृढ़ नहीं रहा। उसके साथियों ने, जो अपने परिवार को साथ लाए थे, अपने माल और परिवार को जान जाने के डर से कपटाचरण की राय देकर इसे निरुपाय कर दिया, जिससे उस विद्रोही का इसे साथ देना पड़ा। शादी खाँ के वृत्तांत में लिखा जा चुका है कि बैसकरन दरवाजे को कज़िलबाशों के लिये खोलकर वह क़बचाक़ खाँ के साथ ईरान के शाह के पास पहुँचकर सेवा में रहने लगा। हिंदुस्तान आने के लिये जब उसका मुँह नहीं रह गया तो वहीं रहने लगा। इसके बाद पता नहीं कि उसका क्या हाल हुआ।

कमर खाँ

यह मीर अब्दुल् लतीफ क़जवीनी का पुत्र था। १८वें वर्ष में जब अकबर पूर्व की ओर चला तब यह भी साथ के प्रबंधकों में था। १९वें वर्ष में खानखानाँ मुनइम वेग के साथ बंगाल की चढ़ाई पर गया। खानखानाँ ने इसको मुहम्मद कुली खाँ वर्लास के साथ सातगाँव की ओर भेजा, जहाँ इसने बहुत अच्छी सेवा की। २२वें वर्ष में यह शहाबुद्दीन अहमद खाँ की सहायता को भेजा गया, जो मालवा से गुजरात में नियत हुआ था। २४वें वर्ष राजा टोडरमल के साथ नियत हुआ, जो पटना के विद्रोहियों का दमन करने के लिये भेजे गए थे। जब बादशाही सरदारगण विद्रोहियों के बढ़ने और राजभक्तों की कमी होने से दुर्गस्थ हो गए तब शत्रुओं ने नदी में नावें डालकर भोजन की सामग्री लाने में रुकावट डालना चाहा। इसपर इसको कुछ आदमियों के साथ नदी के उस पार भेजा और कुछ सेना को नदी से और कुछ को इस पार से रवाना किया। बलवाइयों की लगभग ३०० नावें बादशाही नौकरों के हाथ आईं। इसके बाद का इसका हाल नहीं मालूम हुआ। इसके पुत्र कौकिब को कुछ कुकर्म करने के कारण जहाँगीर बादशाह ने सामने बुलाकर पिटवाया और कैद कर दिया था।

क़मरुद्दीन ख़ाँ बहादुर, एतमादुद्दौला

इसका वास्तविक नाम मीर मुहम्मद फ़ाज़िल था और यह एतमादुद्दौला महम्मद अमीन खाँ बहादुर[1] का पुत्र था। औरंगज़ेब के राज्यकाल के अंत में इसे यथोचित मनसब और क़मरुद्दीन खाँ की पदवी मिली थी। मुहम्मद फर्रुख़सियर के समय में यह अच्छा मनसब पाकर अहदियों का बख्शी हुआ और चौथे वर्ष में अब्दुस्समद खाँ दिलेर जंग[2] के साथ कुर्द की चढ़ाई पर नियत हुआ। मुहम्मद शाह के प्रथम वर्ष में हुसेन अली खाँ के मारे जाने के बाद, जब इसके भांजे ग़ैरत खाँ ने बारहा के आदमियों के साथ बादशाही सेना पर आक्रमण किया, तब इसने बड़ी वीरता दिखलाई। इसके अनंतर इसका मनसब छ

और दक्षिण लौट गया तब सन् ११३७ हि० में यही प्रधान मंत्री नियत हुआ। बहुत दिनों तक ऐश और आराम से इसने जीवन व्यतीत किया। एक बार सन् ११४७ हि० में यह खानदौराँ के साथ अलग स्वतंत्र सेना सहित बालाजी राव मरहठा पर नियत हुआ, जो मालवा में उपद्रव मचाए हुए थे। इसने चार युद्ध जीते और संधि कराई। दूसरी बार बादशाह के साथ अली-मुहम्मद खाँ रुहेला[1] पर चढ़ाई करने दिल्ली से निकला क्योंकि उसमें विद्रोह के लक्षण दिखलाई पड़े थे पर उमदतुल् मुल्क और सफदर जंग से ईर्ष्या रखने के कारण इसने अफ़गानों से संबंध दृढ़कर उसे बादशाह की सेवा में ले आया। तीसरी बार शाहजादे के साथ, जो बादशाह होने पर अहमदशाह कहलाया था, भारी सेना सहित अहमदशाह दुर्रानी से लड़ने के लिये सरहिंद गया, जो लाहौर के इस तरफ आ पहुँचा था। युद्ध के लिये जो दिन निश्चित किया था उसी दिन एक गोला इसपर गिरा और यह सन् ११६१ हि० (सन् १७४८ ई०) में मर गया। यह मित्र-प्रेमी था। यह अपने सुव्यवहार, शील तथा औदार्य से छोटे बड़े सभी में प्रसिद्ध हो गया था। यह किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता था। अपने पिता की मिलकियत में से ऐसी वस्तुओं का जो लूट में मिली थी, ठीक मूल्य लगाकर उनके मालिकों को दिलवा दिया और जो बेंचने के लिये राजी नहीं हुए उन्हें वह वस्तु लौटा दिया। मर्यादा रखना उसका स्वभाव ही था। कहते हैं कि जिस समय आसफजाह

१. अली मुहम्मद खाँ की जीवनी भाग २, पृ० ३१४-१५ पर है।

राजधानी जाता था उस समय उसके वजीर होने के कारण और अवस्था के आधिक्य के कारण यह खड़ा हो जाता था। कमरुद्दीन खाँ के मरने पर इसके पुत्र मीर मन्नू ने फुर्ती करके कुछ सहस्र सवारों के साथ शत्रु पर धावा कर दिया और उन सबको इस प्रकार परास्त किया कि वे अपने देश भाग गए। इसके उपलक्ष में इसे मुईनुलमुल्क-रुस्तमे-हिंद की पदवी और लाहौर तथा मुलतान की सूबेदारी मिली। सन् ११६२ हि० में जब दुर्रानी शाह काबुल से लाहौर आया तब साधारण युद्ध के बाद संधि हो गई। शाह नादिरशाह की चाल पर स्यालकोट, गुजरात, औरंगाबाद और परसरूर से चार महाल भेंट रूप में लेकर लौट गया। सन ११६५ हि० में दुर्रानी फिर लाहौर पहुँचकर चार महीने तक युद्ध करता रहा और यह अपने नौकर आदीना बेग

और कोई चारा नहीं चला तथा यह एकाएक मर गया। लाहौर के शासन की शाह की सनद अपने दो वर्ष के लड़के के नाम कराके भेज दिया। उसके अल्पवयस्क होने से उसकी माता सब प्रबंध करती रही। इस कारण इसके मित्र अस्त-व्यस्त हो गए। इसी बीच वह पुत्र भी चल बसा और उसकी माता बेगम स्वयं शासक नियत हुई। कुछ दिन के अनंतर अब्दुस्समद खाँ के लड़के ख़्वाजा अब्दुल्ला खाँ ने बेगम को कैद कर प्रांत की अध्यक्षता शाह से अपने लिए माँगी। वेतन के कारण सैनिकों के उपद्रव में यह नहीं ठहर सका और कुल कार्य बेगम को फिर मिल गया। इसके अनंतर मिर्जा जान नामक एक जमादार ने बेगम को कैद कर लिया और फिर उनमें संधि हो गई। इसके बाद एमादुलमुल्क ने लाहौर पर चढ़ाई की और बेगम को कैद कर लिया जिसका वृत्तांत विस्तारपूर्वक एमादुलमुल्क[1] के चरित्र में दिया गया है। (कमरुद्दीन खाँ का) दूसरा पुत्र एतमादुद्दौला इंतज़ामुद्दौला ख़ानख़ानाँ था, जो अहमदशाह के राज्य में सफदर-जंग के स्थान पर वजीर नियत हुआ था। सन् ११६७ हि० में अपने संबंधियों के हाथ मारा गया। इसके पुत्रों में से एक फ़खरुद्दौला था, जो इस लेख के लिखे जाने के एक वर्ष पहले दक्षिण आकर निज़ामुद्दौला आसफजाह की मित्रता में दिन बिता रहा है। इन पृष्ठों के लेखक पर कृपा रखता है। उसके दूसरे पुत्र भी हैं।

---

१. इसकी जीवनी इस ग्रंथ के भाग २, पृ० ५४६–५३ पर है।

कमाल खाँ गक्खर

यह सुलतान सारंग का पुत्र था, जो सुलतान आदम का छोटा भाई था। गक्खरों की बहुत जातियाँ हैं। ये व्यास और सिंध नदी के बीच के पहाड़ों में रहते थे। सुलतान जैनुद्दीन कश्मीरी के समय काबुल के शासक के अधीनस्थ गजनी के एक सरदार मलिक कद ने यहाँ आकर इस स्थान को बलपूर्वक कश्मीरियों से ले लिया। सिंध नदी के किनारे से सिवालिक पहाड़ की तराई और काश्मीर की सीमा तक अधिकार कर लिया। अन्य भेद मानते हुए भी खत्र, जानौथ, ऐवान, चनरनिया, भगकियान, झम्भा, वारिया और मैकराल सभी उसी देश में बस गए थे पर गक्खरों के अधीन थे। मलिक कद के

कर इसे मार डाला और इसके पुत्र कमाल ख़ाँ को ग्वालियर दुर्ग में कैद कर दिया। यह सब करने पर भी इसके राज्य पर वह अधिकार न कर सका। गक्खरों की सरदारी सुलतान सारंग के भाई सुलतान आदम को मिली। सलीमशाह ने भी इस प्रांत के लेने के लिए बहुत प्रयत्न किया पर कुछ लाभ न हुआ।

कहते हैं कि एक बार सलीमशाह ने ग्वालियर दुर्ग के कुल कैदियों को एक साथ मार डालने की आज्ञा दे दी थी, जिससे कैदखाने के नीचे खान खोदकर और बारूद भरकर उसे उड़ा दिया गया। आग और बारूद के ज़ोर से क़ैदखाना अपनी जगह से खुदकर कैदियों के सहित हवा में उड़ गया, जिससे उनके शरीर के टुकड़े टुकड़े हो गए। कमाल खाँ भी इनमें था, पर शक्तिमान ईश्वर ने उसे बचा लिया। कैदखाने के जिस कोने में वह था, उसके दूर होने से आग वहाँ तक न पहुँची। जब सलीमशाह ने इसके इस प्रकार बचने का समाचार सुना तब इसे छोड़ दिया। कमाल ख़ाँ अपने देश चला गया। उसका चचा सुलतान आदम दृढ़ता से जम गया था इसलिये यह अपने भाई सईद खाँ के साथ बेकारी में दिन काटने लगा पर अधीनता स्वीकार नहीं की। अकबर के राज्य के आरंभ काल में, जालंधर में अपनी पुरानी सेवा के कारण, बादशाह के पास पहुँचा और सरदारों में भर्ती हो गया। हेमू के युद्ध में और मानकोट के घेरे में अच्छी सेवा कर बादशाह का कृपापात्र हुआ। तीसरे वर्ष मियाना अफ़ग़ानों को दंड देने के लिये नियत हुआ, जो मालवा प्रांत के अंतर्गत सीरोंज की सीमा पर बहुत उपद्रव मचाए हुए थे। यह अच्छी सेना लेकर उनपर गया और घोर

युद्ध के उपरांत विजयी होकर लौटा । अकबर ने कड़ा कस्बा, फ़तहपुर, हँसुआ और कई अन्य महाल इसे जागीर में दिए । छठे वर्ष मुबारिज़ ख़ाँ अदली के पुत्र के साथ युद्ध में, जिसे अफगानों ने सरदार बनाकर उपद्रव मचाया था, कमाल खाँ अच्छी सेना लेकर खानजमाँ शैबानी से जा मिला था और उस युद्ध में इसने प्रसिद्धि प्राप्त की । अकबर ने इसकी वीरता तथा सेवा का समाचार सुनकर कहा था कि कमाल खाँ अपना काम कर चुका है अब हमारी कृपा की पारी है । उसकी जो इच्छा होगी वह पूरी होगी । ८वें वर्ष सन् ९७० हिजरी में यह जब दरबार पहुँचा तब इसने दरबारियों के द्वारा प्रार्थना पत्र दिया कि देश-प्रेम के कारण पैतृक राज्य पर उसकी आशा लगी हुई है, जिस पर मेरे चाचा अधिकृत हैं और जिसके लेने में मैं असमर्थ हो चुका हूं । अकबर ने खानकलाँ और पंजाब के अन्य

वह भी बाद में पकड़ कर लाया गया और गक्खरों का कुल देश, जो अब तक हिंदुस्तान के किसी बादशाह के अधीन नहीं हुआ था, विजय कर कमाल खाँ का उस पर दृढ़ता से अधिकार करा दिया। सुल्तान आदम और उसका पुत्र उसीको सौंप दिए गए। कमाल खाँ ने लश्करी को मार डाला और सुलतान आदम को कैद कर दिया, जहाँ वह अंत तक रहा।

तवक़ाते अकबरी में लिखा है कि कमाल खाँ पाँच हज़ारी मंसबदारों में से था और साहस तथा वीरता और उदारता तथा दानशीलता में अपने समय के प्रतिष्ठित लोगों में से था। कहते हैं कि यह सन् ९७० हि० (सन् १५६३ ई०) में मर गया और यही वर्ष इसकी सफलता का था।

क़रा बहादुर ख़ाँ

यह मिर्ज़ा हैदर गुरगान का भतीजा था, जो काशग़र के सुलतानों के वंश में से था। इसका पिता मुहम्मद हुसेन हुमायूँ का मौसेरा भाई था। यह काशगर से बदख्शाँ होता हुआ लाहौर पहुँचा। जब मिर्ज़ा कामराँ ने कंधार लेने के लिए, जो ख़्वाजः कलाँ बेग के हाथ से ईरान के शाह के अधिकार में चला गया था, उधर जाने का निश्चय किया तब मिर्ज़ा हैदर को अपना प्रतिनिधि बनाकर लाहौर में छोड़ गया। इसके अनन्तर जब मिर्ज़ा कामराँ आगरे आया तब यह भी आकर हुमायूँ बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। शेर खाँ सूर के साथ के दूसरे युद्ध के बाद, जिसमें बादशाही सेना पराजित हुई, हुमायूँ अवसर समझ कर लाहौर आया। यहाँ मिर्ज़ा हैदर ने, जो काशगर के सुल्तान अबूसईद खाँ के समय उसके पुत्र के साथ

के नाम ख़ुतबा पढ़वाया और सिक्का ढलवाया। अंत में वहाँ के उपद्रवी आदमियों ने धोखा और फरेब देकर सन् ९५८ हि० में रात्रि-आक्रमण कर मिर्ज़ा को मार डाला। इसीने तारीख़े रशीदी लिखा है, जो उक्त अबूसईद खाँ के पुत्र के नाम पर लिखी गई है। इसका हृदय कवि का था। इसकी प्रसिद्ध रुबाई का नीचे अनुवाद दिया जाता है—

रुबाई

प्रेमी हुए तो शोक में आबद्ध हूजिए।
सहिए व अत्याचार की भी दाद दीजिए॥
प्रिय की गली से सिर को या आप हटा लें।
या उस गली के श्वान से कम आप हूजिए॥

क़रा बहादुर खाँ के पिता का नाम मिर्ज़ा महमूद था। अकबर ने यह विचार कर कि उक्त खाँ मिर्ज़ा हैदर के साथ उस प्रांत में रहने के कारण वहाँ के वृत्तांत को अच्छी तरह जानता है, ५वें वर्ष में भारी सेना देकर इसे काश्मीर विजय करने के लिए नियत किया। यात्रा में बहुत देर हो गई और गर्मी में यह राजौरी पहुँचा। वहाँ के अध्यक्ष ग़ाज़ी ख़ाँ ने घाटियों और दर्रों को दृढ़ता से बंद कर दिया। राजौरी के पास कई दिन युद्ध करने के अनंतर उक्त खाँ परास्त होकर लौट आया। ९वें वर्ष जब बादशाह मालवा प्रांत में मांडू तक जाकर राजधानी लौट आया, उस समय इसको मांडू का अध्यक्ष नियत किया। निश्चित समय पर यह मर गया। इसका मनसब सात सदी था।

फ़ाकिर अली ख़ाँ

यह हुमायूँ बादशाह के सरदारों में से था। जिस वर्ष हुमायूँ बादशाह हिंदुस्तान की ओर विजय करने की इच्छा से चला तब यह भी उसके साथ आया। अकबर के समय यह दो हज़ारी मनसब तक पहुँच गया था। ११वें वर्ष में जब गढ़ा के तानुकेदार मेहदी क़ासिम ख़ाँ ने बादशाह की आज्ञा के बिना हेजाज़ जाने की इच्छा की तब अकबर ने इसको दूसरों के साथ वहाँ नियुक्त किया। इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा के युद्ध में, जो अहमदाबाद प्रांत के अंतर्गत सरनाल ग्राम के पास हुआ था, यह भी बादशाह के साथ था। इसके अनंतर मुनइम बेग ख़ानख़ाना के साथ पूर्वी प्रांत की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ। जिस समय बादशाही सेना पटना घेरे हुए थी उसी समय एक दिन इसने [illegible] के साथ शत्रु पर धावा कर घोर युद्ध किया। [illegible] (सन् [illegible] ई०) में नगर से शत्रुओं को मार

काफ़िर ख़ाँ उर्फ ख़ानजहाँ काफ़िर

यह शाहजहाँ का एक वालाशाही सवार था। इसके अनंतर जव उक्त वादशाह गद्दी पर बैठा तव यह एक हजारी ४०० सवार का मनसव तथा छ सहस्र रुपए पुरस्कार पाकर सम्मानित हुआ। ३रे वर्ष जव वादशाह दक्षिण में पहुँचे तव जो सेना ख़ानजहाँ लोदी को दंड देने और निज़ामुल्मुल्क के राज्य पर अधिकार करने को राजा गजसिंह के अधीन भेजी गई थी, उसी में यह नियत हुआ। ८वें वर्ष में सैयद ख़ानजहाँ वारहः के साथ जुझारसिंह को दंड देने पर नियत हुआ। १०वें वर्ष पाँच सदी ६०० सवार मनसव में वढ़ाए गए। १३वें वर्ष में इसका मनसव वढ़कर दो हजारी १००० सवार का हो गया और इसे काफ़िर खाँ की पदवी मिली। इसके अनंतर कंधार में नियत होकर वहाँ वहुत दिनों तक रहा। जव २२वें वर्ष में ईरान के शाह ने उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया, तव यह दुर्गाध्यक्ष ख़वास ख़ाँ के साथ शाह के सामने उपस्थित हुआ और हिन्दुस्तान लौटने की आज्ञा पाकर चला आया। सुलतान औरंगज़ेव वहादुर के साथ उसकी दूसरी चढ़ाई के समय यह भी उसकी

सेना में नियत हुआ। २६वें वर्ष दारा शिकोहा के साथ भी यह उसी चढ़ाई पर गया। इसके आगे का हाल ज्ञात नहीं है।

———

क़ाज़ी मुहम्मद असलम

यह मौलाना ख़्वाजा कोही का वंशज था। इसका जन्मस्थान हेरात था तथा काबुल का रहनेवाला था। जहाँगीर के राज्य के आरम्भ में लाहौर आकर यह शेख वहलोल का शिष्य हो गया, जो वहाँ का एक प्रसिद्ध विद्वान था। पढ़ना समाप्त करने पर आगरे जाकर जहाँगीर की सेवा में भर्ती हो गया और हदीस जाननेवाले मौलाना मीरकलाँ से इसका संबंध होने के कारण इस पर वादशाह की कृपा हुई और यह काबुल का काज़ी नियत हुआ। उक्त मौलाना ख़्वाजा कोही का नाती था और उसने मीर जमालुद्दीन मुहद्दिस के पुत्र सैयद मीरक शाह से प्रमाणपत्र पाया था। जब यह हिन्दुस्तान आया तब अकबर को इस पर बहुत विश्वास हो गया और जहाँगीर को शिक्षा देने के लिए इसे नियत किया। बहुत से आदमियों ने इससे हदीस पढ़ा था। आगरे में यह मर गया।

जब काज़ी मुहम्मद असलम ने बहुत दिनों तक अपने पद पर नियत रहकर धार्मिक वातों में प्रसिद्धि प्राप्त की तब जहाँगीर के बुलाने पर दरबार पहुँच कर यह उर्दूए मुअल्ला (सैनिक पड़ाव) का क़ाज़ी नियत हुआ। शाहजहाँ ने अपनी राजगद्दी के अनंतर इसे इसी काम पर वहाल रख कर तथा वड़ी कृपा करके एक हज़ारी मनसव दिया। १६ वें वर्ष में इसको उसके वदले में ६५०० रु० की वार्षिक वृत्ति दी और यह इस काम पर लगभग ३० वर्ष

तक रहा। २४ वें वर्ष सन् १०६० हि० में एक दिन बादशाह के सामने घोड़ों के निरीक्षण के समय एक बदमाश घोड़ा उछलने कूदने लगा। जब वह काजी के पास पहुँचा तब इसका भय के कारण पैर फिसल गया और यह जमीन पर गिर पड़ा। लगभग चार महीने तक बिछौने पर पड़ा रहा। इसके अनंतर कुछ अच्छे होने पर दरबार की ओर से मक्का जाने और कुछ सामान ले जाकर मक्का तथा मदीना के भले आदमियों में बाँटने के लिए नियत हुआ पर यह भला काम छोड़ कर, जो इसके भाग्य में नहीं लिखा था, इसने काबुल जाने की प्रार्थना की और वह स्वीकार हो गई। काबुल की सहायता-वृत्ति और उसके सिवाय अन्य भी, जिसकी वार्षिक आय दस सहस्र रुपये से अधिक थी और जो मनसब के सिवा पुरस्कार के रूप में थी, पहले की तरह इसको मिलती रही। वहीं सन् १०६१ हि० (सन् १६५१ ई०) के आरम्भ में यह मर गया।

हुआ। औरंगजेब के ८ वें वर्ष में क़ादिर खाँ के स्थान पर बादशाही पड़ाव का मुनीब नियत हुआ। इसके अनंतर काबुल का सदर होकर वहीं अपने स्थान को लौट गया। इसका पुत्र मुहम्मद असलम खाँ अपने पिता और दादा से बढ़कर एक बड़ा सरदार हो गया। उसका वृत्तांत अलग लिखा गया है।[1]

१. इसका वृत्तांत चौथे भाग में मिलेगा।

क़ादिर दाद ख़ाँ बहादुर

इसका नाम शेख नूरुल्ला था। यह शाहजहाँ के समय के रशीद खाँ अनसारी के पुत्र कादिर दाद खाँ का पुत्र था, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है।[1] इसे औरंगज़ेब के समय चार सदी मंसब और दक्षिण के दुर्गों में से एक की अध्यक्षता मिली। बहादुर शाह के समय इसका मंसब बढ़कर एक हजारी हो गया और अपने पिता की पदवी पाकर खानदेश प्रांत में जामवद का फौजदार नियत हुआ। फर्रुखसियर के समय जब निज़ामुल् मुल्क आसफजाह दक्षिण का प्रांताध्यक्ष नियत होकर वहाँ गया तब यह, जो उस सरदार की माँ की ओर से सगा संबंधी था, भेंट करने आकर उसका साथी हो गया। सैयद दिलावर अली खाँ और आलम अली खाँ के युद्धों में इसने बहुत प्रयत्न किया, जिससे इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया और बहादुर खाँ की पदवी, डंका तथा निशान मिला। [illegible] खाँ के युद्ध में यह हरावल का सरदार था। युद्ध के

कामगार ख़ाँ

जाफर ख़ाँ[1] का यह दूसरा पुत्र था। औरंगजेब के राज्य के आरंभ में इसने योग्य मनसब पाया। ७वें वर्ष इसका मनसब बढ़कर एक हज़ारी २०० सवार का हो गया और ख़ाँ की पदवी मिली। १०वें वर्ष लुत्फ़ुल्ला ख़ाँ के स्थान पर अह्-दियों का बख़्शी नियत हुआ। १२वें वर्ष जौहरी बाज़ार का दारोगा नियत हुआ। १९वें वर्ष किसी कारण से इसका मनसब छिन गया। २१वें वर्ष में यह पुनः कृपापात्र होकर रहमत ख़ाँ के स्थान पर बयूतात के काम पर नियत हुआ। २२वें वर्ष में जब बादशाह ने राजधानी दिल्ली से अजमेर की ओर जाने का निश्चय किया तब यह वहाँ का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। २४वें वर्ष में अशरफ ख़ाँ के स्थान पर वाक़ेअः ख्वाँ, २५वें वर्ष में अब्दुल्रहीम के स्थान पर तीसरा बख़्शी, २७वें वर्ष में मोग़ल ख़ाँ के स्थान पर आख़्तः बेगी, २८वें वर्ष में घुड़सवार का दारोगा, ३१वें वर्ष में बहरःमंद ख़ाँ के स्थान पर गुसलख़ाने का दारोगा और उसी वर्ष के अंत में मुहम्मद अली ख़ाँ के स्थान पर ख़ानसामाँ नियत हुआ। इसके अनंतर इस पद से हटाये जाने पर ३३वें वर्षमें कुछ सेना के साथ मुहम्मद मोअज्ज़म के महल के लोगों को दिल्ली पहुँचाने पर नियत हुआ। ४३वें वर्ष में इसका मनसब बढ़कर तीन हजारी हो गया। कुछ दिनों तक

---

१ उमदतुल् मुल्क जाफर ख़ाँ की जीवनी इसी भाग में दी गई है।

आगरे का दुर्गाध्यक्ष भी रहा। इसकी सिधाई प्रसिद्ध है। गुण-हीनता के होते अपने ऊँचे वंश का विशेष ध्यान रखता था और किसी को सिर नहीं झुकाता था।

कहते हैं कि एक दिन बादशाह ने ठट्टा के अमीर ख़ाँ को एक संदेश कामगार ख़ाँ तक पहुँचाने के लिये कहा। उसने उक्त ख़ाँ को यह संदेश कहकर अपने घर आने के लिए निमंत्रण दिया। उक्त ख़ाँ बिना हिचकिचाहट के पूछ बैठा कि कौन अमीर ख़ाँ हो ? अमीर ख़ाँ स्वयं मेरे चचा का पुत्र था। उसने संबंध बतलाते हुए कहा कि ठट्टा का अमीर ख़ाँ अब्दुल् करीम है। उसने कहा अर्थात् अब्दुल् करीम फर्राश। फिर कहा कि मैं फर्राशों के घर नहीं जाता। यह कथन तिरस्कार के शब्दों के साथ था जब कि मीर अब्दुल् करीम बहुत दिनों तक बादशाही निमाजखाने का दारोगा रह चुका था। जब अमीर ख़ाँ ने बादशाह से यह बात कही तब उसने उत्तर दिया कि वह आखिर

कारतलब ख़ाँ

यह वास्तव में मरहठा जाति का था और इसका नाम बसवंत राव[1] था। जहाँगीर के समय बादशाही सेवा में आकर और दक्षिण में नियुक्त होकर इसने दो हज़ारी एक सवार का मनसब पाया। इसके अनंतर मुसलमान होने पर इसे कारतलब ख़ाँ की पदवी मिली। शाहजहाँ के ३रे वर्ष में जब बादशाही सेना दक्षिण पहुँची, तब इसका मनसब बढ़कर तीन हज़ारी २००० सवार का हो गया। ९ वें वर्ष जब बादशाह ने दूसरी बार दक्षिण जाकर साहू भोंसला को दंड देने तथा आदिलशाही राज्य के नष्ट करने के लिये सेना नियत किया तब यह भी ख़ानज़माँ के साथ नियत हुआ। इसके अनंतर दक्षिण के प्रांताध्यक्षों के साथ बराबर रहा। ३१ वें वर्ष शाहज़ादा औरंगजेब के साथ क़ुतबुल् मुल्क की चढ़ाई पर गया। उस काम के पूरे हो जाने पर शाहज़ादे ने इसे देवगढ़ के ज़मींदार केसरसिंह के साथ रुपया वसूल करने के लिए, जो उसके जिम्मे बाक़ी था, भेजा। इसके अनंतर जब दैवात् दूसरा उपद्रव मचा और शाहज़ादा

---

१. शुद्ध नाम यशवंतराव ज्ञात होता है पर नीचे एक ही बिंदी देने से ऐसा लिखा गया है। कारतलब ख़ाँ का उल्लेख महाकवि भूषण ने शिवराज-भूषण के पद १०३ में किया है।

पिता को देखने के लिए दक्षिण से हिन्दुस्तान की ओर चला तब इसको भी अपने साथ लेता गया। महाराज जसवंत सिंह और दाराशिकोह के युद्धोंमें यह भी साथ था। समय आने पर अपनी मृत्यु से मरा[१]।

क़ासिम अली ख़ाँ

जब अकबर ने १०वें वर्ष में अलीकुली ख़ाँ ख़ानज़माँ पर चढ़ाई की, तब यह गाज़ीपुर में नियत हुआ। १७वें वर्ष में जब बादशाह ने गुजरात विजय करने के अनंतर सूरत दुर्ग को घेर लिया और दुर्गवाले बहुत कष्ट में पड़ गए तब उन लोगों ने क्षमा माँगी। अकबर ने क़ासिम अली ख़ाँ को, जिस पर उसका बहुत विश्वास था, वहाँ भेजा। १८वें वर्ष में ख़ानआलम आदि के साथ यह मुनइम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ की सहायता करने को भेजा गया, जो पटना विजय करने को नियत हुआ था। वहाँ से किसी कारण फिर दरबार लौट आया। उसी वर्ष शुजाअत ख़ाँ मुहम्मद मुक़ीम को, जिसके संबंध में मुनइम ख़ाँ ने कुछ असभ्य बातें कही थीं और शाही दरबार का विचार छोड़ दिया था, कासिम अली ख़ाँ के साथ ख़ानख़ानाँ के पास भेज दिया। दूसरे वर्ष जब बादशाह ससैन्य इलाहाबाद के पास ठहरे हुए थे तब यह दरबार में उपस्थित हुआ। २२वें वर्ष यह सादिक़ ख़ाँ के साथ मधुकरशाह बुंदेला को दमन करने पर नियत हुआ। २५वें वर्ष में खानआज़म कोका के साथ यह पूर्वीय प्रांत में नियत हुआ। २६वें वर्ष में हुमायूँ की माता की धाय-पुत्री हाजी बेगम के संबंधियों को सान्त्वना देने तथा समवेदना प्रकट करने के लिए यह नियत किया गया क्योंकि वह बादशाह से बहुत स्नेह रखती थी और बादशाह को भी लड़कपन से उससे

बहुत प्रेम था। हज्ज से लौटने पर यह हुमायूँ के मकबरे में रहती थी तथा वहीं उसकी मृत्यु हुई। ३१वें वर्ष में जब बादशाह ने हर एक प्रांत में दो दो सरदारों को नियत करना निश्चित किया तब इसको फतेह खाँ के साथ अवध में नियुक्त किया। ३५वें वर्ष में खैराबाद से आकर दरबार में उपस्थित हुआ। उसी वर्ष के अंत में कालपी जाने की छुट्टी मिली, जो उसकी जागीर में थी। उसका अंत कैसे हुआ यह नहीं मालूम हुआ।

क़ासिम ख़ाँ

यह मीर मुराद जुवीनी का लड़का था। पहिले समय में जुवीन वैहक़ प्रांत के अंतर्गत था, जिसका नगर सब्ज़वार था और अब भी वह प्रांत अपने वृक्षों तथा नहरों आदि के लिये प्रसिद्ध है। वहाँ के बहुत से योग्य आदमी चले आए हैं, जैसे शेख साद्उद्दीन हमवी, मक्का और मदीना के इमाम अबुल्स-आली, पूरे दीवान के लेखक ख्वाजा शम्सुद्दीन। मीर मुराद भी वहाँ के बड़े सैयदों में से था। दक्षिण में बहुत दिनों तक रहने से वह दक्षिणी भी कहलाया। वीरता तथा औदार्य के कारण यह सम्मानित था। तीर चलाने की कला में अत्यंत निपुण था। अकबर ने सुलतान खुर्रम को धनुर्विद्या सिखलाने के लिए इसे नियत किया था। ४६वें वर्ष में लाहौर की बख़्शीगीरी करते हुए यह मर गया।

कासिम खाँ अच्छी कविता करता था और मनोहर गद्य भी लिखता था। आरंभ में बंगाल में इसलाम खाँ चिश्ती फारूकी की सूबेदारी के समय उस प्रांत का यह कोषाध्यक्ष था। इस-लाम खाँ इसके तथा अपने भाई हाशिम खाँ की शिक्षा में पूरी तौर से ध्यान रखता था और उस भारी सरदार के निरीक्षण में यह बहुत योग्य हो गया। इसके अनंतर नूरजहाँ की बहिन मनीजा बेगम की इससे शादी हुई तब यह उन्नति करते हुए एक बड़ा सरदार हो गया। इसे डंका और झंडा मिला। दरबार

के ओछे आदमी इसे कासिम खाँ मनीजा कहते थे। जहाँगीर की सेवा में रहते समय यह उसका मुसाहिब हो गया। एक दिन बादशाह ने पानी पीने को माँगा। मिट्टी का प्याला कमजोर था इसलिए पानी के हिलने से वह टूट गया। बादशाह ने कासिम खाँ की ओर देखकर कहा कि—मिसरा—प्यालः था नाजुक, नहीं आराम पानी कर सका। उसने तुरंत दूसरा मिसरा कहा—

हाल मेरा देख उसकी आँख एक दम रो पड़ी।

इस बादशाह के राज्य के अंत में आगरा प्रांत और वहाँ के दुर्ग तथा कोष का प्रबंध इसे सौंपा गया। जिस समय जहाँगीर की मृत्यु हुई और शाहजहाँ राजगद्दी के लिए दक्षिण में जुनेर से राजधानी की ओर चला तथा देहरा बाग के पास, जिसे नूरुद्दीन जहाँगीर बादशाह के नाम पर नूर मंजिल कहते थे, ठहरा, तब कासिम खाँ सेवा में उपस्थित होकर कृपापात्र बन गया। पहिले वर्ष में यह पाँचहजारी ५००० सवार का मनसब पाकर

दाहिनी ओर ढाई कोस भीतर जाकर गंगाजी की खाड़ी के किनारे सातगाँव बंदर है। बंगाल के पुराने सुलतानों के समय में कुछ फिरंगी सौदागर, जो सरन द्वीप के रहनेवाले थे, यहाँ आने जाने लगे। उक्त बंदर से एक कोस पर खाड़ी के किनारे क्रय-विक्रय करने के लिए एक स्थान की आवश्यकता के बहाने बंगालियों की चाल पर कुछ मकान बनवा लिए। उस प्रांत के शासकों की ढिलाई के कारण कुछ समय बीतने पर बहुत से फिरंगियों ने इकट्ठा होकर भारी इमारत बनवा ली, जिसके एक ओर समुद्र ही था और तीन ओर खाईं खोद कर खाड़ी का पानी उसमें भर लिया। इसको तोप और बंदूकों से दृढ़ कर हुगली नाम रखा। फिरंगी जहाज़ अब वहीं आने जाने लगे और सातगाँव बंदर अवनत होने लगा। उक्त कारणों से कासिम खाँ को विदा करते समय यह संकेत किया गया कि उस बंदरगाह के फिरंगियों को वहाँ से निकाल देने की बादशाह की इच्छा है। इसलिये बंगाल प्रांत का आवश्यक प्रबंध करने के अनंतर इन अत्याचारियों को नष्ट करने के लिए यह उपाय करने लगा। कासिम खाँ ने चौथे वर्ष अपने पुत्र इनायतुल्ला को अल्लायार खाँ के साथ, जो वास्तव में सरदार था, अन्य मंसब-दारों सहित वहाँ भेजा। यह विचार कर कि वह झुंड इस चढ़ाई का समाचार पाकर तथा अपनी नावों में चढ़कर अपने को बचा न ले, यह प्रसिद्ध किया गया कि यह चढ़ाई हिजली पर की जा रही है। इसके बाद कुछ सेना नावों पर भेजी गई कि उनके भागने का रास्ता बंद कर दे और तब इन सब ने एक साथ धावा कर हुगली को घेर लिया। यह घेरा साढ़े तीन

महीने तक चलता रहा। फिरंगी कभी लड़ाई करते थे और कभी यूरोप से सहायता आने की आशा में संधि का बहाना करते थे। कलिमिया खाई चौड़ाई और गहराई में सब से कम थी, इसलिये इसके आगे के घेरनेवालों ने चरहा बाँधकर पानी निकाल दिया और खान में बारूद बिछाकर आग लगा दी। वह इमारत बहुत से अत्याचारियों के साथ आकाश में उड़ गई। बहादुरों ने धावा कर इसे विजय कर लिया। आरंभ से अंत तक दस सहस्र फिरंगी स्त्री और पुरुष मारे गए तथा चार सहस्र चार सौ आदमी कैद हुए और लगभग दस सहस्र प्रजा को कैद से छुट्टी मिली। एक सहस्र मुसलमान मारे गए। इस विजय

क़ासिम ख़ाँ

यह मीर बहर कासिम खाँ[1] का पौत्र था और इसका नाम महम्मद क़ासिम था। वह जल का प्रधान (मीर-बहर) होकर और यह आग का प्रधान (मीर-आतिश) होकर प्रसिद्ध हुए। इसका पिता हाशिम खाँ भी जहाँगीर के समय में काश्मीर का प्रांताध्यक्ष था। यह गृह-जात सेवक होने से विश्वास होने के कारण शाहजहाँ का परिचित होकर सम्मानित हुआ। १८वें वर्ष में इसका मनसब बढ़कर एक हज़ारी ५०० सवार का हो गया और बादशाही पड़ाव के तोपखाने का और कोतवाली का दरोगा नियत हुआ। बलख की चढ़ाई में सादुल्ला खाँ के प्रस्ताव पर, क्योंकि इसमें कर्मठता प्रकट हो रही थी, यह रुस्तम खाँ फीरोज़जंग के साथ अन्दखुद भेजा गया। वहाँ अच्छी सेवा करने के कारण इसे मोतमिद खाँ की पदवी मिली। जब यह दरबार पहुँचा तब २१वें वर्ष में इसका मनसब दो हजारी १०० सवार का हो गया और यह आख़्त: बेगी नियत हुआ। २२वें वर्ष में इसका मनसब पाँच सदी बढ़ने से यह तीन हजारी हो गया और कासिम खाँ पदवी पाकर शाहजादा औरंगजेब के साथ तोपखाना सहित कंधार के घेरे पर नियत हुआ। २५वें वर्ष में इसके मनसब में सवार बढ़ाए गए और डंका मिला। २८वें वर्ष में

---

१ मीर-बहर की जीवनी अलग इसी भाग में पृष्ठ ५१–२ पर दी गई है।

पाँच सदी बढ़ने से इसका मनसब चार हजारी २५०० सवार का हो गया। २९वें वर्ष में चार सहस्र सवारों के साथ सांतौर दुर्ग विजय करने के लिए नियत हुआ, क्योंकि श्रीनगर का अध्यक्ष उसे नये सिरे से दृढ़ कर तथा कुछ उपद्रवियों को वहाँ का रक्षक बनाकर आस-पास के ग्रामों को लुटवाता था। इसने फुर्ती से वहाँ पहुँच कर उसे घेर लिया, जिससे बलवाई गण अपने में सामर्थ्य न देखकर घरों में आग लगा भाग गए। कासिम खाँ दुर्ग को चौपट कर लौट गया।

शाहजहाँ के राज्य-काल के अंत में राज्य का संपूर्ण प्रबंध दारा शिकोह के हाथ में चला आया तब उसके अन्य भाइयों को विद्रोह करने का बहाना मिल गया तथा सबने अपना अपना प्रयास आरंभ कर दिया। मुरादबख्श जल्दी कर गुजरात में स्वयं राजगद्दी पर बैठ गया। शाहजहाँ ने दारा शिकोह की राय से कासिम खाँ को ३१वें वर्ष के आरम्भ में सन् १०६८ हि० में पाँच हजारी ५००० सवार दो अस्पा, से अस्पा का

का पूरा प्रयत्न करे और यदि उचित समझे तो महाराज का सहायक होकर जो काम हो उसमें योग दे। इस प्रकार निश्चित स्थान तक पहुँचने पर और मुराद बख्श के गुजरात से मालवा की ओर रवाना होने का समाचार सुनकर, कासिमखाँ महाराज के साथ युद्ध के लिये बाँस बरेली के मार्ग से उस प्रांत को गया। जब तक वह खाचरोध से तीन कोस पर पहुँचे तब तक शाहजादा अठारह कोस लाँघकर उज्जैन से सात कोस पर अपने बड़े भाई औरंगजेब से जा मिला, जो दक्षिण से दरबार जा रहा था। महाराज को औरंगजेब के आने का कुछ भी गुमान नहीं था इसलिए यह समाचार पाकर वह आश्चर्य में पड़ गए और निरुपाय होकर युद्ध की तैयारी की। कासिम खाँ दस सहस्र सवारों के साथ हरावल नियत हुआ। इसके अनंतर जब युद्ध पूरे ज़ोर पर था, तब कुछ वीर राजपूत एकाएक आक्रमण कर युद्ध करते हुए आलमगीर के तोपखाने को पार कर हरावल पर जा पड़े। उस ओर से पहिले मध्य ने हरावल तक पहुँचकर मध्य पर धावा किया। गहरी लड़ाई हुई। बादशाही सेना के कई विश्वस्त सरदार मारे गए और राजा जसवंत सिंह भागना निश्चय कर अपने देश चले गए। कासिम खाँ और सारी सेना इस युद्ध से जान बचाना उचित समझ कर भाग गई। दाराशिकोह के प्रथम युद्ध में उक्त खाँ सेना के बाँए भाग का अध्यक्ष था।[1]

---

१. कासिम खाँ औरंगजेब से मिला हुआ था और इसने युद्ध में सहयोग तक न दिया। महाराज जसवंत सिंह की जीवनी इसी ग्रंथ के प्रथम भाग में पृ० १६९–७५ पर देखिए।

जब औरंगजेब विजयी हुआ और आगे बढ़कर वह नूर-मंजिल बाग में ठहरा, तब कासिम खाँ सेवा में पहुँचा और अपने सौभाग्य से संभल तथा मुरादाबाद की जागीरदारी पाकर वहाँ चला गया। यह महाल अच्छा था पर फिसादियों का घर था और इसके पहिले रुस्तम खाँ दक्षिणी को मिला था, जो वहीं युद्ध में मारा गया था। इस समय सुलेमान शिकोह श्रीनगर के पहाड़ों में ठहरा हुआ था। उक्त खाँ की नियुक्ति इसी कार्य के लिए हुई थी कि यह बड़ी बुद्धिमानी और सतर्कता से रहे और जब यह विद्रोही पहाड़ों से बाहर निकले तब आसपास के फौजदारों के साथ प्रयत्न कर उसे कैद कर ले आवे। तीसरे

क़ासिम ख़ाँ किरमानी

यह अपने देश (किरमान) में पैदा हुआ था। अपने सौभाग्य से औरंगजेब की सेवा में भर्त्ती हो गया। वीरता तथा कार्य शक्ति में यह कम नहीं था, इसलिए बराबर उन्नति करता रहा और बादशाही सेवाओं में नियत हो कर उसका कृपापात्र हो गया। ३१ वें वर्ष में बीजापुर के विजय होने के अनंतर कामदार ख़ाँ के स्थानपर मीर तुजुक प्रथम नियत हुआ। उसी वर्ष विजगापत्तन की ओर बलवाइयों को दंड देने भेजा गया। इसके अनंतर मरा का फौजदार नियत हुआ जो विस्तृत प्रांत है और बीजापुरी कर्णाटक[1] कहलाता है। वहाँ अपनी दृढ़ता और परिश्रम से इसने उस प्रांत के बलवाइयों में अपनी धाक बढ़ाई क्योंकि यह अपनी वीरता और साहस से उन्नति करने वाला था। यहाँ तक कि चीतल दुर्ग और राय दुर्ग के निवासी, जो हर एक दूसरे से लूट मार करने में कम नहीं प्रत्युत् बढ़कर थे, कासिम खाँ के कारण शांत हो गए। उक्त खाँ कर्मठता के कारण कभी दम नहीं लेता था और बराबर उन्नति करता रहता था। ३९ वें वर्ष सन् ११०७ हि० (सन् १६९६ ई०) में यह

---

१. बीजापुर राज्य का दक्षिणी भाग इसी नामसे पुकारा जाता था।

ओदौनी के पास पहुँचा था कि बादशाही आज्ञा पहुँची कि खानःजाद खाँ आदि के साथ, जो दरबार से वहाँ गए थे, विद्रोही संताजी[1] को दंड देने जाय। उस विद्रोही के कारण बादशाही प्रांत लूट मार से नष्ट हो रहा था और बादशाही सेना से जो कोई युद्ध को जाता था वही मारा जाता था। उक्त खाँ मार्ग से छः कोस हटकर, क्योंकि बीच में शत्रु थे, बादशाही सेना के पास पहुँचा और चाहा कि सरदारों को इच्छानुसार भोज दे। अधिक सामान कर्णाटक के पड़ाव से नहीं आया था और सोने चाँदी तथा चीनी के बर्तन अदौनी में छोड़ आया था, इसलिए वहाँ से रवाना हो दूसरे दिन अपना पेसखाना तीन कोस पर आगे भेज दिया। शत्रु ने इसका समाचार पाकर अपनी सेना को तीन भाग में बाँटकर एक को पेसखाने पर और एक भाग को सेना का

सामना करने के लिए भेजा और एक भाग अलग तैयार रखा। वह भाग एकाएक पेसखाने पर टूट पड़ा और वहुतों को मारकर जो पाया सो ले गया। दैवयोग से यह समाचार कासिमखाँ को मिला। खान:जाद खाँ को विना सूचित किए वह युद्ध को चल दिया। वह एक कोस भी नहीं गया था कि शत्रु की सेना दिखलाई पड़ी। खान:जाद खाँ जव जागा और उसने यह समाचार सुना तव सामान, खेमा आदि को वहीं छोड़कर शीघ्रता से वह भी रवाना हुआ। घोर युद्ध हुआ और वीरता पूर्ण द्वंद युद्ध भी वहुत हुए। दोनों पक्ष दृढ़ता से डटे हुए थे। ठीक ऐसे ही समय समाचार मिला कि जो भाग शत्रु का अलग था उसने पड़ाव पर धावा कर उसे लूट लिया है। इस पर इनका साहस छूट गया। युद्ध करते हुए दंदेरी की गढ़ी तक एक कोस पहुँचे और वहाँ के तालाव पर पड़ाव डाला। शत्रु ने इनको घेर लिया। तीन दिन तक वे रहे पर युद्ध नहीं किया। ये सव सिवाय तालाव का पानी पीने के खाने का नाम भी नहीं सुन सके। चौथे दिन चींटी और टिड्डी के समान वहुत सी शत्रु-सेना ने घेर लिया। पानी वरसने के कारण वंदूकों का मसाला भी नष्ट हो गया था, और तोपों का लुट गया था इसलिए निरुपाय होकर कुछ समय तक विचार कर जव चारों ओर से रास्ता वंद देखा तव मना करने पर भी सैनिक वलपूर्वक गढ़ी में घुस गए। शत्रु ने उसे घेर लिया। पहिले दिन ज्वार और वाजरे की रोटी उस गढ़ी के भंडारे से मिली और पशुओं के लिए नए पुराने छप्पर का तिनका। दूसरे दिन इन चीजों का भी नाम नहीं रह गया। उक्त खाँ को नशे की लत थी और

उसका जीवन उसी पर निर्भर था। नशा के न मिलने से वह मरने लगा, और तीसरे दिन मर भी गया। उसका प्राण शत्रु के हाथ से निकल भागा। कुछ लोग कहते हैं कि उसने स्वयं जहर खा लिया।

क़ासिम ख़ाँ मीर अबुल् क़ासिम नमकीन

यह हर्व के हुसेनी सैयदों के वंश में से था। आरंभ में यह मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम का नौकर था पर भाग्य से बाद में अकबर के नौकरों में भर्ती हो गया। जब इसने भीरः और खुशाव में जागीर पाई तब निमक के पहाड़ के पास होने से थाली और कटोरा निमक का बनवा कर भेंट में भेजने लगा, जिससे इसे नमकीन की पदवी मिली। यह निमक का पहाड़ बीस कोस लम्बा पंजाब प्रांत के अंतर्गत सिंध सागर दोआब में है, जो व्यास और सिंध नदियों के बीच में है। इसमें से निमक के टुकड़े काटकर निकालते हैं और इससे जो कुछ मिलता है उसमें से तीन हिस्सा खोदनेवाले को और एक हिस्सा बाहर ले आने वाले को मिलता है। व्यापारी लोग आधे दाम से दो दाम प्रति मन खरीदकर दूर ले जाते हैं और सत्रह मन में एक रुपये सरकार को देते हैं। कारीगर लोग उस पत्थर से अनेक प्रकार के बर्तन काटकर निकालते हैं। अकबरी दरबार में मीर की अच्छी प्रतिष्ठा थी। दाऊद खाँ किरानी के युद्ध में हाथी की सोने की जंजीर उसके घर से इसने निकाला था, जिससे इसका पद बढ़ा।

३२वें वर्ष में जब सवाद, बजौर और तीराह के अफग़ान अपने परिवार के साथ दरबार आए तब अकबर ने मीर को वहाँ का करोड़ी और फौजदार नियत कर वहाँ के आगत आधे

सरदारों को अपनी रक्षा में रखकर अन्य आधे को मीर के साथ वहाँ रवाने किया। ४०वें वर्ष तक इसे सातसदी का मनसब मिला था। ४३ वें वर्ष सन् १००८ हि० में यह भक्कर का अध्यक्ष नियत हुआ। सक्खर बस्ती की बड़ी मसजिद की नींव इसीने डाली थी। वहाँ की प्रजा तथा निवासियों के साथ इसने अच्छा सलूक नहीं किया इस पर उनके प्रार्थना पत्र पर यह उस पद से हटा दिया गया। कहते हैं कि जब यह दरबार पहुँचा तब जिन पर इसने अत्याचार किया था वे सब इसे पड़ाव के काजी अब्दुल् हई के पास ले गए। उसने इसे न्यायालय में बुलाया। मीर उपस्थित नहीं हुआ तब काजी ने अकबर से कहा कि मीर ने मुसल्मानी धर्म और बादशाह की आज्ञा नहीं मानी। इस पर हुक्म हुआ कि उसे हाथी के पैर में बाँधकर घुमाया जाय।

जब जहाँगीर के राज्य के पहिले वर्ष में सुलतान खुसरो ने बलवा किया और शेख फ़रीद बोखारी से परास्त होकर जब वह चारों ओर टक्कर खाता फिरता था कि किस ओर जायँ तब अफगानों में से, जो इस विद्रोह में उसके साथी हो गए थे, कुछ लोगों ने राय दी कि दोआब प्रांत के बीच से लूटते मारते राजधानी की ओर चलना चाहिए। यदि काम ठीक हुआ तो अच्छी बात है और नहीं तो पूर्व की ओर चल देंगे क्योंकि वह भारी प्रान्त है। हसन बेग बदख्शी ने कहा कि यह राय ठीक नहीं है, हमें काबुल की ओर चलना चाहिए। खुसरो ने सब अधिकार उसके हाथ में दे दिया था, इसलिए उसकी राय ठीक मानकर उसी ओर चले। बादशाही आज्ञापत्र इस आशय का सब ओर पहुँच चुका था कि जागीरदार और करोड़ी लोग अपनी अपनी सीमा से खबरदार रहें और जहाँ वह दिखलाई पड़े उसके पकड़ने में पूरा प्रयत्न करें इसलिए सब उतारों पर कड़ा प्रबंध था। खुसरो और हसनबेग ने कुछ आदमियों के साथ चिनाब नदी पार करने का निश्चय किया और सौधरः उतार जाकर रात्रि के समय नाव खोजने लगे। एक नाव बिना मल्लाह के हाथ आई। एकाएक उसी समय दूसरी नाव घास दाना से भरी हुई पहुँची। हसनबेग ने चाहा कि उस नाव के मल्लाहों को पकड़ कर अपनी खाली किश्ती पर ले आवें। इससे बड़ा शोर मचा और सौधरः का चौधरी घाट पर आ पहुँचा तथा मल्लाहों को पार जाने से मना कर दिया। इतने में सुबह की सफेदी फैलने लगी। उसी समय मीर अबुल्क़ासिम नमकीन गुजरात के कुछ मंसबदारों के साथ जाकर, जो वहाँ उपस्थित

थे, उन सबको कस्बे में लाकर कैद कर लिया। इस सेवा के उपलक्ष में इसका मनसब बढ़कर तीन हज़ारी हो गया और दूसरी बार भक्कर का शासक नियत हुआ। मीर ने उसको अपना निवास-स्थान बनाकर दुर्ग भक्कर के नाम से प्रसिद्ध पहाड़ी पर दक्षिण ओर लौहरी बस्ती की तरफ पंजाब की नदी के पास, जो ग्यारमानरी के नाम से प्रसिद्ध है, अपना मकबरा बनवाया और वहीं गाड़ा गया। इसका नाम सफ़:सफा रखा, जो चाँदनी में अनुपम मालूम होता है। कहते हैं कि इसकी भूख बहुत थी। हज़ार आम, हजार मीठा सेब और मन मन भर के दो खरबूजे खा डालता था। उसको बहुत सी संतान भी थीं। बाईस लड़के थे। इन में से मीर अबुल् बका अमीर खाँ का अलग हाल दिया हुआ है[1]। सुलतान खुसरो के बलवा के कारण बादशाह की आज्ञा होने पर दूसरे पुत्र मिर्जा कश्मीरी का सिर काट लिया गया। मिर्जा हिसामुद्दीन उन्नति करता हुआ जवानी में मर गया। मिर्जा सदुल्ला को मनसब नहीं मिला था और वह खानखानाँ मिर्जा का नौकर था।

क़ासिम ख़ाँ मीर बह्र

यह सचाई, सफलता, साहस तथा कार्य-कौशल में अपने समय के प्रसिद्ध पुरुषों में से था। यह दोस्त मिर्ज़ा का भांजा था, जो इस ऊँचे वंश में पुरानी सेवा के कारण विशेषता रखता था। जब सन् ९५४ हि० में मिर्ज़ा कामराँ काबुल दुर्ग में घिर गया और हुमायूँ ने अक़ाबैन पहाड़ पर, जो दुर्ग के पास है, पड़ाव डालकर तोपें लगवाईं तब कासिम खाँ अपने भाई ख़्वाजगी मुहम्मद हुसेन के साथ सौभाग्य से लोहे के फाटक और कासिम बर्लास बुर्ज के बीच के बुर्ज से अपने को नीचे गिराकर बादशाह के पास पहुँचा और उसका कृपापात्र हुआ। इसके अनंतर अकबर के बादशाह होने पर यह उन्नति करता हुआ तीन हजारी मनसबदार हो गया। आगरे का बहुत बड़ा दुर्ग कासिम खाँ के सुप्रबन्ध से आठ वर्ष के भीतर सात करोड़ तनका अर्थात् ३५ लाख रुपये में तैयार हो गया। १० वें वर्ष सन् ९७२ हि० में जमुना नदी के तट पर नगर के पूर्व पुराने दुर्ग के स्थान पर, जो अपने समय की एक विचित्र इमारत थी, यह दृढ़ दुर्ग तैयार हुआ था। दीवाल की चौड़ाई ३० गज थी और नींव से कंगूरे तक ऊँचाई ६० गज थी। लाल पत्थर काट कर इस तरह मिला दिए गये थे कि बाल बराबर जगह

बीच में नहीं थी। हर जगह उसकी नींव पानी तक पहुँची थी। विशेष रक्षा के लिए पत्थरों को लोहे के कड़े पहरा कर एक दूसरे पर बैठाया था। २३ वें वर्ष में क़ासिम खाँ आगरे का अध्यक्ष नियत हुआ। ३२ वें वर्ष सन ९९५ हि० के शाबान महीने के आरंभ में कश्मीर विजय करने पर नियत हुआ।

यह वह देश है कि जिसके मार्गों की कठिनाई तथा पहाड़ों की दुर्गमता से पुराने बादशाहों ने इसे लेने का कभी विचार नहीं किया था। इसके चारों ओर आकाश की तरफ शिर उठाए हुए पहाड़ इसकी रक्षा करते है। यद्यपि छ सात रास्ते हैं और इनमें से तीन से भारी सेना भी जा सकती है परन्तु यदि किसी में कुछ वृद्ध पुरुष भी पत्थर लेकर बैठ जायँ तो बहादुर लोग भी उसे पार नहीं कर सकते। कासिम खाँ ने काम दिखलाने के लिए उत्साह के साथ इस कार्य को स्वीकार कर लिया।

दुष्टता और नीचता भरी हुई थी इसलिए कोई दिन या महीना नहीं बीतता था कि जिसमें वह उपद्रव नहीं मचावे।

क़ासिम ख़ाँ ने इस नित्य के उपद्रव से घवड़ाकर वहाँ के शासन से त्यागपत्र दे दिया और ३४ वें वर्ष में काबुल राजधानी का अध्यक्ष नियत हुआ तथा बहुत दिनों तक वहीं रहा। इसका एक पुत्र अन्दजानी बदख्शाँ में अपने को शाहरुख मिर्जा का पुत्र प्रगट कर कुछ दिन तक सफलतापूर्वक काम चलाता रहा, पर इसके अनंतर जब तूरानशाह ने उस पर विजय प्राप्त कर लिया तब इसने ज़ावुली हज़ारा से मित्रता कर ली। जिस समय कासिम खाँ दरबार गया, वह कुविचार से कुछ सेना के साथ उस प्रांत में पहुँचा और वहाँ के रक्षकों से यह प्रगट किया कि वह बादशाही दरबार को जा रहा है। क़ासिम ख़ाँ के पुत्र हाशिमबेग ने, जो अपने पिता का प्रतिनिधि होकर उस प्रांत का काम देख रहा था, कुछ आदमियों को भेजा कि उसे साथ लिवा लावें। वह विद्रोही जब पंजशेर के आगे पहुँचा तब हज़ारों के रक्षास्थल की ओर फुर्ती से बढ़ा। हाशिम बेग भी शीघ्रता से आ पहुँचा और उसको थोड़े ही युद्ध में कैद कर काबुल ले गया। इसके अनंतर कासिम खाँ ने लौटने पर सिधाई से उसको अपने पास स्थान देकर उसकी रक्षा में ढिलाई कर दी और उसके साथियों को नौकरी दे दी। इसके भला चाहने वालों ने बहुत कुछ समझाया पर कोई लाभ न हुआ। वह उपद्रवी ५०० बदख्शियों को मिलाकर घात में बैठा। जिस समय उसको बादशाही आज्ञा से दरबार भेजा, वह दोपहर को कुछ आदमियों के साथ क़ासिम ख़ाँ के सोने के स्थान में जा पहुँचा, जहाँ

सिवाय कुछ दासियों के कोई नहीं था। कासिम खाँ वीरता से लड़कर मारा गया। इसका सिर भाले पर रखा गया। हाशिम बेग ने यह समाचार सुनकर दरवाजा तोड़ डाला और तीर तथा गोली चलाकर बहुतों को मार डाला। इसी में वह उपद्रवी भी मारा गया। यह घटना ३९ वें वर्ष सन् १००२ हि० (सन १५९४ ई०) में हुई थी।

क़ासिम मुहम्मद ख़ाँ नैशापुरी

यह नैशापुर के बड़े आदमियों में से था। जब उस जिले में उजबकों का विशेष उपद्रव हुआ तब उक्त खाँ अपना देश छोड़कर बैराम खाँ के पास पहुँचा और सिकंदर खाँ सूर से जो युद्ध हुआ था, उसमें बैराम खाँ के साथ रहकर अच्छी सेवा की। अकबर के प्रथम वर्ष में हेमू के साथ के युद्ध में अली क़ुली खाँ ख़ानज़माँ के साथ हरावल में नियुक्त होकर बहुत परिश्रम किया। उसी वर्ष कुछ सेना के साथ शेरख़ाँ अफ़ग़ान के दास हाजीखाँ को दमन करने के लिए नियत हुआ, जो साहस और बुद्धिमानी के लिए प्रसिद्ध था और जो उस समय मेवाड़ के भूम्याधिकारी राणा उदयसिंह से अजमेर तथा नागौर छीनकर उन पर अधिकृत हो गया था। बादशाही सेना से हाजी खाँ के आदमी हार कर भाग गए और वह स्वयं गुजरात चला गया। उक्त खाँ अर्थात् कासिम मुहम्मद ख़ाँ ने अजमेर जाकर वहाँ का प्रबंध ठीक किया।

जब पाँचवें वर्ष बैराम खाँ का प्रभुत्व घट गया तब वह उससे अलग होकर बादशाह की ओर हो गया। इसी वर्ष शम्सुद्दीन खाँ अतगा के साथ बैराम खाँ से युद्ध करने के लिए नियत हुआ और युद्ध में यह सेना के बाएँ भाग का अध्यक्ष था। विजय के अनंतर यह मुलतान में जागीर पाकर पाकर वहाँ गया। ९वें वर्ष जब बादशाह अब्दुल्ला

खाँ उज़बक[1] को दमन करने के लिए हाथियों का अहेर खेलने के बहाने मालवे की ओर यात्रा कर सारंगपुर के पास पहुँचा तब उक्त खाँ, जो उस समय उसी ओर नियत था, स्वागत के लिए उपस्थित हुआ। बादशाह से उसको अपने गृह पर लिवा जाने की प्रार्थना कर सम्मानित हुआ। अपने और अपने सेवकों के लगभग सात सौ घोड़े और ऊँट बादशाह को निरीक्षण करा कर उन सबको बादशाही सेना के, जो चढ़ाई पर आई थी, सरदारों और सैनिकों में बाँटने से इसका बड़ा नाम हुआ। जब अब्दुल्ला खाँ उज़बक ने बादशाह के आने का समाचार सुना तब वह मांडू से भाग गया। बादशाह ने उक्त खाँ और कुछ दूसरे आदमियों को आगे भेजा कि शीघ्र जाकर उसे रोकें। इसके अनंतर मार्ग में अब्दुल्ला खाँ ने खुले तौर पर बलवा-कर युद्ध किया पर बादशाह के शीघ्र ही पहुँचने पर वह भाग गया। उक्त खाँ दूसरे आदमियों के साथ उसका पीछा करने

क़ासिम, सैयद व हाशिम, सैयद

ये दोनों सैयद महमूद खाँ बारहा के पुत्र थे। अकबरी राज्य के १७वें वर्ष में सैयद कासिम खानआलम के साथ महम्मद हुसैन मिर्ज़ा का पीछा करने पर नियत हुआ, जो खान्-आज़म कोका से परास्त होकर दक्षिण की ओर भाग गया था। सैयद हाशिम २१वें वर्ष में राय रायसिंह के साथ सिरोही के शासक सुलतान देवड़ा को दंड देने पर नियत हुआ, जिसने विद्रोह किया था और सिरोही के विजय करने में इसने बहुत प्रयत्न कर प्रसिद्धि प्राप्त की। २२वें वर्ष में दोनों भाई शह्-बाज खाँ के साथ राणा को दमन करने पर नियत हुए। २५वें वर्ष में जब मालदेव के पुत्र चन्द्रसेन के विद्रोह का समाचार मिला तब सैयद कासिम और सैयद हाशिम, जो अजमेर प्रांत में जागीरदार थे, दूसरे लोगों के साथ उस विद्रोही को दंड देने पर नियत हुए। इन्होंने थोड़े ही समय में उस पर आक्रमण कर उसे दमन कर दिया। २८वें वर्ष में मिर्ज़ा ख़ाँ ख़ानख़ानाँ के साथ मुज़फ्फर गुजराती को दंड देने पर ये दोनों नियत हुए, जिसने वहाँ विद्रोह मचा रखा था। इसके अनंतर जब मिर्ज़ा ख़ाँ अहमदाबाद पहुँचा तब युद्ध के दिन दोनों भाइयों को हरा-वल में स्थान मिला था। घोर युद्ध हुआ, जिसमें सैयद हाशिम वीरता से लड़कर मारा गया। इसका मनसब एक हजारी था। सैयद क़ासिम युद्ध में घायल हो गया था, इसलिये मिर्ज़ा ख़ाँ

इसको दूसरों के साथ नगर की रक्षा के लिये छोड़ गया। इसके बाद बारहा के सैयदों के साथ पत्तन का थानेदार नियत हुआ। इसके अनंतर जब मिर्ज़ा ख़ाँ कुलीज ख़ाँ को अहमदाबाद की रक्षा का भार सौंप कर बादशाह की सेवा में चला आया, तब यह उक्त प्रांत की सेना का सरदार होने के कारण दोबारा मुज़फ्फर, छोटे कच्छ के ज़मींदार जाम और बड़े कच्छ के जमींदार खंगार पर सेना ले जाकर विजयी हुआ। जब गुजरात की अध्यक्षता ख़ानख़ानाँ के बदले में ख़ानआज़म कोका को मिली, तब उस युद्ध में, जो मिर्ज़ा कोका और सुलतान मुज़फ्फर के बीच ३७वें वर्ष में हुई थी, यह हरावल में नियत था। इसके बाद शाहज़ादा सुलतान मुराद के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर जाकर यह दक्षिणियों के युद्ध में बाएँ भाग का सरदार हुआ और बहुत प्रयत्न कर वीरता में इसने नाम कमाया। ४४वें वर्ष सन् १००७ हि० (सन् १५९९ ई०) में बीमारी से मर गया। यह डेढ़ हज़ारी मनसब तक पहुँचा था। दोनों के पुत्रों और पोतों ने अपने समय पर उन्नति की, जिनमें कुछ का हाल अलग लिखा गया है।

--

क़िया ख़ाँ गङ्ग

यह हुमायूँ का एक सरदार था। उस बादशाह के राज्य के अंत में कोल जलाली तथा उसके सीमा प्रांत में काम करता रहा। जब हेमू की घटना के समय दूर तथा पास सर्वत्र उपद्रव मचा तब यह तरदीबेग ख़ाँ के पास दिल्ली चला गया। युद्ध के दिन हरावल में रहकर इसने बड़ी वीरता दिखलाई, परन्तु भाग्य ने असफलता लिख दिया था, इसलिये जो होना था वही हुआ। इसके अनंतर जब अभागा सर्दार (तरदी बेग) अकबर के इक़बाल-रूपी तलवार द्वारा मारा गया तब क़िया ख़ाँ आगरा राजधानी और उसके आसपास के प्रांत का शासक नियत हो कर पाँच हजारी मनसबदार हुआ। ग्वालियर के पास के कुछ परगने इसे जागीर में मिले थे, इस करण अपनी वीरता तथा कार्य कुशलता से सामान इकट्ठा कर दूसरे वर्ष ग्वालियर दुर्ग घेर लिया, जो हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध दुर्गों में से है और जिसे सलीमशाह ने अपनी राजधानी बना रखा था। सलीम शाह के दास बुहेल ख़ाँ ने, जो उसमें दृढ़ता से रहता था, यह जानकर कि बादशाही राज्य की सीमा के पास रहते हुए उस दुर्ग की बराबर रक्षा करना सम्भव नहीं है इसलिये उसने राजा राम शाह को, जो, उस दुर्ग के प्राचीन शासक मानसिंह के वंश में से था, कहलाया कि यह दुर्ग तुम्हारा पैतृक है इस-लिए थोड़े धन के बदले तुम्हें दे दूँगा। राम शाह यह अनहोनी

बात सुनकर उस ओर चला। क़िया ख़ाँ ने यह समाचार पाकर उस पर आक्रमण कर उसको भगा दिया। रामशाह राणा के राज्य में चला गया। ३ रे वर्ष सन ९६६ हि० में अकबर ने आगरे आते ही इसकी सहायता को सेना तुरन्त भेजी। बुहेल ने निरुपाय होकर बादशाही अधीनता स्वीकार कर ली। हाजी मुहम्मद ख़ाँ सीस्तानी उसकी प्रार्थना पर वहाँ गया और उसे दरबार ले आया। १० वें वर्ष में अकबर ख़ानज़माँ के उपद्रव के कारण पूर्व की ओर चला तब कन्नौज में क़ियाख़ाँ ख़ानख़ानाँ मुनइम ख़ाँ के साथ सेवा में पहुँचा क्योंकि वह दोषियों में से था। बादशाह ने उसे क्षमा कर दिया। बंगाल की चढ़ाई के बाद उड़ीसा पर अधिकार करने गया। जब बंगाल में बलवा मचा और यद्यपि उसको यह शांत नहीं कर सका तब भी यह कल

क़िलेदार ख़ाँ

इसका नाम मिर्ज़ा अली अरब था और यह अर्जुमंद अरब ख़ाँ का पुत्र था। इसके पिता ने इसकी शिक्षा में बहुत प्रयत्न किया और इसकी योग्यता चारों तरफ़ प्रसिद्ध हुई। शाहजहाँ ने इसको पाँच सदी २५० सवार का मनसब दिया। २४वें वर्ष में अपने पिता की आज्ञानुसार दक्षिण से राजधानी आया और इस पर बादशाही कृपा हुई। खिलअत और डंका इसके पिता के पास इसी के साथ भेजा गया। उस अवश्यंभावी घटना के बाद एकांतवासी अरब ख़ाँ २९वें वर्ष में दक्षिण के सूबेदार शाहज़ादा औरंगजेब की प्रार्थना पर त्रिबंग और हरीस दुर्गों का थानेदार हुआ। ये दोनों दुर्ग आसपास ही हैं और संगमनेर के बड़े दुर्गों में से हैं। आलमगीर के जलूस के पहिले वर्ष में राजभक्ति से बादशाह के पास पहुँचा। शुजाअ के युद्ध में अजमेर के मोर्चे पर बड़ी दृढ़ता के साथ बाँई ओर के वीरों की सेना का अध्यक्ष हुआ। यह दक्षिण देश के चाल व्यवहार और रस्म को अच्छी तरह जानता था, इसलिए उस प्रांत का एक सहायक नियत होकर अंत समय तक वहीं रहा। मनसब बढ़ने और किलेदार ख़ाँ की पदवी पाने से यह सम्मानित हुआ। कुछ समय तक यह औरंगाबाद का अध्यक्ष और फौजदार रहा। इसके अनंतर धारवार फतेहाबाद का दुर्गाध्यक्ष रहा। २५वें वर्ष में जब औरंगजेब अजमेर से बुरहानपुर आया और तीन चार महीने सन् १०९३ हि०, सन् १६८२ ई० के सफ़र

महीने के अंत तक वहीं रहा तब उक्त खाँ धारवर में मर गया और अपने पिता के पास गाड़ा गया ।

इसकी माता सैयद थी और यज़्द के रहनेवाले मीर इब्राहीम के पुत्र सैयद शरीफ की पुत्री थी । जब इस स्त्री ने स्वीकृति दी तब अरब खाँ ने मिर्ज़ा जमशेदबेग यज़्दी कज़िलबाश की लड़की से अपना विवाह कर लिया । मिर्ज़ा जमदेशबेग मीर मासूम बदसिगाली का दामाद था । उसकी माँ सफवी शाहज़ादों की लड़कियों में से थी । उसका पिता मीर मुईन मीर मुल्ला का लड़का था, जो शाह तहमास्प सफवी के समय अस्तराबाद का मंत्री था और जिसके पिता खलीफा मीर को शाह इसमाइल प्रथम ने यह खलीफा की पदवी दी थी । यह मुल्ला मुईन का लड़का था, जो खुरासान का प्रसिद्ध वायज़ और मेआरजुन्नबूवत का लेखक था । मिर्ज़ा जमदेशबेग की दूसरी पुत्री को अपने दामाद के पुत्र [illegible] खाँ के साथ ब्याह कर दिया ।

दीवान मूसवी खाँ मिर्जा मुइज्ज़ ने एक पत्र आज्ञा के तौर पर दफ्तरी की पदवी से, अज्ञानता से या उसके पद को न पहचान कर लिख दिया। उक्त खाँ ने लज्जा और अरब होने के पक्षपात से वही पदवी उसके जवाब में लिखा क्योंकि उसकी असलियत का तेज उसमें था। मूसवी खाँ ने उक्त खाँ के पत्र को पागलपन का लेख समझ कर बादशाह के पास कहला दिया, जिससे वह पद से हटा दिया गया। उक्त खाँ ने दरबार पहुँच कर निश्चय किया कि मूसवी खाँ से खड़ी सवारी युद्ध करे पर उसने अच्छे आदमियों को बीच में डाला और दरबार में कुल सच्ची बात खुल गई और इस पर फिर से बादशाही कृपा हुई।

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद जब यह औरंगाबाद में रह कर अपना काम देखता था तब एकाएक आकाश ने इन लोगों में भेद डाल दिया। उस समय नवाब आसफ़जाह मुहम्मद अमीन खाँ बहादुर से मिलकर मुहम्मद आज़मशाह के साथ अलग होकर इसी शहर में आकर ठहर गया और उपद्रव का समय बीतने पर जिस किसी के पास धन की शंका होती उसे रुपयों का दंड देकर वसूल करते थे। उक्त खाँ को, जो बाप दादों के समय से ऐश्वर्य के लिए प्रसिद्ध था, घर से लाकर बहुत सा रुपया वसूल किया। उस दिन से उक्त खाँ काम छोड़कर घर बैठ रहा। इसी बेकारी से, जो भले आदमियों के लिए मृत्यु से अधिक कष्ट-कर है, उसके दिमाग में पागलपन आ गया परंतु उसका यह पागलपन विचित्रता लिए हुए था। एक दिन वह सोने और चुप रहने में बिता देता था और नहीं भी बिताता था कि कोई उसके पास आवे। दूसरे दिन आदमियों से खूब मिलता और अनेक

प्रकार से प्रेम दिखलाता था। इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत कर मर गया। इसका पुत्र मिर्ज़ा रज़ाअली कविता करने और गद्य-लेखन में अच्छी योग्यता रखता था।

उपदेश—

संसार-चक्रों के हर एक चक्र एक को प्रतिष्ठा बढ़ाने और उसकी उन्नति करने के लिए है और दूसरे किसी के कम होने या अवनत होने का कारण है। मानों प्राचीन समय धन या ऐश्वर्य का था। अरब खाँ और किलेदार खाँ ने लिखे गए मनसबों से ही जो ऐश्वर्य व शक्ति तथा सम्मान की अधिकता अपनी योग्यता से पैदा किया था वह पाँच हजारी तथा सात हज़ारी मनसब-दारों के समान होने से बुद्धि उसे स्वीकार नहीं करती और झूठी समझती है।

ाति में उसके समान कोई नहीं था। उसके इस मनोहर शैर ा अर्थ यों है—

लज्ज़त सभी मुनासिबतो में है।
दूध से दिल शकर का खिलता है॥

परन्तु उसमें शील न था, खुदा उसे जीविका दे।

क़िवामुद्दीन ख़ाँ इस्फ़हानी

ईरान के प्रसिद्ध मंत्री खलीफा सुलतान का यह भाई था। यह वंश वास्तव में माज़िंदरान का है और मुरअशिया सैयदों में से मीर क़िवामुद्दीन उर्फ मीर बुज़ुर्ग से चला है, जो सन् ७६० हि० में माज़िंदरान और तबरिस्तान का शासक था। इसके बहुत दिनों के बाद घटनाओं के फेर में पड़कर उक्त मीर का एक पौत्र अमीर निज़ामुद्दीन वहाँ से इस्फ़हान आकर गुलबार महल्ले में रहने लगा और उन्नति करते हुए अच्छा ज़मींदार हो गया। इसके अनंतर उक्त अमीर के पौत्रों में से खलीफा सैयद अली का, जिसे खलीफा सुल्तान भी कहते थे, समय आया। [illegible] इसी के कारण सैयदों का यह वंश खलीफा के नाम से [illegible] हुआ। कुछ लोग कहते हैं कि शाह तहमास्प सफ़वी ने [illegible] खलीफा सुल्तान की पदवी देकर डंका और झंडा [illegible] था। इसके बाद उसका योग्य पुत्र मीर शुजाउद्दीन [illegible] का नाना था। यह इस्फ़हान के [illegible] में से था और इसकी प्रसिद्ध रुबाई का अनुवाद [illegible] है—

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥

अगर न जाऊँ तो पास खींचता है ।
जलता हूँ अगर उसके गिर्द फिरा ॥

मीर शुजाउद्दीन मुहम्मद अपनी बुद्धिमानी, दया तथा सम्मान के लिए प्रसिद्ध था। अपनी अचल सम्पत्ति के कारण, जो उसे बाप दादों से मिली थी, वह अमीरों की तरह कालयापन करता था। उसका पुत्र मीर रफ़ीउद्दीन महम्मद अनेक विद्याओं का ज्ञाता था और शाह अब्बास प्रथम की उसपर कृपा थी। सन् १०२६ हि० में शाह के ३१वें वर्ष में यह क़ाज़ी सुलतान मूसवी तुरबती के स्थान पर सदर नियत हुआ, जो क़ाज़ी ख़ाँ सैफ़ी हुसेनी के स्थान पर ईरान का सदर नियत होने के आठ दिन बाद मर गया था। इसने अपना काम बड़ी सचाई से किया। सन् १०३४ हि० में यह मर गया। इसके पुत्र ख़लीफ़ा सुलतान ने उसके शव को करबला भेजकर वहाँ के रौज़ा में गड़वाया। ख़लीफ़ा सुलतान शाह अब्बास प्रथम का श्वसुर और ईरान का वज़ीर होने से बहुत सम्मान प्राप्त कर चुका था, इसलिए उसका भाई मीर क़िवामुद्दीन ईरान का सदर नियत हुआ, जो उस प्रांत के उच्च पदों में से है। इसके अनंतर भाई की मृत्यु, राज्यविप्लव और तत्कालीन बादशाह की शिथिलता से घर छोड़कर हिन्दुस्तान चला आया। औरंगज़ेब के ७वें वर्ष के आरंभ में यह दरबार में उपस्थित हुआ और इसे अच्छा खिलअत, फूल कटारः सहित जड़ाऊ जमधर, मोती की माला, सोने की साज की तलवार, जड़ाऊ फूल की ढाल, यशम की कलगी, दस सहस्र रुपये नक़द, तीन हज़ारी १५०० सवार का मनसब और ख़ाँ की पदवी मिली। इसके पहिले भी ख़लीफ़ा सुलतान के संबंधी होने के नाम से

इसी राज्य में आकर कई लोग सम्मानित हो चुके थे। जैसे उसका भांजा मीर जाफर शाहजहाँ के २८वें वर्ष में सूरत आया था, जब कि ख़लीफा सुलतान जीवित था पर उसी वर्ष वह मर गया। उसको वहीं के कोष से छ सहस्र रुपया दिया गया था। बादशाह के यहाँ उपस्थित होने पर उसे डेढ़ हजारी ५०० सवार का मनसब और दस सहस्र रुपया मिला था। ३१ वें वर्ष पाँच सदी ५०० सवार मनसब में बढ़ाए गए और बिहार प्रांत में हुसेनपुर की फौजदारी तथा जागीर मिली। औरंगजेब के तीसरे वर्ष में खलीफा सुलतान का संबंधी (दामाद) मीर एमादुद्दीन सेवा में आया। उसे रहमत खाँ की पदवी और बयूतात की दीवानी मिली। ६ठे वर्ष में दूसरा संबंधी सैयद सदरजहाँ आया और उसे योग्य मनसब मिला।

अब क़िवामुद्दीन खाँ का बचा वृत्तांत लिखा जाता है।

था। क़िवामुद्दीन खाँ अपने वंश की उच्चता तथा गुणों के कारण अपने देश की प्रकृति के अनुसार अपने को उच्च पदस्थ समझता था, इसलिए वह उसके घमंड को कैसे सह सकता था? लाहौर पहुँचते ही उसे क़ाज़ी के हाल का पता लगा। पहिली ही भेंट में खटपट हुई और क्रमशः मनोमालिन्य बढ़ता गया। क़ाज़ी का भांजा सैयद फ़ाज़िल, जो लड़ाका और मुँहजोर था, तथा कोतवाल से यहाँ तक गाली गलौज और मारपीट हो गई कि वह उसकी जान लेने को तैयार हो गया। यह झगड़ा इतना बढ़ा कि अंत में सूबेदार ने कोतवाल को, जिसका नाम निज़ामुद्दीन उर्फ़ मिर्ज़ा बेग था, सिपाहियों के साथ भेजा कि क़ाज़ी को पकड़ कर ले आवे। क़ाज़ी ने अपने मकान की दृढ़ता पर विश्वास कर लड़ाई आरंभ कर दी, जिसमें क़ाज़ी और उसका भांजा दोनों ओछापन दिखला कर मारे गए। उसका पुत्र घायल हुआ। लाहौर के आदमी ऐसी बातों में अपनी धर्मांधता दिखलाने और इसलाम की मदद का बहाना करने में बड़े तेज़ होते हैं। इस घटना पर बाजारू आदमी और पढ़े लिखे, जो कुछ अक्षर पढ़कर अपने को विद्वान कहते थे पर मूर्खों से भी गए बीते थे, हज़ारों ने इकट्ठे होकर बलवा कर दिया। सूबेदार और कोतवाल अपने घरों में बंद होकर लड़ने को तैयार हुए और बहुत दिनों तक यह उपद्रव नगर में चलता रहा। विद्रोही शांत न हुए और बाज़ारों में उपद्रव करते रहे। यहाँ तक कि जनसाधारण के लिए मार्ग चलना बंद हो गया। अंत में दोनों मनसब और पद से हटाए गए। शाहज़ादा मुहम्मद आज़म सूबेदार नियत हुआ और उसका नायब लुत्फ़ुल्ला खाँ हुआ। उक्त खाँ के पहुँचने तक

उसके भाई हिफ़ज़ुल्ला खाँ को, जो चिनौत पंजाब का फौजदार था, आज्ञा मिली कि शीघ्र लाहौर पहुँचकर कोतवाल को क़ाज़ी के वारिसों को दे दे और सूबेदार को दरबार रवाना करे। उसने आज्ञा के अनुसार काम किया। निज़ामुद्दीन लाहौर में दंड को पहुंचा और क़िवामुद्दीन खाँ का भी उन उपद्रवियों के झुंड से बचकर निकल जाना संभव नहीं था इसलिए निरुपाय होकर परदेदार पालकी में बैठाकर नदी के किनारे लाए, जो नगर के नीचे बहती थी। वहाँ से नाव पर सवार कर रवाने किया। २३ वें वर्ष अजमेर में बादशाह के पास पहुँचा। काज़ी का पुत्र भी बहुतों के साथ उपस्थित हो कर पिता के खून का वादी हुआ। बादशाह ने आज्ञा दी कि नियमानुसार दावा करो। उक्त खाँ ने न्याय-विभाग में ओछापन दिखलाया। क़ाज़ी शेखुल् इसलाम ने खून को साबित करने की आज्ञा न दी, इससे बहुत दिनों तक यह मोक़द्दमा अधर में लटकता रहा। उक्त खाँ शोक और क्षोभ के कारण शारीरिक तथा मानसिक रोगों से ग्रस्त हो

आकर एक हजारी मनसबदार हुआ। जब उसका भाई बादशाह की कृपा से शुजाअत खाँ से सफशिकन खाँ हो गया, तब इसे यह पदवी मिली। यह अपने भाई के साथ गोलकुंडा के घेरे में घायल होकर बादशाह का कृपापात्र हुआ।

कुतुबुद्दीन ख़ाँ अतगा

यह शम्सुद्दीन खाँ अतगा का भाई था और अकबर का एक बड़ा सरदार तथा पाँच हजारी मनसबदार था। पंजाब की जागीरदारी के समय लाहौर नगर में कई मकानों की नींव डाली थी। ९वें वर्ष मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम की सहायता को काबुल गया। अपने देश ग़ज़नी जाकर वहाँ की तमाम जातियों और दूर तथा पास के संबंधियों को बुलाकर सब पर कृपा की। वहाँ सराय तथा बाग बनवाकर लौट आया। जब अतगा जाति से पंजाब ले लिया गया, तब उक्त खाँ को मालवा सरकार मिला। गुजरात विजय होने के अनंतर यह सरकार भड़ौच का जागीरदार नियत हुआ, जो अहमदाबाद के दक्षिण में है और जिसके दुर्ग के नीचे से नर्मदा नदी बहती हुई समुद्र में मिलती है, तथा जो उस प्रांत का एक बंदर माना जाता है।

२८वें वर्ष सन् ९९१ हि० में सुलतान मुज़फ्फ़र ने गुजरात में उपद्रव मचाया और दूरदर्शिता तथा अनुभव के रहते भी यह अपने दुर्भाग्य से उसका कोई उपाय नहीं कर सका। पाटन या पत्तन के सरदारों ने कई बार लिखा कि बलवाई जागीर तथा मनसब पर मिलकर धावा कर रहे हैं इसलिए बड़ी चुस्ती और चालाकी से चढ़ाई करनी चाहिए, जिसमें वे परास्त हो सकें परन्तु इसने ढिलाई की इसलिए कोई ठीक उपाय न हो सका। बादशाह ने इसपर इसकी भर्त्सना की तब इसने कुछ सेना विद्रोहियों पर भेजी पर वह हारकर लौट आई। ऐसे समय इसने भड़ौच के दुर्ग को सामान से सुसज्जित न कर स्वयं बाहर निकला। भला चाहनेवालों ने कहा कि इतने बड़े उपद्रव को सहज समझ लेना और सेना को दिलासा न देना ठीक नहीं है। यह समय धन बाँटने और विश्वास पैदा करने का है परंतु इसने कुछ नहीं सुना। जब सुलतान मुज़फ्फ़र पास पहुँचा और दोनों ओर से सेनाएँ युद्ध के लिए तैयार हुईं तो इसके पक्ष के बहुत से आदमी शत्रु से जा मिले। लाचार होकर क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ अपनी खास सेना के साथ बड़ौदा चला गया। उन सबने उसका तिरस्कार किया। क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ स्वार्थ तथा प्राण के मोह से पूरा प्रयत्न न कर संधि की बातचीत करने लगा। ज़ैनुद्दीन कम्बू को भेजकर हेजाज जाने की इच्छा प्रगट की और यह नहीं समझा कि स्वार्थत्याग ही प्रतिष्ठा का रक्षक है और वांछित जीवन यही है कि प्रतिष्ठा बनी रहे। अंत में प्रतिष्ठा त्यागकर और प्रतिज्ञा कराकर यह सुलतान मुज़फ्फ़र के पास गया पर उसने प्रतिज्ञा का विचार न कर इसको मरवा डाला।

कहते हैं कि सुलतान की विद्रोह-प्रियता तथा प्रतिज्ञा-पालन का अभाव क़ुतुबुद्दीन खाँ को मालूम था लेकिन उसकी बुद्धि की आँखें बन्द हो गई थीं, जिससे उसपर विश्वास कर अपनी जान खो बैठा। शेर—

अजल[1] जब खून से रँगने लगी हाथ।
क़ज़ा ने बन्द कीं बारीक बीं[2] आँख॥

उसके पुत्रों में से एक नौरंग खाँ था, जिसने कुछ दिन तक दरबार में रहकर मालवा प्रांत में जागीर पाई थी। अंत में वह गुजरात प्रांत में जागीरदार नियत हुआ और वहाँ उसने बहुत से अच्छे काम किए। ३९वें वर्ष में शूल रोग से मर गया। दूसरा पुत्र गूजर खाँ था, जिसे भी गुजरात में जागीर मिली थी और ख़ानआज़म कोका के साथ वहीं उसने बहुत से काम किया था।

क़ुतबुद्दीन ख़ाँ ख़ेशगी

यह वाजीद के नाम से प्रसिद्ध था। इसका पिता सुलतान अहमद ज़ई का पुत्र, प्रसिद्ध नज़र बहादुर का नाती तथा जाँबाज़ ख़ाँ खेशगी का दामाद था। शाहज़ादा मुहम्मद आज़म की सेवा में इसने प्रसिद्धि और विश्वास प्राप्त किया। किसी समय काम से हाथ उठा कर यह अपने देश में रहने लगा। अंत में बुलाए जाने पर फिर बादशाही सेवा के लिए तैयार हो गया पर रास्ते ही में वह पागल होकर मर गया। इसे चार पुत्र थे। हुसेन खाँ का वृत्तांत विस्तार से दिया गया है। अन्य तीन वाज़ीद खाँ, पीर खाँ और अली खाँ थे। तीसरे (अली खाँ) ने कुछ उन्नति नहीं किया। दूसरा (पीर खाँ) बहादुर शाह के समय में अच्छा मंसब पाकर शीघ्र मर गया। उसका पुत्र नूर खाँ शम्स खाँ की पदवी के साथ भट्टः जालंधर दोआब का फौजदार नियत हुआ।

जिस समय उपद्रवी सिक्खों ने लाहौर से दिल्ली तक के सभी नगरों को लूट-मार कर वर्बाद कर रखा था और वजीर खाँ के समान सरहिंद के शक्तिमान फौजदार को निकाल कर गाँव पर कब्जा कर लिया था उस समय जब उक्त खाँ तक नौबत पहुँची तब यह पाँच सहस्र सवार और मुसलमानों के झुंड सहित, जो काफ़िरों के साथ लड़ने के लिए बड़े उत्साह से संग आये थे, उनका स्वागत क़िया। सुलतानपुर से सात कोस पर

राहून के पास युद्ध की तैयारी हुई । काफ़िरों की तोपों के छूटने और पत्थरों के फेंकने के बाद बड़ी भीड़ के साथ उनपर पीछे से धावा कर बहुतों को मार डाला । बचे हुए उपद्रवी राहून दुर्ग में घुस गए और कुछ दिन वहाँ रह कर तथा व्यर्थ का प्रयत्न कर भाग गए । इसके अनंतर वीरता तथा साहस से भाग्य के कारण बाईस युद्धों में विजय पाया । उसी समय मुहम्मद अमीन खाँ चीन बहादुर दरबार से आगे भेजे जाने पर सरहिंद पहुँचा तब उक्त खाँ घमंड के कारण उसका योग्य स्वागत न कर मन-माना शत्रुओं को दंड देने और दुर्ग सरहिंद लेने में प्रयत्न करता रहा । उक्त बहादुर ने दरबार को लिख भेजा कि शम्स खाँ जितनी सेना रखता है, उसीसे अपना उत्तरदायित्व छोड़ कर दूसरा दूर का काम करता है । राज्य के कर्मचारियों ने उसके स्वत्व को न पहचान कर उसको, जिसने बहुत प्रयत्न किया था, पद से हटा दिया ।

तथा वहरामपुर के पास विद्रोह आरम्भ किया। क़ुतबुद्दीन ख़ाँ रायपुर से १६ कोस उत्तर-पश्चिम की ओर था। दैवात् उसका भतीजा शम्स ख़ाँ दोआव से हटाये जाने पर लौटते समय अपने चाचा के पास पहुँचा। यह समाचार पाकर शम्स ख़ाँ के वहनोई शहदाद ख़ाँ को डेढ़ हज़ार सवार के साथ रायपुर की रक्षा के लिए शीघ्रता से भेज दिया और स्वयं शम्स ख़ाँ के साथ ९०० सवार सहित आधा रास्ता तय कर शिकार खेलने लगा। उसी समय उन विद्रोहियों के पास पहुँचने का समाचार मिला। उक्त ख़ाँ रायपुर पहुँचकर कुल सेना के साथ उस पर टूट पड़ा। शम्स ख़ाँ ने, जो इन सवको कई बार दंड दे चुका था, इनकी संख्या का विचार न कर उनपर धावा कर दिया और तोपखाने से लाभ न उठाकर एक दम आक्रमण ही कर दिया। ज्योंही सामना हुआ और उन सवने इसका नाम सुना त्यों ही सिवाय भागने के और किसी में अपनी भलाई नहीं समझी। शम्स ख़ाँ ने उनका पीछा किया। क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ ने वहुत कुछ कहा कि यह विजय दैवी है इसलिए अपनी सेना को इकट्ठी कर उन्हें दमन करना चाहिए पर उसने जवानी तथा साहस के घमंड पर कुछ नहीं सुना। वे विद्रोही आदमियों की कमी देखकर लौट पड़े और युद्ध को तैयार हो गए। गहरी लड़ाई हुई। अंत में यहाँ तक हाल हुआ कि हाथ थककर रुक गए। दोनों पक्ष वाले तलवार फेंककर वाहु युद्ध करने लगे और एक दूसरे को दाँत से पकड़ते थे। शम्स ख़ाँ मारा गया और क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ चोटें खाकर वेहोश हो गया। कुछ अफ़ग़ान इन दोनों सरदार के हाथियों सहित वच गए थे। काफ़िर इन दोनों

हाथियों को कभी खींच ले जाते थे और कभी अफ़ग़ान हमलाकर छीन लाते थे। इसी बीच शहदाद खाँ, जो रायपुर से स्वागत करने के लिए आ रहा था, इस युद्ध का समाचार सुनकर फुर्ती से कूच कर ठीक समय पर बचे हुए आदमियों के पास आ गया। उसे बलवाई यह समझ कर कि शम्स ख़ाँ अब आया है, घबड़ा कर भाग गए। शहदाद खाँ लौटना उचित समझ कर रायपुर चला गया। तीन दिन बाद क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ भी मर गया और दोनों के शवों को स्वदेश ले जाकर गाड़ा। इस शहदाद खाँ ने इस राज्य में बहुत उन्नति की, जिसका वृत्तांत अलग दिया हुआ है। क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ को पुत्र न थे।

कुतुबुद्दीन ख़ाँ ख़ेशगी

यह नज़रबहादुर का दूसरा पुत्र था। जब जूनागढ़ सोरठ की फौजदारी के समय, जो इसके बड़े भाई शम्सु-द्दीन ख़ाँ के साथ इसे मिली थी, इन दोनों में झगड़ा हुआ तब शाहजहाँ ने शम्सुद्दीन खाँ को दक्षिण में नियत कर दिया और इसको पत्तन गुजरात की फौजदारी तथा जागीर मिली। जब शाहजहाँ की बीमारी के आरंभ में गुजरात का सूबेदार शाह-जादा मुरादबख्श तुच्छता और दुस्साहस से बादशाह बन बैठा तब उस प्रांत के जागीरदार आदि निरुपाय होकर उसकी सेवा में पहुँचे। यह भी सेवा में उपस्थित होकर उसका अनुयायी हुआ। जसवंतसिंह और दाराशिकोह के साथ के युद्धों में इसने मुराद के साथ रहकर बहुत प्रयत्न किया। इसके अनंतर जब वह अनु-भवहीन मूर्ख औरंगजेब के फरेब में पड़कर ४ शव्वाल को मथुरा के पास कैद हो गया तब इस घटना के दूसरे दिन उक्त ख़ाँ बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर तथा ख़िलअत पाकर सोरठ का फौजदार नियत हुआ। जिस समय दाराशिकोह भागकर ठट्ठा आया और वहाँ से गुजरात प्रांत की ओर जाने की इच्छा की, जिसे उसने सेना तथा सरदारों से खाली समझा था, जो उसे दमन कर सके। इस कारण चौल तथा जंगल का मार्ग छोड़ कर और कुछ आदमियों के मार्ग दिखलाने से समुद्र के किनारे किनारे उस प्रांत में पहुँच गया, क्योंकि वह मार्ग कम

जाना हुआ और दुर्गम था। दूसरी बार विद्रोह की इच्छा से जब उपद्रव मचाया, तब वहाँ के बहुत से मुत्सद्दी और सहायक उससे जा मिले। उक्त खाँ दूरदर्शिता और अनुभव के कारण औरंगजेब की राजभक्ति और सेवा न छोड़कर दाराशिकोह के पास नहीं गया। अजमेर के युद्ध के बाद जब दूसरी बार दाराशिकोह हारकर भागा तब उक्त खाँ को खाँ की पदवी मिली और मनसब बढ़ाया गया।

जाम प्रांत का राजा रायमल्ल बादशाह का अधीनस्थ तथा करद था और उसकी मृत्यु पर वह राज्य उसके पुत्र शत्रुसाल को दिया गया था परंतु रायमल्ल के भाई रायसिंह ने विद्रोह कर अपने भतीजे को कैद कर दिया और उस प्रांत पर अधिकार कर गद्दी पर बैठ गया। कच्छ के राजा यतमाजी की सहायता से कुतुबुद्दीन खाँ के आदमियों को, जो उस प्रांत का कर वसूल करने के लिये भेजे गए थे, युद्ध कर भगा दिया तब ५वें वर्ष [illegible] खाँ आठ सहस्र सवार तथा बहुत सी पैदल सेना लेकर [illegible] से रवाना हुआ। जब जामनगर के पास पहुँचा तब [illegible] ने भी चार कोस आगे बढ़ कर मोरचे बाँधे। दो [illegible] तोप और बंदूक की लड़ाई होती रही। एक दिन [illegible] ने सेना सजाकर शाहियों पर धावा किया और खूब [illegible], जो उक्त खाँ के सामने था, एक पुत्र, चचा, सं- [illegible] के साथ मारा गया, जो संख्या में तीन सौ थे। [illegible] भाग गए। जाम- [illegible] हुआ और [illegible] बादशाह [illegible] विजयी हुआ और

मिर्ज़ा राजा जयसिंह के साथ सात हजार सवार का अध्यक्ष होकर शिवाजी के राज्य में लूटमार करने में वहुत प्रयत्न किया। शिवाजी के अधीनता स्वीकार करने पर जब मिर्ज़ाराजा आदिलशाही प्रांत की ओर चले गए, तब यह उनका चंदावल नियत हुआ। दो बार शत्रु के साथ युद्ध में वीरता दिखलाई। ९वें वर्ष दरबार आया और इसके मनसब में पाँच सदी बढ़ाई गई। १० वें वर्ष मीर बख़्शी मुहम्मद अमीन खाँ के साथ यूसुफज़ई अफ़ग़ानों को दमन करने के लिये नियत हुआ। इसके अनंतर फिर दक्षिण में नियत हुआ और वहीं अंत तक रहा।

यह उस प्रांत का वहुत पुराना कर्मचारी था, इसलिए यहाँ के सूबेदारों से कठोरता का वर्ताव करता था। विशेषतः ख़ानजहाँ बहादुर इससे बहुत मनोमालिन्य रखता था और बराबर दरबार को इसकी बुराई लिखता था। २०वें वर्ष सन् १०८८ हि० में, जिस समय दिलेर खाँ खानजहाँ के स्थान पर दक्षिण का सूबेदार नियत हो चुका था और उक्त खाँ बीजापुरियों से नए प्रांताध्यक्ष के साथ युद्ध कर रहा था, तभी इसकी मृत्यु हुई। इसका शव इसके निवासस्थान कसूर गाँव में भेजा गया, जो पंजाब में है। यह सम्मानित तथा विद्वान सरदार था और सम्मति देने तथा हिसाब बतलाने में कुशल था। खानजहाँ बहादुर इससे हिसाब समझते थे।

कहते हैं कि जब वार्धक्य के कारण इसकी दृष्टि निर्बल हो गई, तब खानजहाँ ने अप्रसन्नता के कारण दरबार लिख भेजा कि क़ुतबुद्दीन खाँ बूढ़ा हो गया है और अंधापन का उसे रोग हो गया है। उक्त खाँ ने यह समाचार पाकर उसी समय अपनी

बुद्धिमानी से तुरंत एक फीलवान की लड़की से प्रेम पैदा कर निकाह कर लिया और इस प्रकार यह प्रगट किया कि खानजहाँ का लिखना केवल शत्रुता मात्र समझा जाय। इसे चार पुत्र और दो स्त्रियाँ थीं। बड़ा पुत्र मुहम्मद खाँ सबसे योग्य था। अपने पिता की मृत्यु के बाद उसी समय मलखेड़े के युद्ध में मारा गया। दूसरा मुस्तफ़ा खाँ मनसब त्यागकर फकीर हो गया। इन दोनों से संतान थी। अन्य दो निजामुद्दीन और फ़तहुद्दीन को संतान न थी।

औरंगाबाद का एक महाल क़ुतुबपुरा इसी के नाम पर है और वहाँ के प्रसिद्ध महल्लों में से है। कहते हैं कि यह महाल राजा जयसिंह के पुत्र कीर्तिसिंह का था। इमारत और बड़ा हौज उसी ने बनवाया था। कुतुब खाँ का पिता नजर बहादुर दौलताबाद के घेरे के समय वहीं उतरा था और उस पुरा की नींव डाली थी, इसी को लेकर पैतृक स्वत्व प्रगट करके

था। उसके अनंतर उसका पुत्र पिता की पदवी पाकर उसी परगने में रहा। अपने समय का यह एक साहसी पुरुष था। इससे कुछ वर्ष पहले मर गया।

इस समय उसके भतीजा खेशगी खाँ ने उस महाल को रिक्थक्रम में पाया है। क़ुतुबपुरा और प्रायः सभी पुरानी इमारतें उसके अधिकार में हैं। उसके वारिसों की हालत से उस महाल की प्रसिद्धि कम हो जानी चाहिए थी परन्तु इस कारण कि मुतहव्वर खाँ बहादुर ख़ेशगी, जो भारी सरदार, ऐश्वर्यशाली और अपने गुणों के कारण अपने समय का अद्वितीय मनुष्य था, अमीरुल् उमरा हुसेन अली खाँ के साथ दक्षिण आकर स्वजाति होने, संबंध तथा मित्रता के कारण वहीं उतरा और प्रायः तीस वर्ष तक वहीं रहा। इससे बराबर बस्ती बढ़ती गई और उसकी उन्नति होती गई। मुतहव्वर खाँ पहिली रबीउल् आख़िर सन् ११५६ हि० को मरा और अपने मकान के पास क़ुतुब-पुरा में गाड़ा गया। इसका वास्तविक नाम रहमत ख़ाँ था। लेखक की प्रार्थना पर मीर ग़ुलामअली आज़ाद बिलग्रामी ने मृत्यु की तारीख़ पर एक क़िता लिखा है, जिसका अर्थ है कि—

मुतहव्वर खाँ का समय आ गया और वह स्वर्ग में रहने गया। उसकी मृत्यु की तारीख़ हातिफ़ कहता है कि 'ईश्वर की कृपा उसे मिले'।[1]

---

१ 'रहमत एज़िद हक़ शामिल ओ'। अबजद से जोड़ने पर ११५६ आता है।

क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ शेख़ ख़ूबन

यह शेख़ सलीम फ़तेहपुरी का दौहित्र था। इसका पिता बदायूँ के शेखज़ादों में से था। यह जहाँगीर से धाय भाई का संबंध रखता था। जिस समय जहाँगीर ने इलाहाबाद जाकर विद्रोह किया और उस प्रांत पर अधिकार कर लिया, उस समय इसको क़ुतुबुद्दीन खाँ की पदवी देकर बिहार का प्रांताध्यक्ष नियत किया। इसके अनंतर जहाँगीर के बादशाह होने पर इसे पाँच हज़ारी मनसब मिला और यह बंगाल का सूबेदार नियत हुआ। इस कारण कि शेर अफ़गन खाँ इसतजलू के उपद्रव और विद्रोह का, जिसकी बर्दवान जागीर थी, समाचार दरबार पहुँच चुका था या उसकी स्त्री मेहरुन्निसा[1] बेगम के कारण, जिसपर बादशाह का प्रेम था और शेर अफ़गन खाँ के हाल में

ौर अपने भांजे शेख ग़ियासा को आगे भेजा कि उसे समझावे ौर कहे कि वह जमींदारों से भेंट लेने के लिए उधर आया : इसलिए तुम्हें भी साथ देना चाहिए। ग़ियासा ने ऐसी चाप-ूसी के साथ वातचीत की कि शेर अफ़गन को विश्वास हो ाया कि इस चाल में कोई धोखा नहीं है और स्वागत के लेए वह साथ भी हो गया। जब क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ को उसका आना मालूम हुआ तब अपने विश्वासी जमादारों से कहा कि जब मैं चाबुक उठाऊँ तुम उसको घेरकर मार डालना। शेर अफ़गन ख़ाँ ने दो आदमियों के साथ बढ़कर भेंट किया। जब आदमियों ने चारों ओर से भीड़ किया तब उसने कहा कि यह कौन सी चाल है? क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ आदमियों को मना कर उसके साथ अकेले चलते हुए गर्मी के साथ बातचीत करने लगा। शेर अफ़गन ख़ाँ ने यह हाल देखकर समझ लिया कि धोखा है और इसलिए उसने जल्दी की। कहते हैं कि क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ ने भेंट होने पर उसकी मर्दानी चाल देखकर कपट त्याग दिया था परन्तु जब उसने भीड़ को हटाने के लिए हाथ उठाया तो उसे निश्चित संकेत समझकर उन सबने उसको घेर लिया। निरुपाय होकर शेर अफ़गन ख़ाँ ने तलवार खींच कर क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ के पेट पर, जो बहुत निकला हुआ था, ऐसा हाथ मारा कि अँतड़ियाँ तक निकल पड़ीं। क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ ने दोनों हाथों से पेट पकड़कर उच्च स्वर से कहा कि इस निमक हराम को मत छोड़ना कि निकल जावे। अंबीयः ख़ाँ कश्मीरी ने, जो वीर तथा साहसी सरदार था, घोड़ा बढ़ाकर उस पर तलवार चलाई पर शेर अफ़गन ख़ाँ ने फुर्ती से खड्ग

चलाकर उसका काम तमाम कर दिया। इसी बीच क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ के नौकरों ने उसे घेर कर मार डाला। क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ घोड़े पर सवार कुछ देर तक ठहरा हुआ था कि उसके मारे जाने का समाचार मिला। इसका भी हाल बदलने लगा। इसने गियासा को शेर अफगन के माल को जब्त करने और उसके परिवार को ले आने के लिए बर्दवान भेजा। स्वयं पालकी पर सवार होकर लौटा। कुछ ही दूर गया था कि यह मर गया। इसका शव फतहपुर भेजा गया। यह घटना जहाँगीर के दूसरे वर्ष सन १०१६ हि० (सन् १६०७ ई०) में हुई थी।

क़ुबाद ख़ाँ मीर आख़ोर

यह बलख और बदख़्शाँ के शासक नज़र मुहम्मद ख़ाँ का मीर आख़ोर था। उसके राज्य के अंत समय में गोर दुर्ग का अध्यक्ष था। शाहजहाँ के १९ वें वर्ष में जब शाहज़ादा मुराद बलख और बदख़्शाँ विजय करने काबुल से उस प्रांत में पहुँचा तब क़ुलीज ख़ाँ और ख़लीलुल्ला ख़ाँ को दुर्ग कहमर्द और ग़ोर लेने पर नियत किया, जो काबुल की सीमा के पास है। इन्होंने कुछ सेना ग़ोर की ओर आगे भेजा। क़ुबाद ख़ाँ इन आदमियों को हजारा जाति की सेना समझ कर ३०० सवारों के साथ दुर्ग से बाहर निकल कर युद्ध को तैयार हुआ पर साधारण धावे के होते ही दुर्ग में जा पहुँचा। जब सरदार गण दुर्ग के पास पहुँच गए तब कुबाद ने, जिसके पास पाँच सौ से अधिक सैनिक नहीं थे और कहीं से सहायता मिलने की आशा भी नहीं थी, संधि की प्रार्थना की। अंत में 'अमान' माँगकर बाहर निकला। क़ुलीज ख़ाँ ने इसको इसके चारों पुत्र और परिवार के साथ इब्राहीम हुसेन तुर्कमान की रक्षा में दरबार भेज दिया।[1] काबुल में बादशाह के सामने यह उपस्थित हुआ। इसे एक हज़ारी ५०० सवार का मनसब और २० हजार रुपया पुरस्कार मिला। २१वें वर्ष में अपनी जागीर से दरबार आकर क़ोशबेग नियत

---

१. देखिए इसी भाग का शीर्षक ३०, जिसमें खलीलुल्ला खाँ की जीवनी है।

हुआ और पाँच सदी मनसब बढ़ा। २२वें वर्ष बादशाह की इच्छा सफेदुन में शिकार खेलने की हुई। पहिले कानोदा शिकारगाह, जिसे खास शिकार भी कहते थे और जो राजधानी से साढ़े छ कोस पर है और जहाँ अच्छी इमारतें बनी हुई हैं, जाकर नीलगाव का शिकार खेला। वहाँ से 'बिहिश्त' नहर के किनारे से सफेदुन जाकर वहाँ आराम करते और शिकार खेलते झञ-रानः मौजा तक, जो सफेदुन से तीन कोस पर है, पहुँच कर लौट आये। क़ुबाद खाँ का उक्त सेवा के उपलक्ष में पाँच सदी मनसब बढ़ा। रुस्तम खाँ दक्षिणी और क़ुलीज खाँ के साथ के युद्ध में, जो क़ज़िलबाशों के साथ कंधार के पास हुआ था, इसने बहुत प्रयत्न किया, जिससे पाँच सदी मनसब और बढ़ा। २०वें वर्ष के अंत से शाहजहाँ के राज्य के अंत तक इसका मनसब बढ़ कर ढाई हज़ारी १५०० सवार का हो गया। दारा शिकोह के प्रथम युद्ध में, ताहिर खाँ और सब तूरानियों के साथ [illegible] खाँ के सहित, सेना के बाएँ भाग का अध्यक्ष रहा। दारा-शिकोह के पराजय पर औरंगजेब की सेना में उपस्थित हुआ।

में लिखा है कि सातवें वर्ष ठट्टा के शासन से इसे हटाकर इसके स्थान पर ग़ज़नफ़र खाँ नियत हुआ था। इससे ज्ञात होता है कि यह दो वार उस प्रांत में नियत हुआ था। दरबार पहुँचने पर दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुआ।

जब मिर्जाराजा जयसिंह शिवाजी के दुर्गों को विजय करने स्वयं गए तब इसको एहतशाम खाँ के स्थान पर कुछ मनसबदारों के साथ पूना की थानेदारी पर नियत किया। इसने काम दिखलाने के लिये अपने पुत्रों अबुल्क़ासिम और अब्दुल्ला को विद्रोहियों को दंड देने चारों ओर भेजा, जो सही सलामत लौट आए। शिवाजी के बादशाह की अधीनता स्वीकार कर लेने पर राजा ने उस काम से छुट्टी पाकर बीजापुर प्रांत पर चढ़ाई की और उक्त खाँ को मुग़लों के साथ क़रावल नियत किया। इस बार भी इसने अच्छा काम दिखलाया। ९वें वर्ष यह आज्ञानुसार दरबार पहुँचा। १०वें वर्ष में जब मीरबख़्शी मुहम्मद अमीन खाँ यूसुफजई अफ़ग़ानों को दंड देने पर नियत हुआ तब उक्त खाँ भी उसके साथ सहायक होकर गया। सुना जाता है कि इसके बाद उड़ीसा का शासक नियत होकर गया, जहाँ इसकी मृत्यु हुई।

क़ुरैश सुल्तान काशग़री

काशग़र एक देश है, जो छठे महाद्वीप में है और बहुत उजाड़ है। इसके उत्तर में मोग़लिस्तान के पहाड़ हैं और यह शाश की सीमा बनाता हुआ तथा तुरफ़ान की सीमा से मिलता हुआ कल्माक तक पहुँचता है। शाश (ताम्कंद) से तुरफ़ान तक तीन महीने का मार्ग है। पश्चिम में भी पहाड़ है और इतना लम्बा है कि मुग़लिस्तान के पहाड़ से जा मिला है। इसके पूर्व और दक्षिण में भारी जंगल जनहीन और चलते बालू के तूहों से भरा हुआ है। उक्त व्यक्ति का वंश उसके पूर्वज तक इस प्रकार पहुँचता है—क़ुरैश सुल्तान पुत्र अब्दुर्रशीद खाँ पुत्र सुल्तान अबूसईद खाँ पुत्र सुल्तान अहमद खाँ उर्फ़ आलाचा खाँ पुत्र यूनिस खाँ पुत्र उवैस खाँ पुत्र शेरअली खाँ एग़लान पुत्र ख़िज़्र [illegible] खाँ पुत्र तुग़लक़ तैमूर खाँ पुत्र असान बुग़ा खाँ [illegible] खाँ पुत्र [illegible] खाँ पुत्र [illegible] खाँ तवा पुत्र मुवातागान

उसकी सहायता से तुरफ़ान तथा उसके आसपास के स्थानों पर अधिकार कर लिया। ख़ाँ ने उससे सशंकित होकर क़ुरेश सुलतान को हेजाज़ विदा कर दिया। वह अपनी स्त्री और पुत्रों के साथ बदख़्शाँ आया और वहाँ से बलख़ पहुँचा। अब्दुल्ला ख़ाँ से विदा होने पर हिन्दुस्तान आकर ३४ वें वर्ष में अकबर की सेवा में पहुँचा और उस पर बादशाही कृपा हुई। ३७ वें वर्ष सन् १००० हि० में पेट के दर्द से यह हाजीपुर में मर गया। इसका मनसब सात सदी तक पहुँचा था। इसके अनंतर इसके पुत्रगण साधारण काम करते रहे।

क़ुलीज खाँ अंदजानी[1]

यह जानी कुरबानी जाति का था। इसके दादे परदादे चगत्ता सुल्तानों की सेवा में बराबर रहे। इसका पितामह मिर्ज़ा सुल्तान हुसेन बायक़रा के यहाँ सम्मानित पद पर था और यह अकबर की सेवा में प्रतिष्ठित तथा विश्वासपात्र था। अकबर ने १७वें वर्ष सन ९८० हि० में (लौह नींववाले) दुर्भेद्य दुर्ग सूरत को लेने का विचार किया। यह दुर्ग ताप्ती नदी के किनारे पर समुद्र के पास है। गहरी नदी इसे दो ओर से घेरे हुए है और दूसरी दो ओर गहरी खाई पानी से भरी हुई है। सुलतान

पर मंत्रित्व का काम इसको सौंपा गया। २८वें वर्ष में जब सुलतान मुजफ्फर गुजराती ने गुजरात प्रांत में विद्रोह किया और शहाबुद्दीन अहमद खाँ तथा एतमाद खाँ पूरी तौर पर पराजित हुए, तब दरबार से मिर्ज़ा खाँ और कुलीज खाँ भेजे गए। यह निश्चय हुआ कि प्रथम दाईं ओर से जाकर विद्रोहियों को दमन करे और दूसरा मालवा के जागीरदारों को साथ लेकर उस प्रांत में जाय। बहुत दिनों तक कुलीज खाँ उस विस्तृत प्रांत का प्रबंध करता रहा। ३४वें वर्ष में संभल सरकार इसे जागीर में मिला। कश्मीर से लौटते समय राजा भगवंतदास और राजा टोडरमल के साथ लाहौर में नियत हुआ कि वे लोग मिलकर वहाँ का प्रबंध देखें। राजा टोडरमल के मरने के बाद यह बहुत दिनों तक दीवानी का काम करता रहा। ३९वें वर्ष सन् १००२ हि० में काबुल के अध्यक्ष क़ासिम खाँ के मारे जाने पर कुलीज खाँ उस प्रांत में नियत हुआ। प्रांताध्यक्ष के मारे जाने से रोशानियों ने विद्रोह मचा रखा था, इसलिए कुलीज खाँ तीराह की ओर गया पर खाने की सामग्री की कमी से काबुल लौट आया। इस कारण कि उस प्रांत का यह प्रबंध ठीक नहीं कर सका, यह उक्त पद से हटा दिया गया। ४२वें वर्ष सन् १००५ हि० में शाहजादा सुलतान दानियाल को सात हजारी ७००० सवार का मनसब देकर इलाहाबाद प्रांत दिया गया और कुलीज खाँ को, जिसकी लड़की उक्त शाहजादे को ब्याही थी, साढ़े चार हजारी मनसब देकर शाहजादे का अभिभावक नियत किया। ४३वें वर्ष में शाहजादे से रुष्ट होकर यह दरबार लौट आया।

४४वें वर्ष में जब बादशाह खानदेश की ओर रवाने हुए तब यह आगरा का अध्यक्ष नियत हुआ। आसीरगढ़ से अकबर के लौटने पर ४६वें वर्ष में कुलीज खाँ पंजाब में नियत हुआ क्योंकि उस प्रांत में कोई बड़ा सरदार नहीं था। इसने काबुल की अध्यक्षता के लिए प्रार्थना की, जो स्वीकृत हुई। जहाँगीर के राज्य के आरंभ में यह गुजरात का सूबेदार नियत हुआ। दूसरे

उपनाम रखता था। उसकी एक रुबाई का अर्थ यह है—

इच्छा मिलन की प्रेमी की सिर में बनी रहे।
सूफी पुराने कपड़ों पे ऐंठा हुआ रहे॥
हूँ बंद: ऐसे शख्स का फारिग़ नहीं हुआ।
दिल गर्म आँख तर सदा मेरी बनी रहे॥

कहते हैं कि अकबर के बुलाने पर यह छ दिन में लाहौर से आगरे पहुँचा। वह समय ख्वाजा अबुल् हसन तुरबती के उत्कर्ष का था। एक दिन ख्वाजा ने बादशाह से प्रार्थना की कि आपके अँगरखे का दामन दो टुकड़ों से बना है और मेरे अँगरखे का दामन एक ही से बनने पर भी कितना ढीला और बड़ा है। कुलीज खाँ ने जवाब दिया कि ख्वाजा तुम्हारे दामन के नीचे केवल कुछ अन्धे बहरे हैं और बादशाह के दामन के नीचे संसार है। उनके दामन धन से फैले हुए हैं। मितव्ययिता करना सहल है।

ज़ख़ीरतुल् ख़वानीन में लिखा है कि कुलीज खाँ के भतीजे मीरम कुलीज के पुत्र महम्मद सईद से सुना है, जो सचाई और बुद्धिमानी में अपने समय में एक था और धार्मिक विषयों में बड़ा विद्वान माना जाता था, कि सन् १००० हि० में जब जौनपुर में कुलीज खाँ की जागीर नियत हुई थी तब उसने वहाँ बहुत सी इमारतों की नींव डाली थी। दैवात् नींव खोदते समय एक गुम्बद का प्याला दिखलाई पड़ा। मेरे सामने क़ुलीज खाँ ने दस दिन सवेरे से संध्या तक उस नगर के भले आदमियों तथा सरदारों के साथ वहीं व्यतीत किए तब पूरा गुम्बद दिख-

लाई पड़ा। उसके लोहे के दरवाजे में एक मन का ताला बन्द था। उसे तोड़कर बहुत आदमियों के साथ वह उस गुम्बद में गया। वहाँ एक आदमी, जिसकी दाढ़ी सफेद थी, सामने जोगियों की तरह आसन मारे बैठा था। उसने सिर उठाकर इन आदमियों से बड़ी तेज आवाज़ में हिंदी भाषा में पूछा कि क्या राजा रामचन्द्र का अवतार हुआ? लोगों ने कहा कि हुआ। फिर पूछा कि सीता, जिसे रावण ले गया था, रामचन्द्र को मिली। उत्तर दिया मिली। उसने फिर पूछा कि मथुरा में कृष्ण का अवतार हुआ? कहा गया कि चार सहस्र वर्ष हुए कि वह आए और चले गए। फिर पूछा कि क्या अरब में अंतिम नबी मोहम्मद पैदा हुआ? कहा कि एक सहस्र वर्ष हुए कि वह मर

से अच्छे पद को पहुँचे थे। उसके पुत्रों में से मिर्ज़ा सैफुल्ला[1] और मिर्ज़ा चीन क़ुलीज को अकबर के समय में योग्य मनसब मिला था। मिर्ज़ा चीन क़ुलीज[2] का हाल अलग लिखा गया है।

---

१ देखिए इसी भाग का शीर्षक नं० ६८।

२ सैफुल्ला का नाम शीर्षक ६८ में कुलीजुल्लाह लिखा है। अरबी सैफ तथा तुर्की कुलीज दोनों के अर्थ तलवार हैं।

क़ुलीज खाँ ख़्वाजः आबिद

वह शेख आलम का पुत्र था, जो समरकंद के बड़े विद्वानों में गिना जाता था। वह अब्दुल् रहमान शेख अजीजान के पुत्र अब्दुहादि का लड़का था, जो उसी नगर में मुर्शिद बनकर अपने शिष्यों को शिक्षा देता था। कहते हैं कि उसका वंश शेख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी तक पहुँचता है। उक्त खाँ समरकंद में [illegible] मान कर बुलाया गया। पहिले वहाँ का क़ाज़ी और बाद को वहाँ का शेखुल् इसलाम हुआ। शाहजहाँ के २९वें वर्ष में मक्का मदीना की यात्रा की इच्छा से काबुल आया और वहाँ से हिन्दुस्तान आकर बादशाह की सेवा में पहुँचा। खिलअत और ३ सहस्र रुपये नक़द पाकर लौट गया। वहाँ से फिर

१८वें वर्ष में वहाँ से दरबार आया और मक्का जाने वाले काफिले का मीर हज्ज नियत हो वहाँ गया। २३वें वर्ष में इसे क़ुलीज खाँ की पदवी दैवयोग से प्राप्त हो गई। इसके अनंतर दरबार आकर २४वें वर्ष में शाहआलम बहादुरशाह के साथ सुलतान मुहम्मद अकबर का पीछा करने भेजा गया, जो विद्रोही होकर भाग रहा था। यह शाहजादे से बिना आज्ञा लिए दरबार चला आया था, इसलिए कुछ दिन तक दंडित रहा। इसके अनंतर दोष क्षमा होने पर उसी वर्ष रिज़वी ख़ाँ के स्थान पर दोबारा सदर कुल बनाया गया। २५वें वर्ष यह डंका पाकर दक्षिण की चढ़ाई पर गया। इसके बाद जब बादशाही सेना दक्षिण में पहुँची तब यह २९वें वर्ष में ज़फराबाद बीदर का सूबेदार नियत हुआ।

जिस समय औरंगज़ेब शोलापुर से बीजापुर विजय करने के लिए उस प्रांत की ओर चला तब यह उपस्थित होकर कृपापात्र हुआ। बीजापुर के पास पहुँचने पर यह धनुष और तरकस पाकर मोर्चे में नियत हुआ और वह दुर्ग संधि से विजय हो गया। ३१वें वर्ष सन् १०९७ हि० में जब औरंगजेब हैदराबाद की ओर रवाना होकर गोलकुंडा दुर्ग के पास पहुँचा और आदमियों को आज्ञा हुई कि दुर्गवालों पर, जो दुर्ग के बाहर आए हुए थे, आक्रमण करें, तब उक्त खाँ बड़ी वीरता से धावा कर दुर्ग के पास पहुँच गया। उस समय 'जंबूरक' का गोला इसके कंधे में लगा, जिससे हाथ अलग हो गया और यह वहाँ से घोड़े पर सवार होकर धीरता से अपनी सेना में चला आया। जिस समय सान्त्वना देने के लिए नियुक्त होकर जुमलतुलमुल्क

असद खाँ इसके यहाँ गया, उस समय जर्राह लोग कंधे से हड्डी का टुकड़ा निकाल रहे थे। यह घुटने के बल बिना घबराहट के दृढ़ता के साथ लोगों से बातचीत कर रहा था। दूसरे हाथ से कहवा खा रहा था और कहता था कि सिलाई करने वाले अच्छे आ मिले हैं। दवा करने में बहुत प्रयत्न किया गया पर कुछ लाभ न हुआ और यह मर गया। इसके बड़े पुत्र ग़ाज़ीउद्दीन खाँ बहादुर फ़ीरोज़जंग' का वृत्तांत अलग दिया गया है। इसके दो भाई मुइज्ज़ुद्दौला हमीद खाँ बहादुर और नसीरुद्दौला

क़ुलीज खाँ तूरानी

आरंभ में यह अब्दुल्ला खाँ जख़्मी का सेवक और उसके अखाड़े का एक सभ्य था। इसके अनंतर अपने सौभाग्य से युवराज शाहजादा शाहजहाँ की सेवा में भर्ती हो गया। जिस समय शाहजहाँ की सेना बंगाल की ओर जाने की इच्छा से रवाना हुई उस समय तेलिंगाना में इसके बड़ा भाई ख़ानक़ुली बहादुर ने, जिसका मनसब और पदवी इससे बढ़कर थी, अफ़ज़ल खाँ के पुत्र मिर्ज़ा मुहम्मद के साथ युद्ध करने में, जो शाहजहाँ से अलग होकर बीजापुर चला गया था, बड़ी वीरता दिखलाई और शत्रु के साथ आप भी मारा गया। क़ुलीज ख़ाँ सभी चढ़ाई और लड़ाई में साथ था। राजगद्दी के आरंभ में इसने ढाई हजारी २००० सवार का मनसब पाया और मुख्तार खाँ के स्थान पर देहली का सूबेदार नियत हुआ। दूसरे वर्ष इलाहाबाद के शासन पर भेजा गया। ५ वें वर्ष में मुलतान प्रांत का अध्यक्ष हुआ। ११ वें वर्ष में जब अलीमरदान खाँ ने ईरान के शाह से स्वामिद्रोह करके दुर्ग कंधार शाहजहाँ को सौंप दिया तब क़ुलीज खाँ दरबार से पाँच हजारी मनसब पाकर उस सीमा प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। यह बहुत दिनों तक उस प्रांत के कार्य को नियमित रूप से करता रहा और वहाँ के दुर्गों पर अधिकार कर बलवाइयों को दमन करने में इसने कुछ उठा न रखा।

कहते हैं कि जब कुलीज खाँ ने जमींदावर विजय करने के अनंतर बुस्त दुर्ग पर चढ़ाई की तब मेहराब खाँ ने, जो शाह का एक दास और वीरता तथा साहस में बहुत बढ़कर था, दुर्ग की रक्षा का कोई उपाय उठा नहीं रखा और गोला-गोली तथा आग बरसाने में कुछ भी कमी न की पर कुलीज खाँ बड़ी वीरता और बहादुरी से आक्रमण कर सबके पहिले स्वयं दुर्ग में घुस गया। जो कज़िलबाश लड़ता रहा वह मारा गया। मेहराब ख़ाँ कुछ सैनिकों के साथ गढ़ी में जा बैठा और जब शेरहाजी का स्थान खोदकर बारूद से रास्ता बनाया गया तब मेहराब ख़ाँ ने अमान माँगी। कुलीज खां ने उसकी वीरता पर प्रसन्न होकर

के युद्ध में वीरता दिखलाई। इसके उपलक्ष में इसका मनसब बढ़कर पाँच हज़ारी ५००० सवार दो.अस्पा से अस्पा हो गया और यह काबुल का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। २७ वें वर्ष सन् १०६४ हि० (सन् १६५४ ई०) में यह अपनी जागीर में मर गया, जो सिंध दोआबा में थी। इसे पुत्र न था। इसके दामाद .खंजर .खाँ का मनसब डेढ़ हजारी १५०० सवार का हो गया और इसके सेवकों को योग्य वृत्ति मिली। कहते हैं कि एक हजार उजबक सवार सर्वदा इसके यहाँ नौकर रहते थे। इसकी सेना में जिस प्रकार निमाज और रोज़ा बहुत था, उसी प्रकार जूआ, शराब, व्यभिचार आदि भी बहुत था। लाहौर से मुलतान तक इसने सराय बनवाए थे। शेख़ बहाउद्दीन ज़िकरिया का रौज़ा बहुत छोटा था, इसलिए उसके चारों ओर के मकान खरीदकर उसे विस्तृत किया। कहते हैं कि अच्छा मनसब और ऐश्वर्य पाने पर भी अब्दुल्ला खाँ का सन्मान करता था और बिना प्रशंसा के पत्र नहीं लिखता था।

ख़लीलुल्ला ख़ाँ

यह असालत ख़ाँ मीर बख़्शी का छोटा भाई था। इसका विवाह हमीदः बानू बेगम से हुआ था, जो सैफ ख़ाँ की पुत्री और आसफ ख़ाँ यमीनुद्दौला की नतनी थी। जहाँगीर के राज्य में महाबत ख़ाँ के उपद्रव के समय यह भी उक्त आसफ ख़ाँ के साथ साथ कैद हुआ था। शाहजहाँ के तीसरे वर्ष में इसे ख़ाँ की पदवी मिली। इसके बाद यह मीर तुज़ुक नियत हुआ। छठे वर्ष सन् १०४२ हि० में यह मीर आतिश नियत हुआ।



ख़लीलुल्ला ख़ाँ

ख़लीलुल्ला ख़ाँ ने इसकी रक्षा का प्रबंध कर फिर मिर्ज़ा नौज़र के साथ क़ुलीज ख़ाँ से एक मंजिल आगे रवाना होकर कहमर्द की चालपर कुछ सैनिकों को ग़ोरी की तरफ़ भेजा। उन सबने ग़ोरी के रक्षक क़ुबाद मीर आख़ोर[1] पर धावा किया, जो इस विजयी सेना को हज़ाराजात के आदमी समझ-कर दुर्ग के बाहर निकल आया था। वह थोड़े युद्ध के बाद भागा। शाही सेना के चालाक वीरगण युद्ध करते हुए साथ साथ दुर्ग में घुस गए। क़ुबाद दुर्ग के भीतर की छोटी गढ़ी में जा बैठा और उसके बाद प्रतिज्ञा आदि कराकर ख़लीलुल्ला ख़ाँ के पास आया। उक्त ख़ाँ दुर्ग को ख़ाँ को सौंप-कर क़ुबाद के साथ शाहज़ादे के यहाँ गया। इसके अनंतर उस प्रांत के बादशाही अधिकार में आने पर और वहाँ का प्रबंध ठीक करने के लिए अल्लामी सादुल्ला ख़ाँ के बलख़ पहुँचने पर खलीलुल्ला ख़ाँ नज़र मुहम्मद ख़ाँ के यहाँ के आद-मियों को साथ लेकर दरबार आया। २० वें वर्ष औरंगज़ेब के साथ फिर बलख़ की चढ़ाई पर गया। यह ज़ुहाक पड़ाव पर पहुँचा था कि बलख़ की घटनावली में एसालत ख़ाँ के मरने का समाचार मिला। यह भ्रातृस्नेह के आधिक्य के कारण इतना शोक में पड़ गया कि एकांतवास करने लगा। जब शाहज़ादा ने शोक मनाने के लिए आकर इससे कहा कि ऐसे कार्य के समय अपने को बादशाही सेवा कार्य से दूर रखना राजभक्ति के विरुद्ध है तब भी उक्त ख़ाँ ने ध्यान नहीं दिया। इस पर दरबार से

---

१. इसकी जीवनी इसी भाग के ३० वें शीर्षक पर दी गई है।

इसे दंड मिला तथा इसका मंसब और जागीर छिन गई २१ वें वर्ष में इसकी लज्जा और इसके कष्ट उठाने का समाचार पढ़कर फिर से पहिले की तरह इसे चार हज़ारी ३००० सवार का मंसब तथा मेवात की जागीर दी गई और शाहबेग खाँ के स्थान पर वहां का फौजदार नियुक्त किया गया पर साथ ही आज्ञा हुई कि शाही सेवा में उपस्थित न हो कर सीधे लाहौर से अपने ताल्लुके को चला जाय। २२ वें वर्ष यह दूसरा बख़्शी नियत हुआ। २३ वें वर्ष में जाफर ख़ाँ के स्थान पर मीर बख्शी नियत हुआ। २४ वें वर्ष १००० सवार मंसब में बढ़े और मकरमत खाँ के स्थान पर दिल्ली का सूबेदार हुआ। २६ वें वर्ष इसका मंसब पाँच हज़ारी ५००० सवार का हो गया और अलीमर्दान खाँ अमीरुल्उमरा के साथ काबुल की अध्यक्षता पर भारी सेना के साथ नियत हुआ। इस प्रांत का प्रबंध शाहज़ादा दारा

खाँ ने पहिले के परिचय के कारण फ़ाज़िल खाँ से पहिले एकांत में जाकर संकेत से कह दिया कि बादशाह का भय और दुख एक से सौ हो गया है। औरंगज़ेब ने ख़लीलुल्ला खाँ को अपने पास रख लिया और फ़ाज़िल ख़ाँ को निष्फल लौटा दिया। यद्यपि महम्मद अमीनखाँ को मीर बख्शी रहने दिया था पर उमदतुल्मुल्क ख़लीलुल्ला खाँ को छ हजारी ६००० सवार दोअस्पा सेहअस्पा का भारी मंसब देकर एज़ाबाद दिल्ली से विजयी सेना के साथ दाराशिकोह का पीछा करने के वास्ते नियत किया। उक्त खाँ ने बहादुर खाँ कोका के साथ मुलतान तक पीछा नहीं छोड़ा। इसी समय सन् १०६९ हि० के आरंभ में ख़लीलुल्ला खाँ पंजाब का सूबेदार नियत हुआ। ४थे वर्ष लाहौर में बीमार हुआ और जब रोग बढ़ा तो राजधानी आकर निर्बलता के कारण सेवा में उपस्थित न होकर अपने घर चला गया। तक़र्रुब ख़ाँ तथा अन्य शाही हकीम बादशाह की आज्ञा से उसकी दवा करते रहे। बीमारी के पुराने होने के कारण निर्बलता बहुत बढ़ गई थी। पथ्य की थोड़ी गड़बड़ी से उसका काम बिगड़ गया। २ रज्जब सन् १०७२ हि० (सन् १६६२ ई०) को मर गया। औरंगज़ेब ने गुण-ग्राहकता से उस मृत के बचे हुए लोगों को बहुत सांत्वना दी। उसके पुत्र मीर ख़ाँ, रूहुल्ला ख़ाँ और अज़ीज़ख़ाँ, उसके भतीजे इफ़्तिख़ार ख़ाँ, मुल्तफ़ात ख़ाँ और बहाउद्दीन तथा उसके दामाद सैफुल्ला सफ़वी को अच्छी खिलअतें देकर शोक से उठाया। उसकी स्त्री और पुत्री को पचास सहस्र रुपए वार्षिक वृत्ति दी। उसके पुत्रों तथा दामाद के मंसबों को बढ़ाकर उन पर कृपा की।

मीर खलीलुल्ला खाँ यज़्दी

यह सैयद नूरुद्दीनशाह के नाती पोतों में से था, जो रहस्योद्घाटन तथा चमत्कार में प्रसिद्ध था। इसका वंश इमाम मूसा काज़िम तक पहुँचता था। इसके निवास स्थान का बहुत पूछताछ करने पर भी पता नहीं लगा परंतु तत्कालीन बहुत से वृद्ध पुरुषों से ज्ञात हुआ कि वह किरमान का रहनेवाला था। उस स्थान के विद्वान उसे छिपाते थे। कहते हैं कि उक्त सैयद अब्दुल्ला यमनी शाफेई का शिष्य था, इसलिए कुछ लोग उसको शाफेई मत का समझते थे परंतु उसके इस क़ितअ से इससे उल्टा मालूम होता है। इसका अर्थ इस प्रकार है 'मुझको कहते हैं कि तेरा धर्म क्या है? ऐ असावधानो मेरा क्या धर्म है। शाफ़ेई और अबू हनीफ़ा से मेरा मत बढ़कर है। ये सब दादा के अधीन हैं और मैं अपने दादा का मत मानता हूँ।'

इसने लगभग ५०० पुस्तकें और लेख लिखे। जब इस के गुण संसार में प्रगट हुए तब बहुत से लोग इसके शिष्य हो गए। सन् ७२७ हि० या सन् ७३४ ई० में इसकी मृत्यु हुई। माहान कस्बे में, जो किरमान के अंतर्गत है, इसकी मज़ार परिक्रमा के स्थान सहित बना है।

उक्त सैयद के संतानों में एक प्रकार का भेद पड़ा हुआ ज्ञात होता है। इस वंश के जो लोग पिता दादा के समय से यज़्द नगर में बसे हुए हैं और यहीं का भरोसा रखते हैं अपने

नशीन नियत किया और स्वयं बड़ी शान के साथ सर्दारी करने लगा। उसे बीड़ गाँव जागीर में मिला। जब सुलतान अलाउद्दीन का पुत्र हुमायूँ शाह ज़ालिम गद्दीपर बैठा तब शाह हबीबुल्ला[1] को, जिसने उसका विरोध किया था, कैद कर दिया। इस पर सर्दारी का धुँआ उसके दिमाग से निकल गया। अंत में वह कैदखाने से भागने पर मारा गया। उसकी मृत्यु की तारीख 'बर-आमद रूह पाक नेअमतुल्ला' से निकलती है। इसके पुत्रगण अबतक दक्षिण में हैं और बदख्शाँ तथा तूरान में भी कुछ लोग अपने को उक्त सैयद के वंश का बतलाते हैं। समय के फेर से उसके संतानों में से कोई एक उस प्रांत में जा पहुँचा था। आश्चर्य यह है कि हर किसी का विश्वास अलग था पर सभी सैयद से संबंध बतलाते थे। इस सिलसिले के उन लोगों में, जो यज्द और किरमान में अपने पूर्वजों के स्थान पर रहते आये हैं, उनमें कोई भेद या विरोध नहीं पड़ा है, इसलिए वे ठीक उसके वंश में कहे जायँगे। इस वंश के वे लोग जो फारस और एराक में अमीर होकर रहते थे, उनमें से मीर निज़ामुद्दीन अब्द मीर ग़यासुद्दीन के पुत्र शाह सफीउद्दीन का लड़का था। अपने गुणों से यह शाह इस्माइल सफवी का सदर नियत हुआ। राज्य का प्रधान मंत्री अमीर नज्म द्वितीय इसी वंश का शिष्य था इसलिए बलख जाते समय उक्त मीर को अपना प्रतिनिधि भी बना गया। अमीर नज्म के मारे जाने पर यही मंत्री का

१. यह अशुद्ध ज्ञात होता है क्योंकि यह पहिले ही मर चुका था। शाह नूरुल्ला लिखा जाना चाहिए, जो सर्दार बना था।

२. अबजद से ९०२ हि० आता है।×

के लिए उसको वहाने से कैद कर लिया। इस पर उसने आत्म-हत्या कर ली। याक़ूव ख़ाँ ने मीर और उसके सव संतानों की वातों को सिवा छिपा रखने के और कुछ नहीं उचित समझा तथा भेंट और घूस में वहुत सा रुपया वसूल किया। परंतु इससे मीर ख़लीलुल्ला का सन्मान वढ़ा यद्यपि वह सर्वदा अपने पिता तथा यक्ताश खाँ का विरोधी रहा। यक्ताश खाँ की स्त्री से, जो मीर मीरान की पुत्री थी, इद्दत[1] के वाद निकाह कर लिया। इसके अनंतर उसमें भी विद्रोह का नशा पैदा हुआ और चौथे वर्ष वह फ़ारस की ओर चला। मीर मीरान पता लगाने की कोशिश में था, इसी वीच उसके पुत्र मीर नेअमतुल्ला की स्त्री शहरवानू वेगम इस्फ़हान में मर गई, जो शाह तहमास्प की लड़की थी। शाह ने स्वयं जाकर शोक मनाया तथा सांत्वना दी पर सम्मान न कर केवल कृपा की। जव शाह यज़्द पहुँचा तव मीर ख़लीलुल्ला के निवासस्थान गुलशन वाग में उतरा। शाह तहमास्प के लड़के मिर्ज़ा इस्माइल की लड़की ने आतिथ्य का प्रवंध किया, जो इसकी स्त्री थी। शाह ने मीर ख़लील पर वहुत सी कृपा करके उसे यज़्द का काम सौंपा। इसके अनंतर मीर ख़लीलुल्ला इसी कारण शाह के क्रोध में पड़-कर जान की डर से अपने दो पुत्रों मीर मीरान और मीर ज़हीरुद्दीन के साथ भाग कर वड़ी ख़राव हालत में हिन्दुस्तान पहुँचा। जहाँगीर के दूसरे वर्ष सन् १०१६ हि० में लाहौर में पहुँचकर सेवा में उपस्थित हुआ। इसे एक हज़ारी २०० सवार

१. तलाक़ देने के वाद स्त्री चार महीने वीतने के पहिले विवाह नहीं कर सकती। इसी समय को इद्दत कहते हैं।

ख़वास ख़ाँ बख़्तियार ख़ाँ दक्खिनी

जहाँगीर के राज्य-काल में शाही सेवकों में भर्ती होकर शाहजहाँ के राज्य के आठवें वर्ष में लखी जंगल और थारः की फौजदारी पर सर्दार खाँ के स्थान पर नियत हुआ। १२वें वर्ष जब बादशाह पंजाब की सीमा पर पहुँचे तब यह सेवा में उपस्थित हुआ। १४वें वर्ष वहाँ से हटाया जाकर बिहार प्रांत के सहायकों में नियत हुआ। १६वें वर्ष बिहार प्रांत के अंतर्गत तिरहुत का फौजदार नियत हुआ। २०वें वर्ष खिलअत और घोड़ा पाकर बदख्शाँ भेजा गया। २१वें वर्ष में वहाँ से दरबार आकर मालवा प्रांत में मंदसोर का फौजदार तथा जागीरदार नियत हुआ। २३वें वर्ष में जब शाह नवाज़ ख़ाँ मालवे का सूबेदार हुआ और उसके दामाद मीर बदीअ मशहदी का पुत्र मिर्ज़ा महम्मद मंदसोर का फौजदार नियत हुआ तब यह वहाँ से बदला जाकर दक्षिण के सहायकों में नियत हुआ और गोलकुंडा के घेरे में औरंगजेब के साथ रहकर बहुत प्रयत्न किया। इसके अनंतर जब कुल साम्राज्य का प्रबंध उक्त शाहजादे के हाथ में आया तब इसका मंसब बढ़कर दो हज़ारी १५०० सवार का हो गया और इसे ख़वास ख़ाँ की पदवी मिली। महाराज जसवंतसिंह और साम्राज्य के अन्य सर्दारों के साथ

खानज़माँ मीर ख़लील

यह आज़म ख़ाँ जहाँगीरी का द्वितीय पुत्र था और यमीनुद्दौला आसफ खाँ ख़ानख़ानाँ सिपहसालार का दामाद था। इसने अपने पिता के साथ रहकर बहुत अच्छा काम दिखलाया था और उस पिता का मीर शमशेर तथा सम्मतिदाता था। जौनपुर के शासन-काल में, जो आज़म ख़ाँ के नाम थी, इसने विद्रोहियों के दमन करने में, यहाँ तक प्रयत्न किया कि कोई विद्रोही ही नहीं बच गया। जहाँ कहीं इसने दृढ़ गढ़ी सुना वहाँ पहुँच कर किसी उपाय से या वीरता तथा बहादुरी से उसे खुदवा डाला। बहुधा ये गढ़ियाँ तोप तथा बन्दूकों से भरी हुई थीं और पुराने शासकगण बहुत दिनों तक सिर्फ झगड़ा करके रह गए थे पर इसने उनका थोड़े दिनों में जड़ से खोदकर उनका नाम-निशान तक न रखा। जब इसका पिता मर गया तब इसका मंसब एक हजारी ८०० सवार का हो गया।

कहते हैं कि नारनौल की फौजदारी के समय, जो राजधानी दिल्ली के पास विद्रोहियों का घर है, इसने रुस्तम के समान कौम कर साहस तथा वीरता में नाम कमाया और उस कस्बे में खलील सागर नाम का तालाब बनवाया, जिसके आगे वहाँ के चालीस वर्ष के पुराने जागीरदार शाह कुली ख़ाँ महरम का ताल दब गया। तीसवें वर्ष में पाँच सदी मंसब

२००० सवार का हो गया और सिपहदार खाँ की पदवी के साथ यह मीर बख़्शी नियत हुआ। जसवंतसिंह के युद्ध के बाद इसे ख़ानज़माँ की पदवी और तोग़ तथा डंका मिला। दारा-शिकोह का भाग्य बिगड़ने पर और औरंगजेब के झंडों पर ईश्वर की कृपारूपी वायु के बहने पर जब मुहम्मद मुअज़्ज़म ख़ाँ का पुत्र महम्मद अमीन ख़ाँ मीर बख़्शी नियत हुआ तब ख़ानज़माँ को दक्षिण के उपयुक्त समझकर उसका मंसब चार हज़ारी २००० सवार का करके ज़फराबाद बीदर का अध्यक्ष नियत किया, जो बादशाह आलमगीर की कृपा से विजित प्रांत की राजधानी बन गया था। इसके अनंतर अहमद नगर का प्रबंध इसे मिला। ९वें वर्ष दाऊद ख़ाँ क़ुरेशी के स्थान पर ख़ानदेश का सूबेदार नियत हुआ। १८वें वर्ष पाँच हज़ारी ३००० सवार का मंसब पाकर बरार का सूबेदार नियत हुआ। २०वें वर्ष ज़फ़राबाद बीदर प्रांत का शासक और दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। २४वें वर्ष शाहआलम के साथ दक्षिण से अजमेर आकर सेवा में उपस्थित हुआ और कुछ दिन तक उक्त शाहज़ादे के साथ विद्रोही अकबर का पीछा करने और राजपूतों को दंड देने पर नियत हुआ। इसी वर्ष एरिज ख़ाँ के स्थान पर यह बुर्हानपुर का सूबेदार नियत हुआ और इसके मंसब में १००० सवार बढ़ाए गए।

दैवात् उसी वर्ष सन् १०९१ हि० में उक्त ख़ाँ के पहुँचने के पहिले सवाई शम्भा ने ३५ कोस धावा कर एकाएक बुर्हानपुर से दो कोस बहादुरपुर पर आक्रमण किया और वहाँ के हिन्दू-मुसलमानों को लूटा। कुछ भले आदमियों को जौहर करने का

स्वभाव की गानेवालियाँ इसके घर में थी। प्रसिद्ध जैनावादी, जो औरंगजेव की शाहजादगी के समय की उसकी प्रेमिका थी, इन्हीं में से थी। कहते हैं कि यह उसकी निकाही स्त्री थी।

एक दिन शाहजादा जैनावाद बुर्हानपुर के आलमआरा बाग में, जो आहूखाना नाम से प्रसिद्ध है, अपने महलों के साथ सैर को गया और चुने हुए लोगों के साथ मजलिस जमा की। जैनावादी आकर्षक गाने और प्रेमिकाभिनय में अद्वितीय थी। वह ख़ानज़माँ की पत्नी के साथ, जो शाहज़ादा की मौसी थी, आकर खूब फले हुए आम्र वृक्ष पर ठीक सैर के समय शाहज़ादे के अदव का ध्यान न कर चंचलता और चपलता से कूदकर चढ़ गई और उसमें से फल ले आई। यह खिलवाड़ प्रेमिकाओं तथा सुन्दरियों के उपयुक्त था और उसने शाहज़ादा के होश और विवेक को आपे में रहने न दिया। शैर का अर्थ—प्रेमी को आकर्षण करने की चालों में यह विचित्र आकर्षक जाल था। प्रिया की प्रेम दृष्टि अनेक प्रेमों से बढ़कर है।

शाहज़ादे ने अपनी मौसी से वहुत मिन्नत और प्रार्थना करके उसे ले जाकर अपना हृदय उसे सौंप दिया। शराव का प्याला भर कर उसे अपने हाथ से देता था।

कहते हैं कि एक दिन उसने भी शराव का प्याला भरकर शाहज़ादे को दिया। इसने बहुत कुछ हाथ पैर जोड़े पर उसने दया नहीं किया। अंत में शाहज़ादा निरुपाय होकर पीना चाहता ही था कि उस चालाक और चपल स्त्री ने स्वयं प्याला छीन लिया और कहा कि प्रेम की परीक्षा से मतलब था न कि तुम्हें इस बुरे पानी से दुख पहुँचाने से। इस प्रकार यह प्रेम-लीला यहाँ

वनाकर ख़ानज़माँ नगर नाम रक्खा। वहाँ वड़ी २ इमारतें वनवाईं। अभी उसके चिन्ह दिखलाई पड़ते हैं। वुर्हानपुर में इसकी एक हवेली थी। इसके पुत्रों में से सभी उन्नति न कर मर गए।

अच्छा मनसब पाया। उस समय जब शाह धौरा में, जो सरहिन्द के अंतर्गत एक परगना है और जो शाह फ़ैज़ क़ादरी के मज़ार के कारण प्रसिद्ध है, बहादुरशाह की सेना का पड़ाव पड़ा हुआ था तभी ख़ानख़ानाँ की मृत्यु के पहिले वह मर गया। ख़ानज़माँ, जो उस समय अलीअकबर ख़ाँ कहलाता था, इटावा चकले का फौजदार नियत होकर विश्वासपात्र सर्दार हो गया। यह चकला आगरे के खालसा महालों में से है और जमुना नदी के किनारे से तीस कोस पर है। इसके अनंतर जब जहाँदार शाह बादशाह हुआ और उसका सबसे बड़ा पुत्र शाहज़ादा ऐज़ुद्दीन ख़्वाजा हसन ख़ानदौराँ की अभिभावकता में मुहम्मद फ़र्रुख़सियर का, जो पटने से चल चुका था, सामना करने पर नियत हुआ तब रास्ते के आसपास के प्रायः सभी फौजदार सहायता के लिए नियत हुए थे। उस समय उक्त खाँ भी अपनी निजी अच्छी सेना के साथ उससे जाकर मिल गया। कुछ दिन साथ रहकर वह दरबार के सरदारों तथा अध्यक्षों का पता लगाता रहा। शाहज़ादा केवल नाममात्र का सेनापति था और ख़ानदौराँ के अधीन हो रहा था, जो अयोग्य तथा अनुभवहीन सरदार था और जिसके हठ तथा कायरता से अपनी बुद्धि और होश खोने से उस तुच्छ सेना में नष्ट होने के चिह्न दिखलाई पड़ते थे। कूच करते हुए यह अपना अवसर तथा घात देख रहा था और जब फ़र्रुख़सियर के पास आने का समाचार मिला तब यह अपनी सेना तथा निजी कोष को, जो साथ में था, लेकर रात्रि ही में शीघ्रता से कूच कर उसके पास जा पहुँचा। इसकी वहाँ बड़ी प्रशंसा हुई। जहाँदार शाह के युद्ध में छबीले राम नगर के

ख़ानजहाँ बारहा

सैयद मुज़फ़्फ़र ख़ाँ थानेपुरी सैयदों में से था। इसका नाम अबुल् मुज़फ़्फ़र था। जहाँगीर के १४वें वर्ष में जब शाहज़ादा ख़ुर्रम दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुआ तब इसने भी दक्षिणियों के साथ युद्ध में वीरता दिखलाई तथा घायल होकर युद्धस्थल में गिरा, जिससे शाहज़ादा इसकी वीरता से अच्छी तरह परिचित हो गया। जिस समय उक्त शाहज़ादा अपने पिता से अलग होकर दक्षिण चला गया और महाबत ख़ाँ के शाहज़ादा पर्वेज़ के साथ नर्बदा नदी पार करने पर बुर्हानपुर नगर में ठहरने की अपनी सामर्थ्य न देखकर कुतबुल् मुल्क के राज्य के सिकाकोल की राह से होता हुआ बंगाल की ओर गया तथा वहाँ इब्राहीम ख़ाँ फ़तेहजंग से युद्ध हुआ तब इसने भी उक्त युद्ध में बहुत प्रयत्न किया और वीरता दिखलाई। यह पूरे विद्रोह-काल तक शाहज़ादा के साथ रहा। अपनी सेवा तथा स्वामि-भक्ति से शाहज़ादे के हृदय में इसने स्थान कर लिया था। इसके अनंतर जब शाहज़ादा गद्दी पर बैठा तब उसने जुलूस के पहिले वर्ष में चार हज़ारी ३००० सवार का मंसब, झंडा, डंका, सुनहले ज़ीन सहित ख़ास तवेले का घोड़ा और एक लाख रुपया पुरस्कार देकर इसे सम्मानित किया तथा ग्वालियर का दुर्गाध्यक्ष नियत कर उसके आधीनस्थ परगने जागीर में दिए। इसी वर्ष महाबत ख़ाँ के साथ यह जुझारसिंह बुंदेला को दंड देने

खिलअत, फूलकटार: सहित जड़ाऊ जमधर और सोने के साज सहित खास तवेले का घोड़ा देकर और उसका मंसब एक हज़ारी बढ़ाकर पाँच हजारी ४००० सवार का कर दिया।

जब निज़ामशाही प्रांत में बादशाही सेना पहुँची और खानजहाँ लोदी ने वहाँ ठहरने का अपना सामर्थ्य नहीं देखा और मालवा का रास्ता लिया तब उक्त खाँ, जो अपनी पुरानी सेवा और वीरता के लिए प्रसिद्ध था, खास खिलअत, अच्छी तलवार और खास तवेले का क़पचाक घोड़ा पाकर उसका पीछा करने को नियत हुआ। अब्दुल्ला ख़ाँ बहादुर भी अलग दूसरी सेना के साथ इसी कार्य पर नियत हुआ था और यह आज्ञा पहुँची थी कि यदि उक्त बहादुर वहाँ पहुँच जाय तो दोनों सेना मिलकर उन उपद्रवियों को नष्ट करें। सैयद मुजफ्फ़र खाँ ने अकबरपुर उतार से फुर्ती से नर्वदा नदी पार कर खबर देने वालों को भेजा और मालवा के अंतर्गत मौजा ताल गाँव में अब्दुल्ला ख़ाँ बहादुर भी आ मिला। शाही सेना के बांधव प्रांत के मौजा नीमी में, जो सहिंद: से पंद्रह कोस और इलाहाबाद से तीस कोस पर है, पहुँचने पर उसके उस ओर जाने का पता मिला। सैयद मुज़फ्फर ख़ाँ, जो शाही सेना का हरावल था, पहिले उसके पास तक पहुँच कर वीरता दिखलाई। खानजहाँ लोदी कुछ आदमियों के मारे जाने पर भागा। सेना के बहादुरों ने पीछा नहीं छोड़ा और दो दिन बाद उस तक पहुँचकर फिर युद्ध आरंभ किया। वह सैयद मुज़फ्फर खाँ के हरावल से युद्ध कर मारा गया। सैयद अब्दुल्ला का पुत्र तथा सैयद मुज़फ्फ़र ख़ाँ का नाती सैयद माखन २७ आदमियों के

जड़ाऊ जमधर, जड़ाऊ तलवार और एक लाख रुपया नक़द पुरस्कार पाया। ९ वें वर्ष में ख़ास ख़िलअत, अच्छी तलवार, ख़ास तवेले का घोड़ा पाकर अन्य सर्दारों के साथ बीजापुर के आदिलशाह को दंड देने भेजा गया और वहाँ की ओर से धारवर में पहुँचकर वहाँ लूट-मार करता शोलापुर की ओर गया। रास्ते में जाते समय सेना भेजकर सराधुन विजय कर लिया। रैहान शोलापुरी की जागीर के महालों पर आक्रमणकर धारासेन कस्बे में थाना स्थापित किया और बीजापुरियों से खूब लड़ाई हुई। उक्त खाँ ने स्वयं वीरता दिखलाकर हर वार शत्रुओं को परास्त किया।

कहते हैं कि एक दिन रणदौला बीजापुरी घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा और उसका एक मित्र घोड़ा लाकर उसे उठा लाया। इसके अनंतर जब बीजापुर प्रांत का बहुत सा भाग वीरान हो गया और बरसात आ पहुँची तब उक्त खाँ छावनी डालने की इच्छा से धारवर लौट गया। इसके उपरांत जब आदिल खाँ ने अधीनता स्वीकार कर लिया तब यह आज्ञानुसार दरबार पहुँचा। उसी वर्ष के अंत में जब बादशाह ने आगरे की ओर जाने का निश्चय किया और दक्षिण के चारों सूबे के शासन पर, जिससे मतलब खानदेश, बरार, तेलिंगाना का चार: और निजामुल् मुल्क के राज्य के कुछ अंश से था, शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर को नियत किया, तब सैयद ख़ानजहाँ ख़िल्अत खास पाकर तब तक के लिए शाहजादे के साथ नियुक्त किया गया जब तक ख़ानज़माँ बहादुर जुनेर दुर्ग आदि विजय कर लौट न आवे। १० वें वर्ष में दरबार पहुँचकर ग्वालियर

वर्ष जब ईरान के शाह शफी के कंधार विजय करने के लिए आने का समाचार सुनाई पड़ने लगा तब शाहजादा दाराशिकोह उसे दमन करने पर नियत हुआ। ख़ानजहाँ भी ख़ास खिलअत, जड़ाऊ तलवार, ख़ास तवेले के सोने तथा सुनहले ज़ीन सहित दो घोड़े और हाथी ख़ास पा करके शाहजादे के साथ नियत हुआ।

इसी बीच शाह शफी के मरने का समाचार मिला। १६वें वर्ष में उक्त खाँ को अपनी जागीर ग्वालियर जाने की आज्ञा मिली। १७वें वर्ष फिर यह सेवा में उस समय पहुँचा, जब शाहजहाँ अजमेर जा रहा था। यह आगरे का अध्यक्ष बनाया गया। बादशाह के लौटने पर कुछ दिन दरबार में रहने के अनंतर १८वें वर्ष में जागीर जाने की इसने छुट्टी पाई। १९वें वर्ष आज्ञा मिलने पर यह लाहौर बादशाह की सेवा में पहुँचा। इसी वर्ष सन् १०५५ हि० के बीच में फ़ालिज से बीमार होकर दो महीने खाट पर पड़े रहने के बाद मर गया। गुण-ग्राहक बादशाह ने शोक प्रगट कर इसके पुत्रों सैयद मंसूर खाँ, सैयद शेरज़माँ और सैयद मुनौवर पर बहुत कृपा की। हर एक का वृत्तांत अलग-अलग दिया हुआ है। अंतिम दो को सैयद मुजफ्फर खाँ और सैयद लश्कर खाँ की पदवी मिली थी।

उक्त खाँ ने बड़प्पन, सेना की अधिकता तथा उदारता में नाम कमाकर सारा जीवन प्रतिष्ठा के साथ बिताया। इसके नौकर इससे बहुत संतुष्ट रहते थे। जो बादशाही सेवक इसके शरण में आ जाते थे, उनके साथ अच्छा सलूक करता और गाँव जागीर में देता था। यह लोगों का बहुत आदर सत्कार करता था। कहते हैं कि एक दिन शाहजहाँ ने दस्तरखान पर बैठाकर

ख़ानजहाँ लोदी

यह दौलत खाँ लोदी शाहू खेल का पुत्र था। इसका नाम पीर ख़ाँ था। ठीक युवावस्था में अपने बड़े भाई मुहम्मद खाँ के साथ अपने पिता से दुखित होकर बंगाल में राजा मानसिंह के यहाँ गया। एक दिन नदी पार करके नगर में जाना चाहता था कि नावों को लेकर झगड़ा होने लगा, यहाँ तक की मारपीट आरंभ हो गई और राजा के दो भतीजे मारे गए। राजा ने यह हाल सुनकर पहिले की जान पहचान के कारण तीस सहस्र रुपये देकर विदा कर दिया कि कहीं राजपूतों से उन्हें कष्ट न पहुँचे। मुहम्मद ख़ाँ जवानी ही में मर गया। पीर ख़ाँ भाग्य से सुलतान दानियाल के पास पहुँचा। कहते हैं कि उसकी पार्श्ववर्तिता और मित्रता यहाँ तक बढ़ी कि दोनों में भेद नहीं रह गया। पत्र-व्यवहार में इसे फरजंद (पुत्र) लिखा जाता था। उक्त शाहजादे की मृत्यु पर २० वर्ष की अवस्था में यह जहाँगीर की सेवा में पहुँचा और उसका ख़ास दरबारी हो गया। पहिले तीन हजारी मनसब और सलावत खाँ की पदवी पाई। इसके थोड़े ही दिनों के अनंतर ऊँची पदवी ख़ानजहाँ की पाई और इसका मनसब बढ़कर पाँच हजारी हो गया। कृपा और विश्वास में इसके समान कोई नहीं था। इसे गुसलख़ाने में बैठने की आज्ञा मिली थी और कई बार इसे महल में भी लिवा गए थे। चाहते थे कि बादशाह महल की किसी

गुजरात की सेना के साथ दौलतावाद जाकर अंवर को वीच में घेर कर दंड दें। कहते हैं कि मलिक अंवर इस समाचार से घवड़ाकर ख़ानखानाँ से मिला और उसने खानजहाँ को कुछ वहाने से ज़फ़रनगर में रोक रखा, जिससे अब्दुल्ला खाँ दौलतावाद पहुँचकर तथा परास्त होकर लौट गया।[1] मलिक अंवर उससे छुट्टी पाकर खानजहाँ के पड़ाव के सामान आदि लूटने का साहस करने लगा। अन्न इतना मँहगा हो गया कि एक रुपये का एक सेर भी नहीं मिलता था। साथ ही पशुओं की भी कमी हो गई थी। अंत में यह घवड़ा कर तथा संधि कर वुरहानपुर लौटा और यह अपयश खानख़ानाँ के नाम लिखा गया। खानजहाँ ने वादशाह को लिखा कि यह सव पुराने अफसरों के झगड़े के कारण हुआ। या तो उसीपर सव छोड़ दिया जाय या उसे दरवार वुला लिया जाय। तीस सहस्र सवारों के साथ दो वर्ष में वादशाही इकवाल से इस प्रांत के सव दुर्गों को छीनकर मैं वीजापुर को साम्राज्य में मिला दूँगा और नहीं तो दरवार में मुँह नहीं दिखलाऊँगा। इसपर दक्षिण का कार्य खानजहाँ को सौंपा गया और खान-आज़म कोका तथा ख़ानआलम अन्य सरदारों के साथ सहायतार्थ भेजे गए। ख़ानखानाँ दरवार गया। अभी तक सरदारों का झगड़ा नहीं मिटा था, जिससे कोई प्रवंध ठीक नहीं हो सका। ख़ानजहाँ को थानेसर की जागीरदारी मिली और एलिचपुर में ठहरने की आज्ञा देकर ख़ानआज़म को दक्षिण का सरदार नियत किया। एक वर्ष के वाद जव ख़ानजहाँ दरवार

१. यह कथन अशुद्ध है, देखिए इसी ग्रंथ के भाग दो का पृ० १४०।

दूसरा उपद्रव यह मचा कि बादशाह और शाहजादा शाहजहाँ में वैमनस्य होकर लड़ाई होने लगी। कंधार की चढ़ाई रोककर ख़ानजहाँ को बुलाने का आज्ञापत्र बारबार जाने लगा। अंत में बादशाह ने लिखा कि ऐसे समय शेर खाँ सूर शत्रुता होते हुए भी यदि होता तो पहुँच जाता और तुम अभी तक नहीं आए। दैवात् ख़ानजहाँ ऐसा बीमार हुआ कि तेरह दिन और रात होश में नहीं आया। इसके अनंतर जब दरबार पहुँचा तब दुर्ग आगरा और कोष की रक्षा के लिए फतेहपुर सिकरी में नियत हुआ। १९वें वर्ष ख़ानआज़म कोका की मृत्यु पर गुजरात का सूबेदार नियत किया गया। जब महाबत खाँ को बंगाल की सूबेदारी के लिए सुलतान पर्वेज़ की अभिभावकता से हटाया तब ख़ानजहाँ उसके स्थान पर नियत होकर बुरहानपुर में सुलतान पर्वेज़ के पास पहुँचा। २१ वें वर्ष सन् १०३५ हि० में सुलतान पर्वेज के मरने पर दक्षिण के कुल काम ख़ानजहाँ को सौंपे गए। यह मलिक अंबर के पुत्र फ़तेह ख़ाँ को दमन करने के लिए, जो बादशाही राज्य में उपद्रव मचाता था, बालाघाट की ओर खिरकी तक गया। उस समय हमीद खाँ हबशी निज़ामशाह का मंत्री था, जिसकी स्त्री सैन्य-परिचालन करती थी। उसने खुशामद करके ख़ानजहाँ को राजी कर लिया कि तीन लाख हून भेंट लेकर निज़ामशाही राज्य उसको छोड़ दे। ख़ानजहाँ के लिखने के अनुसार बालाघाट के फौजदारों तथा थानेदारों ने अपने अपने स्थान निज़ामशाह के सेवकों को सौंप दिए और बुरहानपुर में इकट्ठा हुए परंतु सिपहदार खाँ ने दरबार की आज्ञा का उज्र कर दुर्ग अहमद

रात से मांडू में नियुक्त किया है, जहाँ खानजहाँ के परिवार वाले रहते थे, तब यह निजामशाह के साथ अपने स्वार्थ की नई प्रतिज्ञा कर और सिकंदर दोतानी को बुरहानपुर में अपना अध्यक्ष छोड़कर स्वयं सहायक सर्दारों के साथ मालवा आया और वहाँ के प्रांताध्यक्ष मुजफ्फर खाँ मामूरी से वह प्रांत ले लिया। शाही आदमियों ने लोभ से कहा कि यदि बादशाह से युद्ध करने का विचार हो तो हम लोग तैयार हैं। परंतु व देखा कि खानजहाँ का कोई निश्चित विचार नहीं है और अपयश पलुए में मिलेगा तब वे सब दरबार में चल दिए। खानजहाँ को अब समाचार मिला कि शाहजहाँ गुजरात के मार्ग से आगे बढ़ आया है और सर्दारगण तथा राजे चारों ओर से उसके पास एकत्र हो रहे हैं तथा यह भी प्रगट हुआ कि दावरबख्श की राजगद्दी शाहजहाँ की राज्य की भूमिका है, जो आसफ खाँ की की हुई है। यह जानकर कि जो कुछ किया है वह हो चुका है और उसका समय भी बीत चुका है इसलिए लज्जा से कोई लाभ न देखकर अपना प्रतिनिधि दरबार भेज दिया और राजगद्दी के बाद मोती का सेहरा भेंट में भेजा। दयालु शाहजहाँ ने इसके कुव्यवहार की उपेक्षा कर मालवे की सूबेदारी पर इसे बहाल रखा। दूसरे वर्ष जुझारसिंह बुंदेला को दमन करने के बाद यह दरबार पहुँचा। यद्यपि जहाँगीर के समय के कुल सरदार नियम के अनुसार मान्य नहीं थे परंतु बादशाह ने इसके विचार से, जो सदा दरबार में सबके ऊपर खड़ा होता था, महाबत खाँ को दिल्ली भेज दिया क्योंकि खानखानाँ होने के कारण वह किसी को सिर नहीं झुका सकता था। परंतु—

कह दिया पर उसने उत्तर दिया कि अमानपत्र लिखा जा चुका है और किसी दोष के करने के पहिले दंड देना विद्वानों ने अनुचित माना है। अभी यह वातचीत हो रही थी कि इसके भागने का समाचार मिला। उसी समय ख्वाजा अबुल्हसन तुरवती को कई सर्दारों के साथ पीछा करने भेजा। कहते हैं कि दीवाली की अर्द्ध रात्रि को २७ सफर सन १०३९ हि० को यह आगरे से वाहर आया। जब यह हथियापोल फाटक पर पहुँचा तव ज़ीन तक सिर झुका कर कहा कि 'ऐ खुदा तू जानता है कि मैं अपनी प्रतिष्ठा वचाने के लिए भागता हूँ, विद्रोह मेरे विचार में भी नहीं है।' जव यह धौलपुर पहुँचा तव सैयद मुज़फ्फ़र ख़ाँ बारहा, राजा विट्ठलदास और ख़िद्मत परस्त ख़ाँ शाही सेना के साथ उसपर जा पहुँचे। घोर युद्ध मचा और कड़े धावे हुए। ख़ानजहाँ के दो लड़के हुसेन और अज़मत, उसका दामाद शम्स और उसके दो भाई मुहम्मद और महमूद, जो आलम ख़ाँ लोदी पौत्र थे, तथा जो पुराना अफ़गान सिपाही था और भीकन ख़ाँ कुरेशी आदि के समान साठ अच्छे नौकर मारे गए। ख़ानजहाँ स्वयं वड़ी वीरता दिखलाकर घायल हो चंवल की ओर चला गया। नदी में बाढ़ आने के कारण महल के आदमियों को पार न लिवा जा सका। अपनी स्त्री और पुत्रियों को कुछ विश्वासपात्र दासियों के साथ हाथियों पर सवार करा-कर। वड़ी घवड़ाहट से पार उतर गया।

शैर—वादिए मर्ग[1] से हो नीमजाँ[2] वाहर निकले।
इस क़दर दूर सफर की यही सब कुछ समझे॥

१. मृत्यु की घाटी। २. आधी जान।

और नहीं तो क्यों इतने लोगों को नष्ट किया जाता है।' इसने उत्तर दिया कि 'क्या तुम विश्वास करते हो कि बादशाही सेना पर विजयी होंगे। वह ईश्वरदत्त सौभाग्य है। मैं चाहता हूँ कि इस कार्य से कोई अच्छा मार्ग निकले, जिससे तुम्हें कोई काम मिल जाय और मैं मक्का चला जाऊँ।' ख़ानजहाँ की इन बातों से अफ़ग़ानों में बड़ा गड़बड़ मचा, जो हिन्दुस्तान के साम्राज्य के लिए लड़ने को तैयार होकर आए थे। जब बरसात आ पहुँची तब ख़ानजहाँ राजौरी मौज़ा में जाकर ठहरा, जो पहाड़ की तराई में बीड़ से चार कोस पर है। बरसात बीतने पर निज़ामशाही सेना का प्रधान मोक़र्रब ख़ाँ बहलोल ख़ाँ के साथ आज़म ख़ाँ की सेना के आते आते जालनापुर से धारवर पहुँचा। अभी दरिया ख़ाँ रुहेला नहीं पहुँचा था कि आज़म ख़ाँ अवसर देखकर देवलगाँव से रवाना हो गंगा[1] पार उतर गया और मँझली गाँव से ख़ानजहाँ पर धावा किया, जिसके पास चार सौ से अधिक सिपाही नहीं थे। ख़ानजहाँ ने युद्ध की तैयारी कर परिवार को पहाड़ों में भेज दिया और स्वयं युद्ध करता बाहर निकला। जब राजौरी के बालाघाट पर पहुँचा तब ख़ानजहाँ ने अपने भ्रातुष्पुत्र बहादुर ख़ाँ लोदी और बहादुर ख़ाँ रुहेला के साथ सामना किया और दोनों ओर से वीरता दिखलाई गई। बहादुर ख़ाँ रुहेला ने बराबर धावे किए पर बादशाही सेना बराबर सहायता को पहुँची। बहादुर ख़ाँ लोदी चाहता था कि बाहर निकल जाँय पर राजा पहाड़सिंह बुंदेला ने उस पर आक्रमण कर उसे मार डाला। ख़ानजहाँ

१. गंगा से किसी बड़ी नदी का तात्पर्य है, यहाँ गोदावरी नदी से है।

चढ़ा। भांडेर पहुँचते पहुँचते बादशाही सेना का हरावल सैयद मुज़फ्फर खाँ बारहा के अधीन पास पहुँच गया। ख़ानजहाँ ने और सबको आगे भेजकर एक सहस्र सवार के साथ घोर युद्ध आरंभ किया। उसका पुत्र महमूद खाँ बहुतों के साथ मारा गया। ख़ानजहाँ निरुपाय होकर भागा। जब कालिंजर के पास पहुँचा तब वहाँ के दुर्गाध्यक्ष सैयद अहमद ने रास्ता रोका। इस युद्ध में इसका पुत्र हसन खाँ कैद हो गया। ख़ानजहाँ बीस कोस आगे बढ़कर सहिंद: तालाब के किनारे उतरा और आदमियों से कहा कि 'बादशाही सेना पीछा नहीं छोड़ रही है, मैं बहुत थक गया हूँ कहाँ तक भागता रहूँ। सगे संबंधी मारे गए और मेरा भी जीवन से मन भर गया। सिवाय मारे जाने के कोई उपाय नहीं है। जो जाना चाहता हो वह चला जाय और जो रहेगा उसका हमारे ऐसा परिणाम होगा।' बहुत से अलग होकर चले गए। पहिली रज्जब को साथियों के साथ दृढ़ होकर सैयद मुज़फ्फर खाँ पर धावा किया। अंत में पैदल होकर अपने पुत्र अज़ीज़ खाँ, ऐमल खाँ तरीं और सदर खाँ के साथ जब तक शरीर में प्राण था तलवार और खंजर से युद्ध करता रहा। माधोसिंह की तीर लगने से जमीन पर गिर पड़ा। अब्दुल्ला खाँ ज़ख्मी ने इसका सिर दरबार भेजा। जिस समय शाहजहाँ बुरहानपुर में नाव पर सवार हो ताप्ती नदी में सैर कर रहा था, उस समय वह सिर पेश किया गया। आज्ञा के अनुसार वह अपने पिता के मकबरे में गाड़ा गया। तालिब कवि ने रुबाई कही, जिसका उर्दू अनुवाद इस प्रकार है।

था। एक बार ही भाग्य ने पल्टा खाया और उसकी वह विशेषता और विश्वास नहीं रहा। जो आदमी उसके सामने नहीं पहुँच सकते थे वे उसकी बराबरी करने लगे प्रत्युत् उससे ऊँची गर्दन करने लगे। कुछ ऐसी अविनम्रता का काम, जो बादशाह के विरुद्ध होने से विद्रोह कहलाया, उसने किया, जिससे हर अयोग्य उसे घृणा से देखने लगा और हर एक बेहूदा आदमी उसके विरुद्ध कुछ कहने लगा। वह अत्यंत लज्जाशील था और उच्च वंश का होने से सहनशील नहीं हुआ। उसका मन मलीन था और उसके हृदय ने जंगल में मारे-मारे फिरने तथा आवारगी को उन्नति देनेवाला समझा। (अरबी आयत यहाँ दी हुई है, जिसका अर्थ नहीं दिया गया है) लज्जा तथा प्रतिष्ठा को सब कुछ समझने वाले के लिए सम्मान के बाद कोई भी कष्ट या दुःख अपमान से बढ़कर नहीं है और इसीसे उसने अपने को उस स्थान को पहुँचा दिया, जहाँ वह पहुँचा। बस उसकी उस अवस्था में इन सब कष्टों तथा दुःखों को उठाने के सिवा प्रतिष्ठा तथा पद की रक्षा के लिए और उपाय नहीं रह गया था। इसके अनंतर और भी कारण इकट्ठे हो गए, प्रत्युत् ये भी समयानुकूल आवश्यक हो गए, जैसे सेना एकत्र करना, निजामुल्मुल्क का साथ देना। यदि इसके उपाय ठीक बैठ जाते और समय साथ देता तो सांसारिक ऐश्वर्य की इच्छा कौन छोड़ता, जो नौकरी कर सिर नीचा करता।

ख़ानजहाँ प्रतिष्ठावान तथा सहिष्णु था और किसी की हानि का कारण नहीं हुआ। पहिले इसे ईरानियों के सत्संग की इच्छा रहती थी। यद्यपि यह सुन्नी था पर इसका पिता शीआ

ख़ानदौराँ नसरतजंग

इसका नाम ख़्वाजः साबिर था और यह ख़्वाजः हिसारी नक्शबंदी का लड़का था। जहाँगीर के समय में मंसब पाकर दक्षिण में नियत हुआ। ख़ानख़ानाँ ने इसमें योग्यता और सुशीलता देखकर इसकी शिक्षा अपने हाथ में ली, पर इतने पर भी यह नौकरी से हाथ उठाकर निज़ामशाह के पास पहुँचा। वहाँ अल्पवयस्क लोगों का अधिक रिवाज देखकर स्वयं भी उन्हीं में भर्ती हो गया और थोड़े से प्रयत्न पर मुसाहिब होकर शाहनवाज़ ख़ाँ की पदवी पाई। इसके अनंतर वहाँ से भी फिर मन हटाकर शाहज़ादा शाहजहाँ के सेवकों में भर्ती हो गया और इसे नसीरी ख़ाँ की पदवी मिली। दुर्भाग्य-काल में वहीं शाहज़ादा के साथ रहा। स्वामिभक्ति के कारण किसी काम में इसने कमी न की, इस पर भी समय के फेर से यह शाही घोड़ों के प्रबंध पर नियत हुआ। टौंस के युद्ध में यह शाही सेना का सर्दार था। जब उस दिन असत्यता की धूल सब ने अपने ऊपर डाली तब यह भी नहीं ठहर सका। इसके अनंतर जब अब्दुल्ला खाँ कृतघ्नता कर शाहज़ादे से अलग हो गया तब यह भी उक्त खाँ का दामाद होने के कारण अलग हो गया और मलिक अंबर के पास पहुँचा। उसकी मृत्यु पर निज़ामुल्मुल्क के साथ रहने लगा, जो अब कुछ शक्तिसंपन्न हो गया था। शाहजहाँ के राज्य के दूसरे वर्ष में दरबार आकर

नसीरी खाँ का मंसव एक हज़ारी १००० सवार बढ़ा। इसी वर्ष दक्षिण के वालाघाट से लौटते समय इसकी प्रार्थना पर इसको माही और मरातिब मिला, जो पहिले समय में दिल्ली के सुलतानों के राज्य चिन्हों में से था और इन लोगों ने दक्षिण के शासकों को दिया था। इसके अनंतर उस प्रांत में जम जाने पर वहाँ के सुलतान अपने विश्वासपात्र सरदारों को देते थे। पाँचवे वर्ष मोतकिद खाँ के स्थान पर यह मालवा का सूबेदार नियत हुआ।

कहते हैं कि जब उज्जैन और सारंगपुर ख्वाजः अबुलहसन से लेकर, जो बहुत दिनों तक उसके हाथ में थी, इसे जागीर में मिले, उस समय खानदेश और दक्षिण में अकाल पड़ रहा था और यहाँ तक गल्ला कम हो गया था कि रोटी से प्राण भी सस्ता हो गया था। वहाँ के रहने वाले मालवे के गल्ले पर बसर करते थे। नसीरी खाँ ने खलिहानों को धन से भर दिया था। मालवा के महालों से कभी इतना रुपया नहीं वसूल हुआ था।

जब ६ ठे वर्ष महावत खाँ ने दौलताबाद दुर्ग घेर लिया तब नसीरी खाँ ने उसके सहायतार्थ नियत होकर बहुत काम किया। एक दिन खानजमाँ के मोर्चे से खान खोदकर १७ मन बारूद भर कर आग लगा दिया और अंबर कोट की २८ गज दीवाल और १२ गज बुर्ज के उड़ जाने से बड़ा चौड़ा रास्ता खुल गया परंतु दुर्गवालों की गोली तथा तीर की वर्षा के कारण कोई आगे नहीं बढ़ पाता था। महावत खाँ ने चाहा कि स्वयं पैदल होकर भीतर जाय। नसीरी खाँ ने कहा कि सेनापतियों के नियम के विरुद्ध आप क्यों ऐसा करते हैं? मैं जाता हूँ।'

था, सामने लाया। घायलों को हटवा कर ख़ानखानाँ के पास पहुँचा। शत्रु इस युद्ध से भाग खड़े हुए। इस कार्य का समाचार तुरंत बादशाह के पास पहुँचने से इसकी प्रतिष्ठा बढ़ी। जब महावत खाँ की मृत्यु हो गई तब बालाघाट में ख़ानज़माँ नियत हुआ और पाईं घाट में, जिसमें पूरा खानदेश और बरार प्रांत का अधिकतर भाग था, सह ९२ करोड़ दाम की तहसील पर नियत हुआ। साथ ही यह भी आज्ञा हुई कि सरकार बीजागढ़, सरकार नज़रबार और सरकार हांड़िया के वे महाल, जो नर्बदा के उस पार थे, खानदेश के अधीन कर दिए जायँ। जुझारसिंह बुंदेला का पुत्र विक्रमाजीत, जो अपने पिता की सेना के साथ ख़ानज़माँ के यहाँ बालाघाट में नियत था, अपने पिता के संकेत पर, जो अपने देश में विद्रोह की इच्छा रखता था, भाग कर देश की ओर रवाना हुआ। ख़ानदौराँ ने यह समाचार पाकर बुर्हानपुर से उसका पीछा किया। मालवा प्रांत के अंतर्गत आस्टी में यह उसपर जा पहुँचा और करीब था कि वह पकड़ा जाय पर वह घायल होकर भी दुर्गम जंगलों में होता हुआ धामुनी में अपने पिता से जा मिला। ख़ानदौराँ आज्ञा की प्रतीक्षा में मालवा ठहर गया, इसपर इसे मालवा की सूबेदारी मिली कि यह वहाँ रहकर उस विद्रोही को दंड देवे। इसने अब्दुल्ला ख़ाँ के साथ उसका पीछा करने में बहुत प्रयत्न किया। ९वें वर्ष में जुझारसिंह और उसके पुत्र के सिर काट कर दरबार भेजा। इसके उपलक्ष में इसे बहादुर की पदवी मिली। इसी वर्ष जब शाहजहाँ दौलताबाद दुर्ग की सैर करने आया तब ख़ानदौराँ को राजा जयसिंह तथा

स्वरूप में तथा इसको मिला था, और गज़मोती हाथी, जिसे बादशाह के पसंद के अनुसार एक लाख में लिया था, सोने के साज के साथ, जिसे स्वयं एक लाख रुपया लगाकर बनावाया था, शाहजहाँ बादशाह को भेंट दिया। इसने ऐसे कठिन कार्य में वीरता तथा साहस दिखलाया था और इस प्रकार की भेंट इतने थोड़े समय के बीच में विद्रोहियों से वसूल किया, जैसा किसी बड़े सर्दार ने भी अब तक नहीं किया था, इसलिए बादशाह ने बहुत प्रसन्न होकर प्रशंसा करते हुए नसरत जंग की पदवी और छ हजारी ६००० सवार दो अस्पा सेह अस्पा का मंसब, जिसका वेतन दो करोड़ अस्सी लाख दाम अर्थात् २७ लाख मासिक था, और सुजाअतपुर परगना खालसा की आय भी इसे वेतन में दी। १७वें वर्ष में जब शाहजादा औरंगज़ेब बेगम साहब को देखने के लिए दक्षिण से आया तब अपने कुछ कार्यों से, जो उस प्रांत में शाहजहाँ के स्वभाव के विरुद्ध हो चुके थे और जिसके कारण उसके पिता रुष्ट हुए ज्ञात होते थे, उसने एकांतवास करना निश्चय किया तब इस पर शाहजहाँ ने अधिक क्षुब्ध होकर दक्षिण के प्रबंध पर नसरत जंग को, जो मालवा का शासक था, नियत किया। इसका मंसब सात हज़ारी ७००० सवार का कर दिया और एक करोड़ दाम पुरस्कार इसको मिला, जो कि हिन्दुस्तान की नौकरी में अंतिम दर्जा है।

कहते हैं कि खानदौराँ ने दक्षिण को अपनी सूबेदारी के समय अपने नए नियम चलाकर पुरानी दुनिया को बदल दिया था। बहुत से देशमुखों और देशपाण्डेयों को प्राणदंड दे दिया और

देने की कृपा कर साठ लाख रुपया सरकार से लौटा दिया। इसके पूर्वज ग्वालियर में गाड़े गए थे, इसलिए यह भी वहीं गाड़ा गया।

ख़ानदौराँ बादशाही काम में ज़रा भी आलस्य, ढिलाई या लोभ नहीं करता था। तीन पहर दिन और एक पहर रात सरकारी काम में बिताता था और दूसरे पर न छोड़कर स्वयं सब कार्य देखता था पर प्रजा से कठोरता का वर्ताव कर इसने उनका जीवन कष्टमय कर दिया था। पीड़ितों के आह के तीर का प्रभाव पड़ गया। जिस दिन उसके मरने का समाचार बुर्हानपुर पहुँचा, दूकानों पर चीनी मिश्री न बचने पाई कि लोगों ने खुशी में न बाँट दिया हो। बुर्हानपुर की अधिकतर अच्छी इमारतें इसी के समय की हैं। ताप्ती नदी के किनारे ज़ैनाबाद मंडी इसी की है। सिरोंज से बुर्हानपुर तक दस कोस में इसकी बनवाई हुई सरायें हैं। इसके पुत्रों में से इसकी मृत्यु पर सैयद महमूद और सैयद महम्मद को एक हजारी १००० सवार का मंसब और अब्दुल् नबी को, जो छोटा था, पाँच सदी का मंसब मिला था।

हुमायूँ की सेना से परास्त होकर सिवालिक के पहाड़ों में जा बैठा था, इसकी योग्यता तथा वीरता का विचार कर नियत किया। सुलतान सिकंदर हेमूँ के उपद्रव को अच्छा अवसर समझ कर अपनी सेना ठीक कर पहाड़ों से निकला और पंजाब प्रांत में कर उगाहने लगा। ख़िज़्रख़्वाजः ख़ाँ हाजी मुहम्मद ख़ाँ सीस्तानी को लाहौर की रक्षा के लिए वहीं छोड़कर उसे दमन करने के लिए चला। जब चमयारी कस्बे के पास पहुँचा और दोनों पक्ष के बीच में दस कोस की दूरी रह गई तब उक्त ख़ाँ ने २००० सिपाही चुने हुए अपनी सेना से अलग कर अग्गल के रूप में आगे भेज दिया। सुलतान सिकंदर ने समय न देकर सामना किया और ख़ूब युद्ध कर उनको भगा दिया। ख़िज़्र-ख़्वाजः ख़ाँ ठहरना उचित न समझ कर बिना युद्ध किए लाहौर लौट आया और बुर्ज आदि दृढ़ करने लगा। सिकंदर कुछ पीछा करने के बाद अपने काम में लग गया और बिना किसी रुकावट रुपया वसूल कर सेना एकत्र करने लगा। अकबर हेमूँ को दमन करने के अनंतर सिकंदर के उपद्रव को शांत करना आवश्यक समझकर पंजाब की ओर रवाना हुआ। कहते हैं कि जब चढ़ाई का निश्चय हुआ तब अकबर ने 'लसानुल् ग़ैब' दीवान से शकुन निकाला और यह शैर निकला—

सिकंदर को नहीं बख़्शा है पानी।
मुयस्सर ज़ोरो ज़र से है न यह कार[1]॥

बादशाह के लौटने का समाचार पाकर सिकंदर युद्ध का

---

१ काम।

ख़िदमत परस्त ख़ाँ

इसका नाम रज़ाबहादुर था। यह बचपन से शाहज़ादा शाहजहाँ की सेवा तथा दासता में रहा। बराबर सेवा में रहने, विश्वास-पात्र होने और स्वभाव-ज्ञान के कारण यह सम्मानित भी हुआ। कहते हैं कि जिस समय शाहज़ादा राणा की चढ़ाई पर नियत हुआ था तब यह किसी कारणवश एक दिन उदयपुर में ५०० कोड़ा खाकर भी ज़मीन पर नहीं गिरा और न आह की। इस कठोर आत्म-शक्ति के कारण इसका विश्वास बढ़ा तथा मनसब और सम्मान भी मिला। इसको एक सरदार बनाकर इसे ख़िदमत परस्त ख़ाँ की पदवी दी। सुलतान मुराद-बख़्श की सेवा में बिहार प्रांत से लौटते समय इसको सैयद मुज़फ़्फ़र ख़ाँ बारहा के साथ दुर्ग रोहतास में छोड़ दिया। जहाँगीर की मृत्यु के अनंतर जब शाहजहाँ दक्षिण में जुनेर से चलकर गुजरात पहुँचा और अहमदाबाद के पास कंकड़िया तालाब के किनारे सात दिन ठहरकर आगरे की ओर रवाना हुआ तब मार्ग ही से इसको अपने हाथ के लिखे हुए फर्मान के साथ यमीनुद्दौला के पास लाहौर भेजा। उसमें यह भी लिखा था कि 'संसार में उपद्रव होता रहता है इसलिये उपद्रव करने-वालों भूमि पर से कुछ शाहज़ादों के अस्तित्व को मिटा दे, जो फ़साद करने को तैयार हैं।' ख़िदमत परस्त ख़ाँ नौ दिन में डाक चौकी से लाहौर पहुँचा। कहते हैं कि सुलतान दावर बख़्श

गया कि रुस्तम तथा असफंदियार के कारनामे मिट गए। महम्मदशाह लोदी अपने दो भाइयों और खानजहाँ के बारह संबंधियों और नौकरों के साथ मारा गया। रज़ाबहादुर बादशाह की ओर के साठ नौकरों के साथ मारा गया। इसका शव आगरे भेजा जाकर नखास के पास एक गुम्बज में गाड़ा गया। दौलत खाँ के गुरजी दास कोतवालखाँ की, जिसे खानखानाँ ने उसे दिया था, पुत्री से इसका विवाह हुआ था। इनमें बहुत प्रेम था। यहाँ तक कि लोग इनके प्रेम की बातें कहा करते थे। जब ख़िदमत परस्त खाँ उससे कहता कि 'मैं बादशाह का जान निछावर करनेवाला सेवक हूँ, आज या कल उनके काम आ सकता हूँ तब तुम्हारा क्या हाल होगा ?' तब उसने अफीम और विष, जिसे वस्त्र के कोने में बाँध रखा था, दिखलाया। उसकी मृत्यु पर वह आत्महत्या करने का अवसर न पाकर खराब हालत में उसके क़ब्र पर जा बैठी। शाहजहाँ ने इस कारण खिदमत-परस्त खाँ का कुल सामान उसको देकर रोज़ीना नियत कर दिया। एक वर्ष भी न बीता था कि धन की मस्ती और बुरे संग साथ के सिलसिले में गाने और नाचने की शौकीन हो गई और शराब पीने लगी। जब बादशाह को यह समाचार ज्ञात हुआ तब उसका क़िलेदार ख़ाँ चेले के साथ निकाह पढ़वा दिया। उसकी मृत्यु पर फिर उसी रज़ाबहादुर की कब्र पर सिर मुड़ाकर बैठी। शाहजहाँ ने फिर रोज़ीना बाँध दिया।

कहते हैं कि रज़ाबहादुर २०० से अधिक आदमी नौकर रखता था। प्रतिदिन ५० आदमियों के साथ भोजन करता था और इन लोगों की चौकी सवारी क्षमा थी। शाहजहाँ की

ख़ुदायार ख़ाँ

यह सिंध के शासक अब्बासी वंश से था और इसका प्रसिद्ध नाम वलेटी था तथा इसके कुनवे का अल्ल सिंध भाषा में कल्होर: था। इसकी प्रजा को सराइयाँ कहते हैं क्योंकि उस जाति के लोग अधिकतर सरा के हैं। मुल्तान और भक्कर के बीच के प्रांत को सरा कहते हैं। इसके पूर्वजगण दरवेश के लिबास में रहते थे और इस वंश का सिलसिला सैयद महम्मद जौनपुरी से मिलता है। इसके पूर्वजों में से एक अब्र: जाति के सर्दार के पास पहुँचा, जो बहुत प्राचीन काल से सिंध प्रांत के शासक थे और कुछ भूमि मदद्देमआश (आजीविका) में मिली। उसकी संतान इस प्रकार जड़ पाकर शक्ति संग्रह करने लगी और बहुत से शिष्य तथा अनुयायी एकत्र कर लिए। अंत में ज़मीन्दारी लेकर शासकों को कर अदा करने लगे। क्रमश: अब्र: जाति को दबा कर उसके बहुत से मौजों पर अधिकार कर लिया। यहाँ तक कि शेख नसीर ने ज़मीन्दारी के काम का बहुत अच्छा प्रबंध कर लिया। उसकी मृत्यु पर उसका बड़ा पुत्र शेख दीन-मुहम्मद गद्दी पर बैठा। बहादुरशाह के समय जब शाहजादा मुइज्जुद्दीन मुलतान प्रांत का शासक हुआ और उसकी सेना सीविस्तान पहुँची तब दीनमुहम्मद अधीनता न स्वीकार कर सेवा में नहीं आया। अंत में कुरान को बीच में देकर दीन-मुहम्मद को उसके संबंधियों में से दो आदमियों के साथ बुल-

कड़े युद्धों में परास्त किया और उस झुंड को अपने वास्तविक देश से स्त्री बच्चों के साथ बाहर निकाल दिया, जो छ सात सहस्र के लगभग थे। ये दाऊद-पुत्र लोग शाहज़ादा मुइज्जुद्दीन के समय में शिकारपुर के ज़मींदार नियत हुए थे। इसका कारण यह था कि जब शाहज़ादे ने शिकारपुर के जमींदार बख्तियार खाँ पर सेना भेजी थी तब दाऊदपुत्रों ने सेना के साथ रहकर युद्ध में बहुत प्रयत्न किया था और बख्तियार खाँ के सिर को काट कर लाए थे। शाहज़ादे ने इस सेवा के उपलक्ष में वह ज़िला उन लोगों को दे दिया था। क़िलात का अध्यक्ष अब्दुल्ला खाँ बरोही, जो सिंध व कंधार के बीच एक दृढ़ दुर्ग है, बराबर खुदायार खाँ के राज्य पर आक्रमण किया करता था और प्रति वर्ष उससे कर लेता था। खुदायार खाँ ने सन् ११४३ हि० में अब्दुल्ला खाँ पर चढ़ाई करने का विचार किया और अपने निवास स्थान खुदा बाग़ से चलकर बुलादकानः में आकर ठहरा तथा एक दृढ़ सेना आगे भेजी। अब्दुल्ला ख़ाँ भी वीरता तथा साहस में एक ही था और थोड़ी सेना के साथ क़िलात से बाहर निकल कर अपने देश से आगे बढ़ उसने इस सेना का सामना किया पर दैवयोग से घोर युद्ध के बाद वह मारा गया। खुदायार ख़ाँ ने क़िलात के अंतर्गत अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया पर पहाड़ों तथा घाटियों की दुर्गमता के कारण क़िलात नहीं ले सका। इस विजय के अनंतर इसे ख़ुदायार ख़ाँ बहादुर साबित जंग की पदवी मिली और इसका मनसब बढ़कर पाँच हजारी हो गया तथा डंका और खिलअत पाकर यह सम्मानित हुआ। सन् ११४९ हि० में ठट्टा प्रांत का

पहिले की चाल से नियत हुआ। वहां का सब माल और धन इकट्ठा होने पर उसका एक तिहाई हिस्सा इसे छोड़ दिया गया। एक हिस्सा दाऊद-पुत्रों को दिया और एक हिस्सा भक्कर के जमींदारों को सौंपा। लिखने के समय गुलामशाह नामी और उसका पुत्र सरफराज ख़ाँ, जो खुदायार ख़ाँ के पास के संबंधी थे, इस प्रांत के शासन पर नियत हुए थे। उस समय से यही लोग वहाँ नियत हैं।

सेना में लौट आया तथा गद्दी पर जा बैठा। औरंगजेब के सभी सर्दार तथा मंत्रीगण किसी-न-किसी प्रकार उसके साथ हो गए क्योंकि प्रगट में विजयी का पक्ष सभी लेते हैं। उक्त खाँ भी साथ हो गया। औरंगजेब की मृत्यु के तीन महीना बीस दिन बाद बहादुरशाह के साथ जो घोर युद्ध हुआ, उसमें मुहम्मद आज़मशाह अपने दो पुत्रों और बहुत से शाही सर्दारों तथा सैनिकों के साथ मारा गया। उक्त खाँ भी बहुत घायल हुआ। आगरे पहुँचकर जब इसके घाव अच्छे हो चले थे और बहादुर-शाह की सेवा भी इसने स्वीकार कर लिया था तब कुपथ्य करने से इसके घाव खराब हो गए और यह मर गया।

कहते हैं कि जब युद्धस्थल से इसको मतलब खाँ के साथ उठाकर लाए तब अलीमर्दान खाँ कोकलताश ने समय पर उपस्थित होकर इसकी भर्त्सना की, जो ऐसे समय के लिए उपयुक्त थी। विजयी पक्ष के लोग प्रायः पराजितों के साथ ऐसा बर्ताव करते हैं और घाव पर निमक छिड़कते हैं। मतलब खाँ ने निर्बलता के कारण कहा कि 'हम मजबूर थे और जबरदस्ती आए हुए हैं।' खुदावन्दः खाँ घावों के कारण बेहोश था। उसने जब सुना तो एकदम वैसी हालत में भी गर्म हो उठा और कहा कि 'खैर, हम बड़े शौक से आए हुए थे कि तुम्हारी स्त्री और बच्चों को कैद करें तथा तुम्हें मार डालें पर ख़ुदा ने नहीं चाहा अब यह सिर उपस्थित है जो चाहते हो उससे भी खराब स्थान में फेंक दो।' इसके कई पुत्र थे पर असद खाँ की पुत्री से एक भी न थे। इनमें से एक पिता की पदवी पाकर सर्दारों के उन पुत्रों के विरुद्ध, जो खेल खिलवाड़ में लगे रहते हैं, अपने को उपदेश योग्य बनाया और इसे वार्षिक

खुदावंद ख़ाँ दक्खिनी

यह अहमदनगर के निज़ामशाही दरबार का एक सर्दार था। इसका पिता मशहद का रहनेवाला था और इसकी माँ हब्शिन थी। यह बड़े डील डौल वाला था और बल तथा वीरता में प्रसिद्ध था। जब ख्वाजः मीरक इस्फ़हानी उर्फ़ चंगेज़ ख़ाँ मुर्तज़ा निज़ाम शाह का वकील तथा पेशवा नियत हुआ तब यह उसका समर्थक होने के कारण सर्दारी और बरार प्रांत में अच्छे महालों की जागीरदारी पर नियत हुआ। यह थोड़े ही समय में विशेष धन ऐश्वर्य इकट्ठाकर सैन्य और वैभव का स्वामी हो गया। रोहनखीरः बस्ती की मस्जिद की नींव इसी की रक्खी हुई है, जहाँ बहुत समय से पराजयों और धावों के कारण रास्ता नहीं मिलता था। सन् ९९३ हि० में मीर मुर्तज़ा सब्ज़वारी के साथ, जो बरार की सेना का अध्यक्ष था और सलाबत ख़ाँ चरकिसी के प्रभुत्व के कारण दक्षिण में नहीं ठहर सकता था, फतहपुर में अकबर की सेवा में पहुँचा। उक्त ख़ाँ ने एक हज़ारी मंसब पाकर अकबरी दर्बार में उन्नति पाई पर ३२ वें वर्ष सन् ९९५ हि० में बादशाही दर्बार के नियम आदि में छिद्र निकालने के कारण, जो कृतघ्नता और गुणग्राहकता के अभाव के कारण इसके और शाही नौकरों के बीच हुई थी, यह दृष्टि से गिर गया। जब पत्तन गुजरात इसकी जागीर में नियत हुआ तब उसी का

ख़ुशहाल बेग काशग़री

शाहजहाँ के १९ वें वर्ष में एक हज़ारी ४०० सवार का मनसब पाकर सुलतान मुराद बख़्श के साथ बलख और बदख़्शाँ की चढ़ाई पर गया। बलख़-विजय तथा उक्त शाहजादे के हिंदुस्तान लौटने के अनंतर जब जुम्लतुल्मुल्क सादुल्ला ख़ाँ वहाँ का प्रबंध करने को नियत हुआ तब यह भी अन्य काशग़रियों के साथ शेरपुर तथा साम चारयक की थानेदारी पर नियत हुआ। २० वें वर्ष जुम्लतुल्मुल्क के प्रस्ताव पर इसका मनसब डेढ़ हज़ारी ५०० सवार का कर दिया गया। २२ वें वर्ष में सुलतान मुहम्मद औरंगज़ेब के साथ कंधार प्रांत गया और वहाँ से रुस्तम ख़ाँ और कुलीज ख़ाँ के साथ कज़िलबाशों के युद्ध में दृढ़ता से डट कर लड़ने के कारण २३ वें वर्ष में इसका मनसब बढ़कर दो हज़ारी १२०० सवार का हो गया। २५ वें वर्ष में फिर उक्त शाहजादे के साथ उसी काम पर गया। २८ वें वर्ष जुम्लतुल्मुल्क के साथ चित्तौड़ के विरुद्ध जाकर बहुत वीरता का काम किया। इसके अनंतर ख़लील ख़ाँ के साथ श्री नगर के राजा को दंड देने के लिए गया। ३१ वें वर्ष के अंत में महाराज जस्वंतसिंह के साथ, पिता को देखने के

---

१. पाठा० ख़लीलुल्ला ख़ाँ।

खुसरू बेग

यह क़रक़ची उज़बक था। इसके पूर्वजगण बाप दादे के समय से तूरान के रहनेवाले थे और वहाँ बड़े ऐश्वर्य तथा रियासत के साथ अपना समय बिताते थे। ये वीरता और साहस में भी प्रसिद्ध थे। खुसरूबेग भी इन गुणों से भूषित था। जब यह हिन्दुस्तान आया तब जहाँगीर ने इसे अच्छा मनसब देकर सम्मानित किया। इसके मुख से योग्यता और कर्मठता प्रगट थी इसलिए इसको दिल्ली के सीमाप्रांत और नारनौल का फौजदार नियत किया, जो उपद्रवियों और विद्रोहियों का घर था। कहते हैं कि इसके यहाँ ४०० उजबक करकरेदार तुर्की सवार नौकर थे और सभी वीर तथा परिश्रमी थे। इस फौजदारी के समय उपद्रवियों के उन झुंड को दमन करने में इसने कोई उपाय न उठा रखा और उस प्रांत को निष्कंटक कर दिया। दरबार से इसकी बहुत प्रशंसा हुई। आठवें वर्ष जब बादशाह अजमेर गए और युवराज शाहजादे को सुसज्जित सेना के साथ राणा पर भेजा तब खुसरूबेग भी उस सेना में नियत हुआ। इस चढ़ाई में इसने भी बहुत परिश्रम किया था, इसलिए शाहजादे ने इसका मंसब व विश्वास बढ़ाया तथा इसकी सिफारिश दरबार से भी की। जब राणा के पहाड़ी स्थान में शाहजहाँ के इकबाल से बादशाही थानाबन्दी करना निश्चित हुआ तब यह भी एक जगह का थानेदार नियत हुआ। वहीं इसकी मृत्यु हो गई।

खुसरू सुलतान

बलख-बदख्शाँ के शासक नज़रमुहम्मद खाँ का यह द्वितीय पुत्र था। सन् १०५१ हि० में जब मावरुन्नहर में नज़रमुहम्मद खाँ के नाम ख़ुतबः पढ़ा गया तब उक्त खाँ ने अपने बड़े पुत्र अब्दुल् अज़ीज़ खाँ के साथ बुखारा में बड़ी दृढ़ता के साथ खाँ की गद्दी पर बैठकर शासन का काम आरंभ कर दिया। सन् १०५५ हि० में फुर्ती से जाकर अर्कनज पर अधिकार कर लिया, जिसका हाकिम असकंदियार खाँ मर गया था। उज़बक जाति के साथ इसका बड़ा भाई इमामकुली खाँ बहुत अच्छा व्यवहार रखता था और महसूल छोड़कर तथा मावरुन्नहर का प्रबंध उसी जाति को देकर स्वयं खाँ के नाम से ही प्रसन्न रहता था। जब इसने उस समय का हिसाब फिर से माँगा तब वह जाति जो उपद्रवी तथा बेलगाम की थी, क्रुद्ध और दुखी होकर बिगड़ गई और इसको पुत्र के साथ निकाल देने का निश्चय किया। उक्त खाँ ने उन विद्रोहियों को एक मत देखकर अवसर समझ उनके समूह में भेद डालने का निश्चय किया। हर एक को उसने अलग अलग नियत कर दिया। अधीनस्थ प्रांत सहित समरकंद को अब्दुल् अज़ीज़ खाँ को देकर बेग ओग़ली को अभिभावक और खुसरूबेग को दीवानबेगी नियत किया। अपने तृतीय पुत्र बहराम को अधीनस्थ प्रांत सहित ताशक़ंद देकर बाक़ी योज़ को अभिभावक नियत किया। इमामकुली खाँ के अभिभावक नज़र-

पूरी न कर उसे बिगाड़ दिया। वलख के सरदारों से भी, जो वहुत समय तक सेवा कार्य में रत्ती भर कमी न कर केवल उसकी कृपादृष्टि और कृतज्ञता चाहते थे, कुछ ठीक वात न वतलाकर सव गुप्त रखता था। उसने दृढ़ता तथा दूरदर्शिता को एकदम हाथ से छोड़ दिया था। जो कोई राजभक्ति के कारण किसी विद्रोही की चाल उससे गुप्त-रूप से कहता तो वह उसे नीचता से प्रगट करके उसे अविश्वसनीय वना देता तथा लज्जित कर देता। यहाँ तक कि एकाएक तमाम तूरान तथा तूरानियों ने विद्रोह कर दिया और एक वार ही सवने इसके विरुद्ध होकर मावरुन्नहर में अब्दुल् अज़ीज़ खाँ के नाम खुतबः पढ़ डाला और अलमानों ने लूट मार आरंभ कर वहुत से कारखाने लूट लिए। अंत में नज़र मुहम्मद खाँ ने अपने पुत्र से इस प्रकार संधि करनी चाही कि मावरुन्नहर का शासन वह रखे और वलख, वदख़्शाँ इसको दे दे। इस प्रकार संधि हो जाने के अनंतर वह स्वयं युद्ध से अलग हो गया पर उजवकों के दोरंगीपन से और अलमानों के विद्रोह से जान माल का भय वढ़ता गया, जिससे अंत में शिकार खेलना छोड़कर वह वलख दुर्ग में जा वैठा। जहाँगीर के मरने और शाहजहाँ के वादशाह होने के वीच में अर्थात् दक्षिण के जुनेर से आकर राजगद्दी पर वैठने में जो समय लगा था उसे सुअवसर समझ कर विद्रोह की इच्छा और जवानी के घमंड से भारी सेना के साथ कावुल विजय करने आया। शाही सेना के आगे वह कुछ न कर सका और उसे भागना पड़ा पर लूट मार आरंभ कर नगर निवासी तथा आस-पास की प्रजा का दरिद्र

मसनद के पास बैठाकर इस पर बहुत कृपा की। अनेक प्रकार की वस्तु तथा ५० सहस्र रुपये देकर इसे दरबार भेजा। दरबार की ओर से मृत सादिक़ खाँ का पुत्र मरहमत खाँ सोने के ज़ीन सहित चार अर्बी तथा एराकी घोड़े, हिन्दुस्तान के अलभ्य कई तरह के बहुमूल्य कपड़े, एक पालकी, चार डोली, जिनके डंडे चाँदी के और उड़ान मखमल के थे, औरतों की सवारी के लिए और दो पूर्ण पेशख़ानों के सहित भेजा गया कि उक्त सामान को उक्त सुलतान के पास पहुँचा कर साथ-साथ दरबार लिवा लाये। २५ रबीउल् आख़िर सन् १०५६ हि० को जब यह काबुल पहुँचा तब प्रधान मंत्री सादुल्ला खाँ और मीर जलाल सदरूस्सुदूर स्वागत कर सेवा में ले आये। इसकी प्रार्थना पर तथा आज्ञा मिलने पर इसने क़दमबोसी किया। शाहजहाँ ने कृपाकर दोनों हाथ से इसका सिर उठाकर आलिंगन किया और बैठने की आज्ञा दी। अनेक प्रकार की कृपा, ५० सहस्र रुपया नक़द और छ हज़ारी २००० सवार का मनसब दिया। ख़ान-दौराँ बहादुर का निवासस्थान चाँदनी आदि सामान के साथ इसको रहने के लिए दिया। इसके पुत्र बदीअ सुलतान को, जो पिता के साथ आया था, बारह सहस्र रुपया वार्षिक वृत्ति दिया। ख़ुसरू सुलतान वृद्ध तथा अफ़ीमची था और बहुत दिनों तक उज़बकों के अत्याचार तथा उपद्रव से भले दिन नहीं देखे थे और अल्मानों के लूटमार तथा भय से आराम नहीं पाया था, उसको एका-एक एक बार ही बिना दुःख तथा भय के यह ईश्वरदत्त ऐश्वर्य मिल गया, जिससे बड़े सुख और आराम से अपना जीवन व्यतीत करने लगा। इसके जिम्मे कोई सेवाकार्य

ख़्वाजः जलालुद्दीन मुहम्मद ख़ुरासानी

आरंभ में यह मिर्ज़ा अस्करी का नौकर था। मिर्ज़ा के काम से कंधार से गर्मसीर प्रांत में यह कर उगाहने गया। उसी समय हुमायूँ बादशाह एराक जाते हुए उसी रास्ते से गया। ख़्वाजः के आने का समाचार पाकर बाबा दोस्त बख़्शी को उसके पास भेजा, जिसमें उसे समझा कर सेवा में ले आवे। ख़्वाजः इस अवसर को शुभ समझकर सेवा में पहुँचा और जो कुछ नक़द व सामान उसके पास था, भेंट किया। हुमायूँ ने उसे अपना मीर सामान नियत किया। जब एराक से लौटने और कंधार-विजय के अनन्तर मिर्ज़ा अस्करी के आदमियों द्वारा ख़्वाजः को लालच दी गई तब मीर मुहम्मद अली द्वारा इसे गिरफ्तार करा लिया। सन् ९५९ हि० में हुमायूँ ने शाहज़ादा अकबर को गज़नी की ओर बिदा किया, जो शाहज़ादे की जागीर नियत की गई थी, जिसमें वहाँ अच्छा शासन तथा राज्य के प्रतिबंध स्थापित करे। उस समय बादशाह ने ख़्वाजा को साथ कर दिया और कुल कार्य उसी की सुसम्मति पर छोड़ दिया। वहाँ से लौटने पर यह कृपापात्र होकर अच्छे कार्य पर नियत हुआ। ख़्वाजः बादशाह का कृपापात्र होकर अन्य आदमियों का स्वयं सम्मान नहीं करता था और अन्य बड़े सर्दार अपने लाभ के लिए बादशाह के स्वयं चापलूस बनना चाहते थे इसलिए हुमायूँ के दरबारी इससे मित्रता नहीं रखते

छोड़कर दूसरी जगह चला जावे। अंत में मुनइम खाँ ने कुछ आदमियों को इसके पास भेजा और प्रतिज्ञा करके अपने पास बुलवाकर कैद कर दिया। इसके अनंतर इसकी आँख में नश्तर चुभवाया पर इसका भाग्य अच्छा था, इसलिए अंधा न हुआ। इसके बाद इसको अंधा समझकर छोड़ दिया। ख्वाजः हिन्दुस्तान जाने की इच्छा से बंगश की ओर रवाना हुआ। मुनइम खाँ ने यह समाचार पाकर कई शीघ्रगामी आदमियों को इसे ढूँढ़ने भेजा और ख्वाजः को उसके छोटे भाई जलालुद्दीन मसऊद के साथ पकड़कर कैदखाने में बंद कर दिया। तीसरे वर्ष में कुछ आदमियों को नियत किया, जिन्होंने रात में उन दोनों को मार डाला। बैराम खाँ ने भी उनके मारने का फर्मान भेज दिया था। अकबर ने यह बात सुन कर दुखी होते हुए भी अपने हाथ में अधिकार न रहने के कारण इसका बदला ईश्वर पर छोड़ दिया।

उसमें पुंसत्व आ गया। ख्वाज: ने कहा कि इस लड़के को दो सिपाही दौड़ावें और उसके पसीने को, जो मुँह व शरीर से निकले, रुमाल में उठा लें। जब रूमाल तर हुआ तब उसे लेकर सूँघा तो वास्तव में मछली की बू आई। अन्य गंधियों ने भी सूँघकर उसको ठीक बतलाया। दूसरी बात इस प्रकार है कि एक आदमी ने मार्ग से एक थैली उठाकर उसके मालिक को सौंप दिया। उस लालची ने कहा कि तुमने इसमें से मेरा धन आधा निकाल लिया है। जब यह मामिला ख्वाज: के पास पहुँचा तब ख्वाज: ने उस थैली को उसके पानेवाले को दे दिया कि यह दैव से तुम्हें प्राप्त हुआ है, ले जाओ और मालिक से कहा कि तुम्हारी थैली दूसरी होगी। उसने तुरंत नम्रता से स्वीकार किया कि मेरा इतना रुपया था। जब गिना गया तब ठीक उतरा। ख्वाज: अपनी मौत से मरा। आगरे में इसने एक बहुत बड़ी इमारत बनवाई। इसके पुत्रों में से एक जलालुद्दीन महमूद शाहजहाँ के राज्य के अंत तक मंसब और जागीर रखता था। इसने उन्नति न की। मिर्जा आरिफ़ सुन्दर और सुशील था तथा चौगान खेलने में अद्वितीय था। जहाँगीर की सेवा में सम्मान प्राप्त कर चुका था पर ठीक जवानी में इसकी मृत्यु हो गई।

ख्वाजः जहाँ ख्वाफी

का नाम ख्वाजः जान था और बाबर के पुराने सेवकों में से था। जहाँगीर की मृत्यु का समाचार पाकर जब दक्षिण से जुनेर से लौटकर अहमदाबाद के पास पहुँचा को, जो दो हजारी छः सौ सवार के मनसब से सम्मा- चुका था, गुजरात का दीवान नियत किया। चौथे अंत में इसने मक्का मदीना जाने के लिए प्रार्थनापत्र दिया में सफल हुआ। बादशाह पाँच लाख रुपये अलग कर कि दोनों पवित्र स्थानों के सुपात्रों में बाँटने को भेजे गुजरात के कर्मचारियों को आज्ञा दी कि दो लाख हजार रुपये इसको उन दोनों स्थानों में खरीदने बेंचने पूंजी के रूप में सौंप दें, क्योंकि यह सचाई के लिए था, जिसमें बेंचने के अनंतर जो मूल और सूद बचे वह नों स्थानों के गरीबों में बाँट दे। ९ वें वर्ष में वहाँ से नौ अरबी घोड़े सेवा में उपस्थित होने पर भेंट कर सम्मा- गा। १२ वें वर्ष गुजरात की दीवानी से हटाया जाकर वर्ष सन १०५३ (सन् १६४३ ई०) में मर गया।

ख्वाज:जहाँ हर्वी

इसका नाम ख्वाज: अमीनुद्दीन मुहम्मद उर्फ अमीना था। हिसाब किताब के क्षेत्र में यह अद्वितीय था। शिकस्त लिपि यह अच्छी लिखता था। व्यय में किफायत करने और हिसाब ठीक रखने में यह बाल की खाल निकालता था। एराक की यात्रा में यह हुमायूँ के साथ था। इसके अनंतर बराबर बादशाह का कृपापात्र रहकर कुछ समय तक शाहजादा मुहम्मद अकबर का बख्शी नियत रहा। जब अकबर बादशाह हुआ तब इसे एक हजारी मंसब और खानजहाँ की पदवी मिली। बहुत दिनों तक सम्राज्य का सब कार्य इसके हाथ में रहा और हिन्दुस्तान के वजीरों में दृढ़ता के लिए इसने काफी नाम कमाया।

जब अकबर खानज़माँ शैबानी के कामों को ठीक करने के लिए इसको मुनइम खाँ और मुज़फ्फर खाँ के साथ कड़ा मानिकपुर में छोड़कर आगरे लौट गया और इसके अनंतर जब उस सीमा पर के कार्यों से छुट्टी पाकर सर्दारगण ११ वें वर्ष के आरंभ में लौटे तब मुज़फ्फर खाँ इटावा से फुर्ती कर सबके पहिले दर्बार पहुँच गया और सर्दारों का दुरंगीपन भी बादशाह से कह सुनाया। ख्वाज:जहाँ दंडित हुआ और उससे बड़ी शाही मोहर ले ली गई, जिस से उसको सांसारिक प्रतिष्ठा थी, तथा उसे हेजाज की यात्रा पर भेज दिया गया। फिर वह बादशाह के पार्श्ववर्तियों की प्रार्थना पर क्षमा किया गया। १९ वें वर्ष सन् ९८१ हि० (सन् १५७४ ई०) में जब बादशाह हाजीपुर

ख़्वाज़म .कुली ख़ाँ वहादुर

यह नज़रवे का पुत्र था, जो तूरान के अच्छे सरदारों में से था और वहीं से राजदूत होकर औरंगज़ेव के समय में आया। यहाँ से लौटने पर अपने बड़े पुत्र यूलयार्स ख़ाँ को नौकरी के लिए हिन्दुस्तान भेजा। नजरवे की मृत्यु पर उसका दूसरा पुत्र वेगलरवेगी खाँ भी अपने अधीनों और सामान के साथ अपने बड़े भाई के पास आया। उस समय उक्त खाँ दूध पीता वच्चा था। वेगलरवेगी .ख़ाँ वारहा के सैयदों के प्रभुत्व के समय मरहमत .ख़ाँ के स्थान पर मांडू का फौजदार तथा दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। यह भी भाई के साथ था। सन् ११३६ हि० (सन् १७२३ ई०) में जव निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह मंत्री नियत होने के अनंतर महम्मदशाह से छुट्टी लेकर दक्षिण की ओर रवाना हुआ तव इसको मार्ग में साथ ले लिया। मुवारिज़ ख़ाँ के युद्ध के अनंतर वुरहानपुर प्रांत में जागीर पाकर खानदेश प्रांत के अंतर्गत सरकार खरकुन का फौजदार नियत हो कालयापन करता रहा। नासिर जंग के प्रथम शासन-काल में वरार का नायव-नाज़िम नियत हुआ पर कुछ महीने वाद हटा दिया गया। इसके अनंतर कभी वगलाना और कुर्ते का फौजदार रहने के वाद वुरहानपुर का नायव सूवेदार नियत हुआ। सलावतजंग के समय .जुल्फ़िक़ारुद्दौला क़ायमजंग की पदवी पाई। जव खानदेश मरहठों के अधिकार में चला गया तव यह वड़ी दुर्दशा और घवराहट में सलावतजंग के पास

ख्वाजः मोअज्जम

यह हमीदा बानू बेगम का सगा भाई था। आरंभ ही से इसके मस्तिष्क में सिवाय उपद्रव और गर्मी के कुछ नहीं था। बहुधा कठोर काम कर बैठता था। हुमायूँ हमीदा बेगम के विचार से कुछ न बोलता था। एराक़ जाते समय यह साथ था और इसपर विश्वास भी अधिक था। काबुल-विजय के अनंतर मूर्खता से यह चाहता था कि कामराँ से जा मिले पर बादशाह ने यह समाचार पाकर नज़रकैद कर दिया। बदख्शाँ की चढ़ाई में ख्वाजः सुलतान मुहम्मद रशीदी के साथ, जो वजीर था, हठधर्मी की बातें कर रमजान में रोजा खोलने के समय कुछ निडर आदमियों के साथ उसके घर जाकर उस बेचारे को तलवार से मार डाला और बादशाही क्रोध की डर से काबुल का रास्ता पकड़ा पर वहीं आज्ञानुसार कैद कर लिया गया। फिर पार्श्ववर्तियों की सिफारिश से इसे ज़मींदावर की जागीरदारी मिली परंतु इसका दिमाग ठीक नहीं था, इसलिए बदमस्त होकर उसी प्रकार का कुकार्य करने लगा। सन् ९६२ हि० (सन् १५५५ ई०) में सिकंदरशाह सूरी के युद्ध में इसने अच्छा काम किया। विजय के बाद सिकंदर को अयोग्य बातें लिखकर इसने अपनी उसके प्रति राजभक्ति प्रगट किया। जब ख्वाजः से इस विषय में पूछा गया तब इसने कहा कि मैंने बादशाह की स्वामिभक्ति से सशंकित होकर ऐसा किया कि ये लेख बादशाह देखें और हम पर प्रसन्न होकर अच्छा पद दें। हुमायूँ ने इसे पहिले कैद

जाने पर न मालूम क्या कर डाले। बादशाह ने उस पुरानी सेविका पर दया करके कहा कि हम शिकार की इच्छा से रवाना होते हैं और तुम्हारे विचार से ख्वाजः के घर की ओर से जायँगे तथा जब वह मार्ग में सेवा में आवेगा तब उसे समझाकर तुम्हारी पुत्री को लिवा जाने से मना कर देंगे।

जब अकबर नाव पर सवार होकर जमुना नदी से पार हुआ तब ख्वाजः मोअज्ज़म के घर की ओर प्रायः बीस विशिष्ट आदमियों के साथ रवाना हुआ। मिर्ज़ा का पागलपन मालूम था इसलिए मीर फ़राग़त और पेशरव खाँ को आगे भेजा कि ख्वाजः को बादशाह के आने का हाल आगे से बतला दे। जब उसे मालूम हुआ कि बादशाह नदी के इस किनारे आये हैं और इन दोनों को भेजा है तब उसका मिजाज़ बिगड़ गया और कहा कि मैं बादशाह के सामने न जाऊँगा। इसके बाद क्रुद्ध होकर स्वयं खंजर लेकर अपने महल में गया और जोहरा आक़ा को, जो नहाकर नया कपड़ा पहिर रही थी, छुरे से मार डाला। इसके बाद खिड़की से सिर निकाल कर रक्त से भरे छुरे को फेंक दिया और चिल्लाकर कहने लगा कि 'मैंने उसको मार डाला है, जाकर कह दो।' जब बादशाह को यह हालत मालूम हुई तब वह क्रोध से भर कर उसके घर गया। वह पागल तलवार लेकर और हाथ कब्ज़े पर रखकर सामने आया। अकबर ने रोष के साथ कहा कि 'यह क्या चाल है कि तलवार के कब्जे पर हाथ रक्खे हुए है। यदि ऐसी हरकत जानकर की हो, तो ऐसा हाथ तेरे सर पर मारूँ कि तेरा प्राण निकल जाय।' उस पागल के

अपनी स्त्री को मार डाला और उसको मारा।
शाह जलालुद्दीन अकबर के क्रोध से ॥
उसकी मृत्यु का वर्ष उससे जब पूछा।
उसी समय उस शुभ स्वभाव ने कहा ॥
उस संसार की प्रकाश करनेवाली मूर्ति ने निडर हो।
अंत में हुई मेरी बड़ी वीरगति ॥

(शहादतम अकबर, सन् ९७१ हि० ।)

यह अली मरदान खाँ[1] अमीरुल् उमरा का बड़ा पुत्र
जहाँ के २६ वें वर्ष तक इसे एक हज़ारी ५०० सव
व मिल चुका था। २८ वें वर्ष में इसके मंसब में
और २९ वें वर्ष में १०० सवार बढ़ाए गए। ३
में इसका मनसब बढ़कर डेढ़ हजारी ८०० सवार क
। ३१वें वर्ष में इसके पिता की मृत्यु होने पर इसका म
र ढ़ाई हजारी १५०० सवार का हो गया। इसके अ
ान शिकोह के साथ मुहम्मद शुजाअ पर भेजा ग
समय ने पलटा खाया और औरंगजेब का भाग्य बढ़ा
इसकी सेवा में पहुँचकर नौकर हो गया। प्रथम वर्ष में
खलीलुल्लाह खाँ के साथ दारा शिकोह का पीछा कर
ा हुआ। इसके बाद गंज अली खाँ[2] की पदवी
अ के युद्ध में तथा दारा शिकोह के द्वितीय युद्ध में य
था। ९ वें वर्ष में इसका मनसब बढ़कर तीन ह
० सवार का हो गया और यह काबुल के सहायक
ा हुआ। खैबर में अफ़गानों से जो युद्ध[3] हुआ था
भी साथ था। इसके बाद का हाल नहीं मालूम हुआ।

---

१. देखिए इसी ग्रंथ का भाग २ पृ० २९८ ३०८।
२. यह इसके दादा का नाम था और इसे पदवी रूप में मिला
३. स्यात् ६ मई सन् १६७२ ई० के युद्ध से तात्पर्य है,

ग़ज़नफ़र ख़ाँ

यह अलीवर्दी ख़ाँ का पुत्र था। अपने पिता से बहुत दिनों से अलग होकर शाहजहाँ की सेवा में रहा। बड़े भाई मिर्ज़ा जाफ़र को छोड़कर अन्य सभी भाइयों से इसने अधिक प्रतिष्ठा और विश्वास प्राप्त किया। शाही सेवा-कार्य में यह बहुत सतर्क रहता था। पहिले यह तुज़ुक पद पर नियत हुआ। १६ वें वर्ष में यह तोपखाने का दारोगा और सेना का कोतवाल नियत हुआ। बलख़ की चढ़ाई में मुरादबख्श ने ख़लीलुल्ला ख़ाँ को, जो सहायक सेना के बाएँ भाग का अध्यक्ष था, चारकार से कहमर्द और ग़ोरी दुर्गों को विजय करने के लिए भेजा। उक्त ख़ाँ ने ग़ज़नफ़र ख़ाँ को कुछ सेना के साथ अग्गल की तौर पर ग़ोरी दुर्ग पर भेजा। इसने क़ुवाद ख़ाँ मीर आख़ोर[1] के साथ दुर्ग पर चढ़ाई कर दिया और अपनी प्रतिष्ठा के विचार से तथा नाम कमाने के लिए घोड़े से उतर कर दुर्ग लेने में बहुत प्रयत्न किया। इसी बीच पीछे की सेना के पहुँच जाने पर दुर्गाध्यक्ष को दुर्ग दे देना पड़ा। २२वें वर्ष में यह हथसाल का दारोगा नियत हुआ और एक हजारी ५०० सवार का मंसब और ख़ाँ की पदवी मिली। बंगाल जाने में देर करने के कारण इसका मंसब छिन गया। २७वें वर्ष में फिर एक हजारी ८०० सवार का मंसब पाकर दोआब का फौजदार नियत हुआ।

---

१. इसी भाग का ३० शीर्षक देखिए।

एकाएक एक वहुत वड़ा दांतवाला हाथी उत्तरी पहाड़ से उतरकर सहारनपुर सर्कार के अंतर्गत ८४ परगना में आया। उक्त खाँ ने वादशाह को यह समाचार भेजा और वनरखों को हाथियों तथा दूसरे सामान के साथ उसे पकड़ने को नियत किया। उक्त खाँ ने उस हाथी को पकड़ कर वादशाह को भेंट किया और उसको खास-शिकार की पदवी मिली। २८वें वर्ष में उक्त पद और मुखलिसपुर की इमारत का प्रवंध इससे लेकर हुसेनवेग खाँ को दिया गया। ३०वें वर्ष में दैवात् एसालत खाँ का पुत्र महम्मद इब्राहीम मुख़लिसपुर की इमारतों को देखने के लिए नियत होकर जब वहाँ से लौटा और प्रार्थना की कि पहिले की तरह इमारत का काम नहीं हो रहा है तव इस पर उक्त खाँ दूसरी वार दोआव का फौजदार नियत हुआ और २०० सवार इसके मंसव में वढ़ाए गए तथा शीघ्रता से उसे भेजा कि उक्त इमारतों को इच्छा के अनुसार जल्दी से पूरा करे।

प्रगट रहे कि जमुनानदी के किनारे उत्तरी पहाड़ की तराई में, जो सिरमौर के पास है और दिल्ली से ४७ कोस दूर है सहारनपुर के अंतर्गत मुख़लिसपुर एक वस्ती है। यह अच्छे जलवायु और कई लाभदायक गुणों के लिए प्रसिद्ध है। राजधानी से सात दिन में वहाँ नाव से पहुँचा जा सकता है। २८वें वर्ष में इसे एक वड़ी इमारत वनाने को आज्ञा मिली थी और जो ३० वें वर्ष में पाँच लाख रुपया व्यय होने पर पूरी हुई। वादशाह ने वहाँ जाकर उसका नाम फ़ैज़ावाद रखा। ३० लाख दाम तहसील के मौजे अलग कर उसी के अंतर्गत कर दिए गए। दाराशिकोह के युद्ध में उक्त खाँ सेना के दा

भाग में था। इसके अनन्तर जब औरंगजेब विजयी होकर कुल साम्राज्य का अधिकारी हो गया तब अलीवर्दी ख़ाँ के पुत्रों पर उनकी योग्यता और कार्य-कौशल के विचार से तथा उसके पिता को शांत रखने के लिए, जो शुजाअ के साथ था, पूरी कृपा की। राज्य के आरंभ में गज़नफ़र ख़ाँ दोआब का फौजदार नियत हुआ। दूसरे वर्ष के अंत में मकरम ख़ाँ सफ़वी के स्थान पर जौनपुर का फौजदार नियत हुआ। ७ वें वर्ष में क़ुबाद ख़ाँ के स्थान पर ठट्टा का सूबेदार नियत हुआ और पाँच सदी १००० सवार बढ़ने से इसका मंसब तीन हज़ारी ३००० सवार का हो गया; जिसके १००० सवार दो अस्पा सेह अस्पा थे। १० वें वर्ष सन् १०७७ हि० (सन् १६६७ ई०) के अंत में ठट्टे में मर गया। इसका एक भाई हसन अली ख़ाँ [1]मुरादाबाद का फौजदार था और इसका छोटा भाई इस्लाम ख़ाँ सिविस्तान का फौजदार था। इन दोनों, इसके पुत्रों और संबंधियों को ख़िलअत मिला था।

---

१. आलमगीर नामा पृ० १०४८ पर गज़नफ़र ख़ाँ के बड़े भाई अलावर्दी ख़ाँ को मुरादाबाद का फौजदार लिखा है और छोटे भाई का असर्लां ख़ाँ नाम दिया है, इस्लाम ख़ाँ नहीं है।

गदाई कंबू, शेख

यह दिल्ली के शेख़ जमाली[1] का लड़का था, जो शेख समाउद्दीन सुहरवर्दी का शिष्य और स्थानापन्न था। इसका नाम जलाल था और कविता में उपनाम जलाली रखता था पर अपने गुरु के संकेत पर जमाली उपनाम रक्खा। आरंभ में यह सुलतान सिकंदर लोदी के पार्श्ववर्त्तियों में से था और योग्यता तथा विद्वत्ता के कारण इसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। यह कविता भी अच्छी करता था। इसके शैर बड़े आकर्षक होते थे। इसके एक शैर का उर्दू रूपांतर यों है।

तन पर है पैरहन तेरे कूचः के खाक का।
आँसू से है सद चाक व भी दामान तक मेरे॥

शेख विरक्ति तथा साधुवृत्ति से खाली नहीं था, इसलिए वह हज्ज करने चला गया। इसके अनंतर यात्रा करते हुए सुलतान हुसैन मिर्ज़ा के समय में हिरात आया। वहाँ मीर अली शेर से भेंट की और मौलवी अब्दुर्रहमान 'जामी'[2] से सत्संग किया। जब यह हिंदुस्तान आया तब बाबर के दरबार

---

१. जमाली का कुछ परिचय बदायूनी ने भी अपने ग्रंथ के भाग ३ पृ० ७६ पर दिया है।

२. ईरान का प्रसिद्ध सूफी कवि था। कहते हैं कि इससे मिलने के लिए जमाली नंगा मिट्टी पोत कर गया था और वहीं यह शैर पढ़कर खूब रोया, जिससे जगह-जगह मिट्टी बह जाने से दागें पड़ गईं।

में गया, और हुमायूँ ने इसकी बहुत प्रतिष्ठा की। कई बार बादशाह हुमायूँ ने इसके आश्रम को सुशोभित किया। सन् ९४२ हि० सन् १५३५-३६ ई० में यह मर गया। 'खुसरू हिन्दवूद:' से इसकी मृत्यु की तारीख निकलती है। सैरुल् आरिफ़ीन इसकी लिखी हुई है। यह पुरानी दिल्ली में जैनी मक़बरा में गाड़ा गया, जो उस मसजिद के दक्षिण ओर है, जिसे इसके पुत्र शेख़ गदाई ने बनवाया था।

कहते हैं कि इसने एक क़सीदा पैग़म्बर की प्रशंसा में कहा है और कई धार्मिक पुरुषों ने इस शैर को उस हज़रत से स्वीकृत हुआ माना है[1]। शैर का अर्थ—

जिसकी ज्योति के एक किरण से मूसा बेहोश हुआ।
उसे ही तू मुस्किराहट के साथ देखता है॥

शेखगदाई भी सहृदय था और बहुत-सी विद्याओं तथा विज्ञानों को जानता था। यह हिंदी कविता भी करता था और पढ़ता था। गुजरात प्रांत में यह सुख-संपत्ति के साथ रहता था। जब शेर खाँ के प्रभुत्व-काल में बैराम खाँ ग़रीबी की हालत में इस प्रांत में आया तब शेख ने उसके साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया और बड़ी उदारता दिखलाई। जब भाग्य ने हिंदुस्तान के साम्राज्य का अधिकार बैराम ख़ाँ के हाथ में सौंपा, तब अकबर की राजगद्दी के वर्ष में शेख़ गुजरात से आकर बैराम ख़ाँ के द्वारा बादशाही सेवा में भर्ती हो गया और इसे

---

१. कहते हैं कि स्वप्न में मुहम्मद ने प्रगट होकर इस शैर का समर्थन किया था।

सर्दार का पद मिला। इसका बैराम ख़ाँ से इतना मेल खा गया था कि वह राजकोष तथा देश का कोई भी काम विना इसकी सम्मति के नहीं करता था। यद्यपि इसका पद सदर का था तब भी इसकी मुहर आज्ञाओं के पृष्ठ पर होती थी। यह 'तसलीम' करने से बरी रक्खा गया और राजसभाओं में सभी शुद्ध सैयदों से बढ़कर स्थान पाता था। इसकी प्रतिष्ठा इतनी वढ़ गई थी कि यह सवार रहकर ही अकवर वादशाह का अभिवादन कर लेता था। परंतु शीघ्र ही सांसारिक चक्र ने इसे अपने स्थान से गिरा दिया और घमंड तथा अहंकार से, जो पुराने ऐश्वर्य-शालियों की जड़ खोद डालता है तव उसके लिये नए धनवान क्या हैं, इसने ग़रीबों तथा वृद्धों का कुछ विचार नहीं किया। जब बैराम ख़ाँ का प्रभुत्व टूट गया तब यह मेवात से अलग होकर अकवर की सेवा में पहुँचा। दरबार के सभी बड़े-छोटे इस बात को अच्छी तरह समझ गए थे कि बैराम ख़ाँ को वहकाकर इसी शेख ने यह कुल उपद्रव मचाया था, इसलिये साम्राज्य के स्तंभों ने इसको दंडनीय समझकर इसके विरुद्ध कहने सुनने में कुछ उठा न रक्खा पर अकबर ने अपनी उदारता और दयालुता से इसपर कृपा की परंतु वैसा विश्वास तथा सम्मान नहीं रहा। यह सन् ९७६ हि० (सन् १५६८-६९ ई०) में दिल्ली में मर गया।

ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ बहादुर ग़ालिबजंग

यह सुलतान मुइज्जुद्दीन का धाय-भाई था और कोसः अहमद बेग के नाम से प्रसिद्ध था। इसके पूर्वज तूरान के रहनेवाले थे। यह पहिले उक्त सुलतान की सेवा में था। जब उस सर्कार के माल विभाग का और देश का प्रबंध अली मुराद को सौंपा गया क्योंकि वह भी उक्त सुलतान का धाय-भाई था और जिसे उसके राज्य-काल में खानजहाँ बहादुर की पदवी मिली थी, तब इसने इस कारण रुष्ट होकर नौकरी त्याग दी। इसके अनंतर यह सुलतान अज़ीमुश्शान की सेवा में नियत होकर सुलतान महम्मद फर्रुखसियर के साथ बंगाल गया, जहाँ वह अपने पिता का प्रतिनिधि होकर नियुक्त हुआ था। जब बहादुर शाह के मरने पर अज़ीमुश्शान मारा गया और महम्मद फ़र्रुख़सियर ने राज्य के लिए लड़ने का निश्चय किया तब इसको अच्छा मंसब और ग़ाज़ीउद्दीन खाँ की पदवी देकर सैन्य एकत्र करने और सैनिकों को उत्साह दिलाने पर नियत किया। इसी बीच सैयद अब्दुल्ला खाँ और हुसेन अली खाँ के मिल जाने का निश्चय हुआ जो बड़े अनुभवी थे। बादशाह ने उक्त दोनों के संतोष के लिए इसको मंसब, पदवी और उपस्थिति से दूर रक्खा। अपने चचा जहाँदार शाह पर विजय प्राप्त करने के अनंतर जब वह अपने पक्षवालों को मंसब और पदवी बाँटने लगा तब यह भी मंसब बढ़कर छ हजारी ५००० सवार का होने, ग़ाज़ीउद्दीन

ख़ाँ बहादुर ग़ालिबजंग की पदवी पाने और तीसरा बख़्शी नियत होने से सम्मानित हुआ। इसके बाद जब बादशाह दोनों सैयदों से बिगड़ गया तब बादशाह का पक्ष लेने से इसकी अवनति हुई। फर्रुख़सियर के क़ैद होने पर क़ुतुबुल्मुल्क ने गुणग्राहकता से इसे अपना मित्र बनाया। जब हुसेन अली ख़ाँ दक्षिण जाने का निश्चय कर महम्मद शाह के साथ आगरे से रवाना हुआ तब क़ुतुबुल् मुल्क इसे साथ लिवाकर राजधानी लौट आया। जब समय ने पलटा खाया और आकाश ने नया तमाशा दिखलाया अर्थात् हुसेनअली ख़ाँ के मारे जाने का समाचार क़ुतुबुल्मुल्क को मिला तब इसको बुद्धिमान समझकर इसके घर जाकर इससे पगड़ी बदल और सुलतान रफ़ीउश्शान के पुत्र सुलतान इब्राहीम के सामने ले जाकर, जिसे गद्दी पर बैठाया था, इसको अमीरुल् उमरा की पदवी तथा मीर बख़्शी का पद दिलवाया। युद्ध के दिन यह उसकी हरावली में था। क़ुतुबुल्मुल्क के पकड़े जाने पर यह राजधानी चला गया। जब बादशाह दिल्ली पहुँचे तब अमीरुल् उमरा खानदौराँ को इसके घर भेजकर इसका दोष क्षमा कर दिया और अपने सामने बुलाकर पुरानी पदवी और मंसब पर बहाल किया। कई वर्ष बाद यह मर गया। यह अच्छा शीलवान सिपाही था और हिन्दुस्तान की पुरानी चाल रखता था। अपने समय के अच्छे सर्दारों से बराबरी का व्यवहार करता था।

कहते हैं कि जब महम्मदशाह ने इसके मंसब और पदवी की बहाली के लिए अमीरुल् उमरा ख़ानदौराँ से कहा तब उसने प्रार्थना की कि इससे पहिले इसकी पदवी ग़ालिबजंग थी और

अब शेर अफ़गन ख़ाँ को इज्ज़तुद्दौला बहादुर ग़ालिबजंग की पदवी दी जा चुकी है, इसलिए इसके विषय में क्या आज्ञा होती है। बादशाह ने कहा कि इनको सफ़दरजंग कर देना चाहिए। ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ ने जो उसी दिन सेवा में उपस्थित हुआ था, प्रार्थना की कि यह वृद्ध सेवक सामने है और इज्ज़तुद्दौला भी यहीं हैं इसलिए आज्ञा हो कि हम दोनों तलवार से युद्ध करें, जो जीते वही ग़ालिब जंग हो। बादशाह ने मुस्किराकर उसी को ग़ालिबजंग की पदवी दी और इज्ज़तुद्दौला को सफ़दर जंग की पदवी दी।

ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ बहादुर फ़ीरोज़जंग

इसका नाम शिहाबुद्दीन था और यह क़ुलीज ख़ाँ ख्वाजः आबिद[1] का बेटा था। १२वें वर्ष में यह तूरान से औरंगज़ेब की सेवा में पहुँच कर सेहसदी ७० सवार का मंसबदार हुआ। कहते हैं कि एक दिन वहाँ का शासक सुभानक़ुली ख़ाँ तरबूज़ के खेतों की सैर को गया था और वहीं मीर शिहाबुद्दीन ने ख्वाजः याकूब जुएबारी तथा रुस्तम बे अतालीक से कहा कि मेरे पिता ने मुझे हिन्दुस्तान बुलाया है पर ख़ाँ छुट्टी नहीं देते। सुयोग आ गया था इसलिए ये दोनों भले आदमी ख़ाँ के पास गए और इसे छुट्टी दिलवा दी। ख़ाँ ने बुलवाकर फ़ातिहा पढ़ा और कहा कि हिन्दुस्तान जाओ, वहाँ तुम एक बड़े आदमी हो जाओगे। दैवयोग से इसका ऐश्वर्य इतना बढ़ा कि बलख़ और बुख़ारा के सुलतान भी इसके सामने कुछ नहीं थे। २३वें वर्ष में जब बादशाह उदयपुर के महाराणा को दंड देने के लिए वहाँ गया था और हसन अलीख़ाँ बहादुर आलमगीरशाही का ठीक पता नहीं मिल रहा था, जो राजा का पीछा करता हुआ पहाड़ों में चला गया था तब अर्द्धरात्रि में बादशाह ने मीर शिहाबुद्दीन को बुलवा कर, जो उस समय पहरे पर था, उसका पता लगाने भेजा। उस अनजान प्रांत के मार्गों की कठिनाइयों

1 देखिए इसी भाग का ३३ वाँ शीर्षक।

को ध्यान में न लाकर और यात्रा के कष्ट का विचार न करके यह तुरंत रवाना हो गया और दो दिन के बाद उक्त खाँ का प्रार्थनापत्र लाकर पेश किया। इस अच्छी सेवा के कारण इसकी उन्नति हुई और खाँ की पदवी तथा अन्य कृपाएँ मिलीं। इसके अनंतर दुर्गादास, सोनिंग[1] तथा अन्य विद्रोही राठौड़ों को दंड देने के लिए ससैन्य सिरोही भेजा गया। जब वे विद्रोही शाहजादा महम्मद अकबर को मिलाकर बलवे के मार्ग पर ले जा रहे थे, उस समय शाहजादे ने मीरक ख़ाँ को, जो बादशाह के पहचाने हुए सेवकों में से था, ख़ाँ के पास भेजा कि कृपा की प्रतिज्ञा कर उसे अपनी ओर मिला ले। खाँ राज-भक्ति और सुविचार के कारण मीरक खाँ के साथ दो दिन में साठ कोस चलकर बादशाह के पास पहुँच गया, जिससे इसकी प्रशंसा हुई और यह दारोगा अर्ज-मुकर्रर नियत हुआ। २६वें वर्ष में जब बादशाह दक्षिण गए तब यह जुनेर के पास उपद्रवियों को दंड देने भेजा गया। इसकी अनुपस्थिति में इसे गुर्जबरदारों का दारोगा नियत कर सैयद ओग़लान को इसका नायब बना दिया। इसने शत्रु को कड़े धावे कर परास्त कर दिया था इसलिए २७वें वर्ष में इसे ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ बहादुर की पदवी मिली। २८ वें वर्ष में शम्भा जी के निवास-स्थान राहिरी दुर्ग को विजय करने भेजा गया। इसने वहाँ

1. दूसरा पाठ सोतिक भी मिलता है। महाराज यशवंतसिंह की मृत्यु पर जब औरंगजेब मारवाड़ पर अधिकार कर लेना चाहता था उस

पहुँचते ही आग लगा दी और बहुत से शत्रुओं को मार कर विजय प्राप्त किया। इसे फ़ीरोज़जंग की पदवी और डंका मिला। बीजापुर के घेरे के समय जब शाहज़ादा मुहम्मद आजमशाह की सेना में ऐसा अकाल पड़ रहा था कि वहाँ ठहरना संभव नहीं था तब फ़ीरोजजंग माही पाकर बहुत सी रसद वहाँ तक पहुँचाने पर नियत हुआ। मार्ग में एकाएक वह सकरिया के ज़मींदार पैदवा[1] नायक द्वारा गुप्त रूप से बीजापुर की सहायता को भेजे गए रसद के काफिले पर जा पड़ा, जिसके साथ ६००० पैदल सिपाही थे। इसने उन सब को मार डाला और शाहज़ादा की सेना में शांति पहुँचाई। औरंगजेब ने बीजापुर के विजय को, जिसकी तारीख 'सद्दे‌सिकंदर गिरफ्त' (सिकंदर की दीवाल को ले लिया, सन् १०९८हि०, १६८७ ई०) से निकलती है, इसके नाम लिखा। औरंगजेब ने अपने हाथ से यह वाक्य लिखकर वाक़ियानवीस के पास भेजा कि उसे दफ्तर में दर्ज कर ले। अर्थात् 'यह निष्कपट ग़ाज़ीउद्दीन खाँ बहादुर फीरोजजंग फरजंद द्वारा विजय हुआ।' इसके अनंतर इसने इब्राहीमगढ़ उर्फ ऐकर को विजय किया, जिसका नाम बाद को फ़ीरोज़गढ़ रखा गया। हैदराबाद के

---

१. इलि० डाउ० जि० ७ पृ० ३७७ पर सागर का भूम्याधिकारी पेम नायक लिखा है, जिसका भतीजा परया नायक था। मआसिरे आलमगीरी में पाम नायक तथा पिडिया नायक नाम दिया है। सकरिया का ठीक उच्चारण सागर है, जो कृष्णा तथा भीमा नदी के बीच में वाकिनकेरा के आठ कोस उत्तर-पूर्व है।

घेरे में इसने बहुत प्रयत्न किया और घायल हुआ। इसके विजय के अनंतर इसका मंसब सात हजारी ७००० सवार का हो गया। इसके अनंतर इसने अदौनी का दृढ़ दुर्ग घोर युद्ध के अनंतर आदिलशाह के एक बड़े अफसर सीदी मसऊद बीजापुरी से विजय कर लिया, जिसका नाम बाद को इम्तियाज़गढ़ पड़ा और ३२ वें वर्ष में यह दुर्ग तथा इसके संबंध की भूमि बादशाही राज्य में मिला ली गई। इसी वर्ष यह शंभाजी को दमन करने के लिए बीजापुर से भेजा गया। महामारी के पड़ने के कारण बहुतों का, जो मृत्यु से बच गए थे, दिमाग बिगड़ गया और आँख, जिह्वा और कान बेकार हो गए। खाँ फ़ीरोज़जंग की आँखों में हानि पहुँची और यह अंधा हो गया। यद्यपि नियमानुसार[1] यह दरबार नहीं गया पर इसके सेनापतित्व और सैन्य-संचालन में विभिन्नता नहीं पड़ी। ४२वें वर्ष में संताजी घोरपदे[2], जिसने मुसलमानों की बहुत सी सेना को परास्त कर दिया था और अनेक बादशाही सर्दारों को मार डाला तथा कैद कर लिया था और जो जिंजी विजय होने के अनंतर सितारा की ओर भाग गया था, पुराने वैमनस्य के कारण धन्ना जी यादव से पूर्णता परास्त होकर बड़ी दुर्दशा में

१. जहाँगीर ने यह नियम बना दिया था कि दरबार में अंधे लोग न आवें।

२. इलि० डाउ० जि० ७ पृ० ३५९-६० पर संता घोरपदे के मारे जाने का वृत्तांत विस्तार से दिया गया है, जो अंश खफी खाँ के इतिहास से लिया गया है।

मारा फिरता था। दैवात् नागोबा मिया[1] मरहठा ने शत्रुता के कारण उसका शिर काट लिया और वह उसे धन्ना यादव के यहाँ ले जाना चाहता था पर मार्ग में वह फ़ीरोज़जंग के सैनिकों के हाथ में पड़ गया। ख़ाँ ने ख्वाजः बाबाय तूरानी के हाथ उस शिर को दर्बार भेज दिया, जहाँ से इस खुशखबरी के उपलक्ष में उसे खुशखबर ख़ाँ की पदवी मिली। फ़ीरोज़जंग को हजारों धन्यवाद मिला और खूब प्रशंसा हुई। ४३ वें वर्ष में यह देवगढ़ उर्फ इस्लामगढ़ को लेने के लिए नियत हुआ, जिसे इसने विजय किया था। इसके अनंतर यह इस्लामपुरी में बादशाही निवासस्थान की रक्षा पर नियत हुआ। जिस समय बादशाही सेना खेलना विजय कर बहादुर गढ़[2] को लौटी उस समय फ़ीरोज़जंग की व्यूह बनाई हुई सेना का बादशाह ने निरीक्षण किया, जो चार कोस में फैली हुई थी।

कहते हैं कि अबतक किसी सर्दार ने इतने ऐश्वर्य, तैयारी और सामान के साथ अपनी सेना का निरीक्षण नहीं कराया था। इसने हर एक प्रकार का बहुत सा सामान भेंट दिया। बादशाह ने इस निरीक्षण के अनंतर इसका बहुत सा तोपख़ाना जब्त कर लिया और शाहजादा बेदार बख़्त को लिखा कि तुम दूना वेतन पाने पर भी इतना सामान, तोप, गजनाल आदि नहीं रखते, जितना फीरोजजंग तैयार रखता है या उसे तैयार न रखना चाहिए। ४८ वें वर्ष[3] फीरोजजंग ने नीमा सीधिंया का पीछा

१. ग्रांटडफ के अनुसार शुद्ध नाम नागोचा मनाई है।

२. इसका पुराना नाम वीर गाँव है। इलि० डाउ० जि ७ पृ० ३८३

३. भूल से मूल में आठवां वर्ष लिख गया है।

करने के लिए मालवा तक बाग न रोका और बहुत प्रयत्न किया। इसे सिपहसालार की पदवी मिली पर किसी कारण वह रोक भी दी गई। औरंगजेब की मृत्यु के समय यह बरार की सूबेदारी करते हुए एलिचपुर में रहता था। महम्मद आज़मशाह से यह मित्रता और संबंध रखता था परंतु उक्त शाहजादा ने अपने घमंडी स्वभाव के कारण इसको अपनी ओर नहीं मिलाया और न ऐसे सर्दार को साथ लिया।

कहते हैं कि जिस समय महम्मद आज़मशाह अहमद नगर में गद्दी पर बैठने के अनंतर आगे बढ़ा तब ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ औरंगाबाद के पास सेवा में उपस्थित हुआ। उससे पूछा कि तुम्हारी राय में इस समय क्या करना चाहिए? उसने प्रार्थना की कि इस समय औरंगज़ेब के कार्य का अनुकरण करना चाहिए और स्त्रियों को दौलताबाद में छोड़ देना चाहिए। साथ ही उसने कहा कि बादशाही सेना पूरी तौर से सुसज्जित नहीं है इसलिए दो महीने का वेतन महल के कोष से देना चाहिए कि वह चढ़ाई का सामाना ठीक कर ले। साथ ही सेना फ़र्दापुर मार्ग से न जाकर देवलघाट से जाय, जिसमें ख़ाँ फ़ीरोज़जंग भी साथ हो सके। महम्मद आजमशाह ने अहंकार से भर कर कहा कि 'स्त्रियों को उस हालत में छोड़ जाना उचित होता जब कि दारा शिकोह के समान शत्रु का सामना करना होता। वह मुअज्ज़म के स्वभाव को जानता है और उसे अपने आदमियों पर पूरा भरोसा है। बादशाही आदमियों को सिवाय दुआ और मुबारकबादी देने के और कोई काम नहीं है। सीधे मार्ग को एक अंधे के लिए छोड़ना उचित नहीं और उससे क्या हो सकता है?' वास्तव में

देखा जाय तो उससे बहुत बड़ी गलती हुई कि उसने फ़ीरोज़जंग ऐसे सर्दार को अपने साथ न रखा, जिसके पास काफी सेना थी। वह सेना एकत्र करने में एक ही था, विशेष कर मुग़ल और तूरानी सभी उसका अनुगमन करते। जब महम्मद आज़मशाह नर्वदा के पार उतरा तब उसने फ़ीरोज़जंग को लिखा कि वह बरार से बुरहानपुर जाकर वहीं ठहरे।

बहादुर शाह की राजगद्दी पर फ़ीरोज़जंग गुजरात का सूबेदार नियत हुआ। चौथे वर्ष अहमदाबाद में इसकी मृत्यु हुई।[1] इसके शव को दिल्ली ले जाकर अजमेरी फाटक के पास इसके बनवाए हुए मक़बरे तथा ख़ानेकाह में गाड़ दिया। अपने गुणों के कारण यह तूरानी सर्दारों में अद्वितीय था। यह अच्छे स्वभाव का, सम्मानित, भाग्यवान, कुशल और ऐश्वर्यशाली था। पहिले के बादशाहों में ऐसा ही कभी हुआ होगा कि एक अंधे को सेनापति रखा हो। यह अच्छा सम्मतिदाता और अनुभवी था। कूच करते समय या दीवान में वह इन्हीं नियमों का पालन करता था। ऐसा प्रसिद्ध है कि औरंगज़ेब ने इसकी गुप्त इच्छाओं को जानकर हकीमों को, जो इसकी आँख की दवा कर रहे थे, संकेत कर दिया था कि इसे अंधा कर दें, पर यह बात ठीक नहीं मालूम होती। औरंगज़ेब अत्यंत क्रोधी और ईर्ष्यालु था। यदि उसके ऐसे विचार होते तो वह कभी इसे ऐसी हालत में न छोड़ता। फ़ीरोज़जंग को स्वामिभक्ति वह अच्छी तरह से जानता था। यहाँ तक कि जब फ़ीरोज़जंग ने

१. सन् १७१० ई० में इसकी मृत्यु हुई।

दक्षिण के विद्रोहियों को दंड देने में दो बार ढिलाई की और किसी ने वैमनस्य के कारण यह बात बादशाह से कह दी तब उत्तर में बादशाह ने लिखा कि 'शोक है कि खाँ फ़ीरोज़जंग कहाँ से कहाँ पहुँच गया, जो वह काफ़िरों का पक्ष लेता है और जिससे रोजद्रोह भी होकर दूना कुफ्र हो जाता है।'

आरंभ में बादशाह की आज्ञानुसार इसने अल्लामी सादुल्ला खाँ की पुत्री[1] से विवाह किया था। उसकी मृत्यु पर इसने अपने साले हिफ़्ज़ुल्ला खाँ उर्फ मियाँ खाँ की दो पुत्रियों से क्रमशः शादी किया। इन दोनों से कोई संतान न थी।

१. सादुल्ला खाँ की पुत्री से इसे एक पुत्र हुआ, जो वर्तमान हैदराबाद राज्य का संस्थापक निजामुल्मुल्क आसफजाह था। यहाँ मूल से उल्लेख नहीं हुआ है। देखिए मआसिरुल् उमरा फारसी जि० ३ पृ० ८३७।

ग़ाज़ीउद्दीन खाँ बहादुर फ़ीरोज़जंग अमीरुल् उमरा

यह निज़ामुल्मुल्क आसफजाह का पुत्र और नासिरजंग का सहोदर भाई था। इसका वास्तविक नाम मीर महम्मद पनाह था। यह वजीर क़मरुद्दीन खाँ का दामाद था। इसके पिता ने इसे छोटी अवस्था ही में महम्मदशाह के दर्बार में छोड़ दिया था। वहीं पालित होकर पहिले अहदियों का बख्शी नियत हुआ। सन् ११५३ हि० (सन् १७४० ई०) में जब इसका पिता खानदौराँ[1] की मृत्यु पर मीर बख्शी नियत होने के बाद दक्षिण चला गया, तब यह उसका प्रतिनिधि होकर उस पद पर काम करता रहा। इसके पिता की मृत्यु पर अहमदशाह के राज्यकाल में लगभग तीन साल तक सादात खाँ मीर बख्शी नियत रहा। इसके बाद वह पद और अमीरुल् उमरा की पदवी ग़ाज़ीउद्दीन को मिली। नासिर जंग के मारे जाने पर दक्षिण के शासन की इच्छा इसकी हुई परंतु उसी समय जब दैवात् शाह दुर्रानी का राजदूत आया तब सफदरजंग बहादुर बादशाह के संकेत पर मल्हार-राव होल्कर को बहुत सा धन देने का वादा कर साथ लिवा लाया। इसके पहुँचने के पहले जावेद खाँ ने शाह के संदेश को स्वीकार कर राजदूत को विदा कर दिया। सफ़दर जंग फेर में

१. ख्वाजा आसिम सन् १७३९ ई० में नादिरशाह की लड़ाई में मारा गया। देखिए मआसिरुल् उमरा हिंदी भा० २ पृ० ४२३–२७।

पड़ गया कि होल्कर का क्या उपाय करे? अमीरुल् उमरा ने होल्कर से यह प्रबंध किया कि दक्षिण की सूबेदारी अमीरुल्-उमरा के (अर्थात् अपने) नाम निश्चित कराने में वादा किए हुए धन के बदले सहायता करे।[1] दर्बार से भी दक्षिण की सूबेदारी और निज़ामुल्मुल्क की पदवी पाकर यह सम्मानित हुआ। इसके बाद अपनी ओर से खानदेश प्रांत की सनद मरहठों के नाम मुहर कर दिया और उनकी सहायता की आशा पर ठीक बरसात में मालवा पारकर बुरहानपुर पहुँचा। यहाँ से औरंगाबाद जाकर सत्रह दिन तक वहाँ ठहरा रहा। सन् ११६५ हि० (सन् १७५२ ई०) में यह एकाएक मर गया। यह खाकर सोने के लिए भीतर गया और बाहर निकल कर कै करते हुए मर गया। यह अच्छा विद्वान था और अंत में इसे काफ़ी साहस भी हो गया था। इसके पुत्र ग़ाज़ीउद्दीन खाँ तृतीय को एमादुलमुल्क की पदवी मिली और उसका वृत्तांत अलग दिया गया है।[2]

१. गाजीउद्दीन खाँ ने वजीर सफदरजंग से यह तै कर लिया था कि यदि उसे दक्षिण की सूबेदारी की सनद मिल जायगी तो वह मरहठों को जो देना है उसे चुका देगा। (सियारुल् मुताखिरीन भाग ३ पृ० ३२७)

२. देखिए मआसिरुल् उमरा हिंदी भाग २ पृ० ५४६–५१।

ग़ाज़ी ख़ाँ बदख़्शी

इसका नाम क़ाज़ी निज़ाम था। इसने मुल्ला एसाम के पास शिक्षा प्राप्त की। बुद्धिमानी और विद्वत्ता में अपने समय में एक ही था। यह शेख़ हुसेन ख़्वारज़मी का भी शिष्य था और सूफ़ीमत में अच्छी योग्यता रखता था। तीव्र बुद्धि तथा कल्पना शक्ति के कारण योग्यता में नाम पैदा कर एक सर्दार हो गया। पहिले बदख़्शाँ के शासक मिर्ज़ा सुलेमान के दर्बार में जाकर मुसाहिब हो गया और उसके अच्छे सर्दारों में गिना जाने लगा। इसे काज़ी ख़ाँ की पदवी मिली। जिस वर्ष हुमायूँ बादशाह की मृत्यु हुई और मिर्ज़ा सुलेमान ने अवसर पाकर काबुल को घेर लिया, उस समय अनुभवी सर्दार मुनइम-ख़ाँ दुर्ग में जा बैठा और सहायता के लिए हिंदुस्तान दूत भेजा। जब यह घेरा बहुत दिन तक चला तब मिर्ज़ा ने क़ाज़ी ख़ाँ को मुनइम ख़ाँ के पास भेजकर कपट-पूर्ण संदेश कहलाया। उक्त ख़ाँ ने क़ाज़ी को कुछ दिन अपनी रक्षा में रख-कर प्रतिदिन अनेक प्रकार के भोजन और मेवे मजलिस में खिलाए, जैसा कि बदख़्शियों को शांति तथा अधिकता के समय भी खिलाने का साहस न पड़ेगा। क़ाज़ी को निश्चय हो गया। कि दुर्ग की विजय ईश्वराधीन है। बाहर आने पर उसने मिर्ज़ा सुलेमान से कहा कि दुर्ग को विजय करने का प्रयत्न ठंढे लोहे को टेढ़ा करना है। निरुपाय होकर मिर्ज़ा संधि कर लौट

गया। इसके अनंतर जब क़ाज़ी काबुल पहुँचा तब मिर्ज़ा महम्मद हकीम ने इसका अच्छा सन्मान किया और इसे अपना दरबारी बना लिया। १९वें वर्ष में यह हिन्दुस्तान की ओर आकर खानपुर पड़ाव पर अकबर की सेवा में पहुँचा, जो जौनपुर से लौट रहा था। इसे कमरबंद, जड़ाऊ तलवार, अच्छा खिलअत, पाँच सहस्र रुपया पुरस्कार और परवानची (परवानों का लेखक) का पद मिला। भाग्यवान तथा अनुभवी होने के कारण शीघ्र ही यह बादशाह का कृपापात्र हो गया और एक हजारी मंसबदार हुआ। कई युद्धों में सेनाध्यक्ष होकर विजय प्राप्त करने से ग़ाज़ी खाँ की पदवी पाई। २१वें वर्ष में राजा मानसिंह के साथ राणा के युद्ध में बाएँ भाग का अध्यक्ष रहा। जब शत्रु के बहादुरों ने बड़े वेग से इस भाग पर धावा कर सेना को भगा दिया तब बहुत से बहादुर भाग गए परंतु ग़ाज़ी ख़ाँ लौटकर हरावल में पहुँचा और युद्ध करता रहा। इसके अनंतर अवध की जागीरदारी में विहार प्रांत के विद्रोही सर्दारों को दंड देने में बादशाही सेना के साथ बड़ी वीरता दिखलाई, जिन्होंने उक्त प्रांत में मूर्खता तथा अविचार से बलवा कर रखा था। इस कार्य से इसकी विशेष प्रशंसा हुई। २९वें वर्ष सन् ९९२ हि०[1] सन् १५८४ ई० में सत्तर वर्ष की अवस्था में अवध कस्बे में मर गया। इसने विश्वास योग्य पुस्तकें लिखीं।[2] शेख अल्लामी ने इसके वृत्तांत में लिखा है

---

१. मूल में ९९० भूल से लिखा गया है।

२. अकबरनामा जि० ३ पृ० ४३६ और बदायूनी भा० ३ पृ० १५२ में विवरण दिया है।

कि इसकी वीरता इसकी विद्वत्ता को बढ़ाती थी और तलवार को क़लम की पदवी बढ़ानेवाला बनाया था। अनेक विद्याओं को जानते हुए भी पवित्र सूफियों की प्रथा पर प्रार्थना करता था और इस प्रकार बंधन रखते हुए भी यह स्वतंत्र चेता था। इसकी आँखें हमेशा रोती रहती थीं और हृदय जलता रहता था। कहते हैं कि यह पहिला मनुष्य था, जिसने अकबर के सामने सिज्दः करने की प्रथा निकाली थी। विनोद में कहा जाता है कि अपने समय के एक विद्वान मुल्ला आलम काबुली ने आवेश से कहा था कि 'क्या कहें कि मैंने इससे पहिले आरंभ नहीं किया।'

पुराने ग्रंथों के लेखकों से मालूम होता है कि पुराने धर्मों में यह प्रथा जारी थी कि धर्म-प्रवर्तकों और सिद्ध पुरुषों के आगे नम्रता तथा अधीनता दिखलाने के लिए, न कि पूजन के लिए, शिर भूमि पर घिसा जाता था। हूरों (अप्सराओं) का आदम का सिज्दः और यूसुफ के पिता तथा भाइयों का उसका सिज्दः इसी प्रकार का था। अगले समय में यह प्रथा सलाम के रूप में चलती थी। जब इस्लाम के सूर्य के प्रकाश में दूसरे धर्मों के दीप बुझ गए तब सलाम करने और हाथ मिलाने की प्रथा निकली। साम्राज्य का अधिष्ठाता और नियम तथा रस्मों के आविष्कारकर्ता अकबर ने सलाम करने की कई चालें निकालीं। हाथ माथे पर रखकर शिर झुकाने का कोर्निश नाम रखा अर्थात् शिर को, जो ज्ञान और विचार का जीवन है, हाथ में लेकर अभिवादन करता है और अपने को अधीनता स्वीकार करने को तैयार करता है। जब कोई हथेली को भूमि पर

रखकर धीरे धीरे उठता है और सीधे खड़े होकर हथेली शिर पर रखता है तब इसको तस्लीम कहते हैं। विदाई, सेवा, मंसब, और जागीर की नियुक्ति तथा खिलअत, हाथी, घोड़ा मिलने के समय तीन बार तस्लीम करना पड़ता था। अन्य अवसरों पर केवल एक ही को काफी मान लेता था। इसके अनंतर चापलूसों और पार्श्ववर्तियों के कहने सुनने पर उसने सिज्दः की प्रथा चलाई परंतु जनसाधारण के ताने के डर से दरबार आम में यह प्रथा नहीं रखी और इसे केवल खास मजलिस में जहाँ चुने हुए लोग रहते थे, यह किया जाता था। जैसे, जब किसी अमीर को बैठने की आज्ञा मिलती थी तब वह सिज्दः करता था। जहाँगीर के समय में भी ध्यान न देने और लापरवाही से यह कुप्रथा चलती रही। जब शाहजहाँ गद्दी पर बैठा तो जो पहिला हुक्म उसने दिया था वह सिज्दः को मना करना था कि सिवाय ईश्वर के यह भारी अभिवादन और किसी के लिए उपयुक्त नहीं है। सेनापति महाबत खाँ ने प्रार्थना की[3] कि ख़ुदा के अन्य सभी बन्दों का जो अभिवादन होता है, उससे भिन्न अभिवादन बादशाह का होना चाहिए और इसलिए सिज्दे के स्थान पर 'ज़मींबोस' निश्चित किया जाना चाहिए, जिससे स्वामी और सेवक तथा बादशाह और प्रजा का संबंध दृढ़ हो। इस पर यह निश्चित हुआ कि दोनों हाथ ज़मीन पर लगाकर उल्टे हाथ से सलाम करे। ज़मींबोस भी सिज्दे का रूप था इसलिए उसको भी बादशाह ने दसवें वर्ष में बंदकर चार तसलीम की प्रथा

---

१. बादशाहनामा भाग ३ में इसका विवरण दिया है।

चलाई। जिस समय बादशाह के सामने या उसकी अनुपस्थिति में किसी पर कृपा होती थी तो वह चार तसलीम करता था। सैयदों, मौलवियों और शेखों की सेवा के समय नियमित सलाम व विदा के समय फ़ातहा नियत था।

मीर हिसामुद्दीन ग़ाज़ी ख़ाँ का योग्य पुत्र था। यह अपने समय का एक प्रसिद्ध शेख़ था। अकबर के समय एक हज़ारी मंसब तक पहुँचकर दक्षिण में नियत हुआ। वहाँ वह ख़ानख़ानाँ का प्रिय हो गया। एकाएक ठीक जवानी में वह ईश्वर की ओर खिंच गया और माया छोड़ दी। उसने ख़ानख़ानाँ से कहा कि 'संसार छोड़ देने की मेरी इच्छा है, अगर मेरी प्रार्थना न स्वीकार की जायगी तो मैं पागल हो जाऊँगा। आप दर्बार को लिख कर मुझे दिल्ली रवाना कर दीजिए, जिससे अपनी बची हुई अवस्था सुल्तानुल् मशायख़ की मज़ार में व्यतीत करूँ।' ख़ान-ख़ानाँ ने उसे बहुत समझाया कि इस पागलपन से दूर रहो पर उसने नहीं माना। दूसरे दिन नंगा होकर तथा शरीर में मिट्टी मलकर गली और बाज़ार में घूमने लगा। जब बादशाह ने यह समाचार सुना तब दिल्ली जाने की उसे छुट्टी मिल गई। तीस वर्ष तक यह बड़े संयम और नियम के साथ रहा। यद्यपि यह बहुत सी विद्यायें जानता था, परंतु सबको भुलवा दिया। क़ुरान के मनन करने और सूफ़ी विचार मानने में इसने जीवन बिताया। ख्वाजा बाक़ी बिल्लाह समरकंदी से, जिसका जन्म काबुल में हुआ था और जो दिल्ली में मरा था, शिष्य बनाने की आज्ञा ली। सन् १०४३ हि० सन १६३३-३४ ई० में यह मरा। इसकी स्त्री शेख अबुल्फ़ज़ल की बहिन थी। उसने भी पति के कहने

पर अपना गहना और धन दर्वेशों को बाँट दिया। कहते हैं कि प्रति वर्ष १२०००) रु० शाह हिसामुद्दीन के ख़ानक़ाह के व्यय के लिए भेजती थी।

ग़ाज़ीबेग तरख़ान, मिर्ज़ा

यह ठट्टा के शासक मिर्ज़ा जानी बेग तरख़ान का लड़का था। जब उक्त मिर्ज़ा बादशाह के साथ रहते हुए बुर्हानपुर में मर गया और अकबर ने मिर्ज़ा ग़ाज़ी को गुप्तरूप से कृपा करके वह प्रांत दे दिया तब मिर्ज़ा ने अपने पूर्वजों के मसनद पर बैठकर बहुत सेना इकट्ठी की।[1] ख़ुसरू ख़ाँ चरकिस, जो उस वंश का एक सौ वर्ष पुराना मंत्री तथा सम्मति दाता था, दूसरे विचार में पड़ा। अकबर ने सईद ख़ाँ को उसके पुत्र सादुल्ला ख़ाँ के साथ उस प्रांत को ख़ाली कराने के वास्ते नियत किया। मिर्ज़ा ने अच्छी नीयत से भक्कर में आकर सईद ख़ाँ से भेंट किया और उसके साथ सत्रह वर्ष की अवस्था में बादशाह की सेवा में पहुँचा। ठट्टा उसे बहाल रहा। जब जहाँगीर हिन्दुस्तान का बादशाह हुआ तब इसका भाग्य और भी चमका। इसे मुलतान प्रांत भी साथ में मिला और फ़रज़ंद की पदवी के साथ सात हजारी मंसब भी इसने पाया। जब हिरात के अध्यक्ष हुसेन ख़ाँ शामलू ने कंधार दुर्ग घेर लिया, तब मिर्ज़ा अच्छी सेना के साथ वहाँ नियत हुआ। इसके अनंतर कंधार की अध्यक्षता भी मिर्ज़ा

---

१. ग़ाज़ी बेग के चाचा मिर्ज़ा ईसा तरख़ान ने सिंध की गद्दी के लिए झगड़ा किया पर खुसरू ख़ाँ की सहायता से यही गद्दी पर बैठा। देखिए मआ० उमरा हिंदी भाग २ पृ० ५०६, ब्लौकमैन आईन अकबरी भा० १ पृ० ३६३।

को मिली। इसने अपने साहस और अच्छे व्यवहार से हिरात के उपद्रवियों में अच्छा नाम पैदा किया। शाह अब्बास से भी इसने अच्छा पत्र व्यवहार किया। कहते हैं कि शाह ने दो बार खिलअत भेजा। सन् १०१८ हि०, सन् १६०९ ई० में तीन चार दिन बीमार रहकर पचीस वर्ष की अवस्था में मर गया।[1] मृत्यु की तारीख 'ग़ाज़ी' शब्द से निकलती है। आदमियों ने इसका दोष लुत्फ़ुल्ला बहाई ख़ाँ पर लगाया, जो मिर्ज़ा का मुसाहिब व मंत्री था तथा इस कारण भी कि उसके पिता खुसरू ख़ाँ चरकिस पर मिर्ज़ा की कृपा नहीं थी।[2]

मिर्ज़ा ग़ाज़ी बेग बहुत सावधान आदमी था और कवियों

---

१. तुज़ुके जहाँगीरी में ७ वें वर्ष अर्थात् सन् १०२१ हि० सन् १६१२ ई० में मृत्यु लिखी है पर तब तारीख 'ग़ाज़ी' अशुद्ध हो जाएगी। रयू भी ९५० ए पर यही सन् लिखता है। तारीखे ताहिरी में लिखा है कि मिर्ज़ा ग़ाज़ी के १६ वें वर्ष में उसका पिता मरा। अकबरनामा में सन् १६०१ ई० में उसकी मृत्यु लिखी है। ग़ाज़ी बेग की मृत्यु २८वें वर्ष सन् १०२१ हि० में लिखी है। मआसिरुल् उमरा भाग १ पृ० ४०१ (फारसी) पर लिखा है कि जहाँगीर के ७वें वर्ष में मिर्ज़ा ग़ाज़ी के स्थान पर बहादुर ख़ाँ उज़बक काबुल का शासक नियत हुआ।

२. प्रेसीडेंट वान डेन ब्रोएक (१६२८ ई०) लिखता है कि अकबर ने जानी के पुत्र ग़ाज़ी को उसकी किसी बात पर क्रुद्ध होकर मारने के विचार से दो गोलियाँ बनवाई, जिनमें एक विषाक्त थी। भूल से वह स्वयं इसी को खागया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। पर यह बात भ्रांति मात्र है। स्यात् मिर्ज़ा ग़ाज़ी ने स्वयं लुत्फ़ुल्ला ख़ाँ के साथ यह व्यवहार किया हो, जैसा तारीखे ताहिरी से ज्ञात होता है।

का सत्संग रखता था। 'वक़ारी' उपनाम से स्वयं भी कविता करता था। कहते हैं कि इसी उपनाम का एक कवि कंधार में था। मिर्ज़ा ने १००० रु०, खिलअत और घोड़ा देकर यह उपनाम उससे क्रय कर लिया था क्योंकि यह इसके पिता के उपनाम हलीमी से मिलता था। मिर्ज़ा गाने और तम्बूरा बजाने में अद्वितीय था। सब साज़ बजाना अच्छी तरह जानता था। मुल्ला मुरशिद ने कहा है, क़िता—

यदि गाना गाता है तो शांति आती है।
संकेत है जो कहता हूँ कि आता है।
यहाँ तक घावों के चारों ओर फिरता है।
लौटकर तंबूरा से बाहर आता है।

कहते हैं कि कंधार में मिर्ज़ा की मजलिस गुणियों से भरी रहती थी, जैसे मुल्ला मुर्शिद यज्दजुर्दी, तालिब आमिली, मीर नेअमतुल्ला वासिली और कहानी पढ़ने वाला मुल्ला असद। कहते हैं कि जब फ़ग़फ़ूरी गीलानी ईरान से हिंदुस्तान की ओर जाने के विचार से कंधार पहुँचा तब मिर्ज़ा ने बड़े सन्मान से उसे अपने यहाँ रखा। अन्य सम्मानित व्यक्ति विशेषकर मुल्ला मुर्शिद और असदी ने उसके शेरों में कुछ त्रुटियाँ दिखलाई थीं। इससे दुखी होकर बिना छुट्टी लिए वह लाहौर चल दिया। मिर्ज़ा ने दुःख प्रकट कर स्वयं पत्र लिखा और मुल्ला मुर्शिद तथा असदी से भी क्षमा-याचना का पत्र लिखवाया कि स्यात् वह लौट आवे। फ़ग़फ़ूरी ने उत्तर में लिखा, क़िता (अर्थ)—

उस सड़े शव पर जिसपर दो गिद्ध लड़ रहे हों।
शोक है कि किसी का दामन उससे लिथड़े।
गदहे को सींघ की इच्छा अधिक इच्छा है।
पर गदहे के एक सिर पर गदहे के दो कान बहुत हैं।

मिर्ज़ा अपने पिता की चाल पर शराब से बहुत प्रेम रखता था, दिन रात उसी काम में बिताता था और उसकी आदत इस प्रकार की हो गई थी कि हर रात को एक स्त्री लाई जाती थी और फिर वह उसका मुँह नहीं देखता था। इसीसे बहुत दिनों तक ठट्टा नगर में हर एक बदकार स्त्री अपना संबंध मिर्ज़ा से बतलाया करती थी।

ग़ालिब ख़ाँ बीजापुरी

यह आरंभ में बीजापुर के आदिलशाह का नौकर था। यह औरंगाबाद प्रांत के अंतर्गत परिंद: दुर्ग का अध्यक्ष था, जो उस समय तक उक्त शाह के अधीन था। औरंगज़ेब के तीसरे वर्ष में आदिलशाह से सशंकित होकर दक्षिण के सूबेदार अमीरुल् उमरा शाइस्ता ख़ाँ के पास प्रार्थना-पत्र भेजकर उक्त दुर्ग को बादशाही सर्कार को सौंप दिया।[1] इसके उपलक्ष में इसे चार हज़ारी ४००० सवार का मंसब तथा ख़ाँ की पदवी मिली और दक्षिण के नियुक्त सर्दारों में भर्ती कर दिया गया। ९ वें वर्ष मिर्ज़ाराजा जयसिंह के साथ बीजापुरियों को दंड देने के लिए नियत हुआ और बीजापुर के अंतर्गत धुनकी मौजा में गढ़ी[2] और तिलंग के लेने में बहुत प्रयत्न किया। इसके अनंतर का वृत्तांत नहीं मालूम हुआ।

---

१. आलमगीरनामा पृ० ५९६, मआसिरे आलमगीरी पृ० ३३।

२. आलमगीरनामा पृ० १००७ पर इसका नाम गालिनी लिखा है और मौजा का नाम दोढोकी है।

ग़ैरत ख़ाँ

यह अब्दुल्ला ख़ाँ बहादुर फ़ीरोज़जंग का भतीजा था और इसका नाम ख़्वाजः कामगार था। शाहजहाँ के तीसरे वर्ष इसका मंसब बढ़कर एक हज़ारी ४०० सवार का हो गया। जब चौथे वर्ष ख़ानजहाँ लोदी दक्षिण से निकलकर विद्रोह मचाने के लिए हिन्दुस्तान की ओर चला और दरिया ख़ाँ के मारे जाने के अनंतर जब और सब इच्छा छोड़ एक मात्र अपनी रक्षा का विचार किया तथा गुमनामी के साथ बच जाना चाहा पर उस समय अब्दुल्ला ख़ाँ फ़ीरोज़जंग ने सैयद मुज़फ़्फ़र ख़ाँ बारहः को हरावल नियत कर उसका पीछा करने से हाथ नहीं उठाया और जहाँ वह जाता था वहाँ यह पहुँचता था। निरुपाय होकर ख़ानजहाँ लोदी को युद्ध करना पड़ा पर अपने कुछ संबंधियों के मारे जाने पर भागा। ख़्वाजः कामगार ने भी अपने चचा के साथ अच्छी सेवा की। ख़ानजहाँ कालिंजर के पास से २८ कोस भागकर सहिंदः ताल के किनारे ठहरा। वहीं १ रज्जब १०४० हि० को अपने जीवन से निराश होकर घोड़े से बादशाही सेना के सामने उतर पड़ा और अपने दो साथियों के साथ, जो मित्रता के कारण ठहरे हुए थे, युद्ध करने लगा। हरावल के साथ सैयद मुज़फ़्फ़र ख़ाँ के पहुँचने के पहले सैयदों ने वीर सैनिकों के साथ आक्रमण कर उसको साथियों के साथ टुकड़े टुकड़े कर दिया। बाद को अब्दुल्ला ख़ाँ ने पहुँचकर ख़ानजहाँ, उसके पुत्र

अज़ीज और ऐमल ख़ाँ के सिरों को काटकर ख्वाजः कामगार के हाथ दरबार भेज दिया। उसी महीने की ८ वीं तारीख को, जब शाहजहाँ नावपर सवार होकर तापी नदी में बगुलों का शिकार खेल रहा था, उसी समय यह विद्रोहियों के सिर लेकर पहुँचा। शाहजहाँ ने ख़ुदा का शुक्र बजाकर खुशी का डंका बजाने की आज्ञा दी। ख्वाजः कामगार को खिलअत, घोड़ा और ग़ैरत ख़ाँ की पदवी मिली और मनसब में पाँच सदी २०० सवार बढ़ाए गए। यह समझदार और कार्यकुशल था, इसलिए बराबर बादशाही सेवा में रहकर कृपापात्र हुआ और इसके मंसब में सवार बढ़ाए गए। १० वें वर्ष में हजारी १२०० सवार बढ़ने से इसका मंसब ढ़ाई हजारी २००० सवार का हो गया और यह एसालत ख़ाँ के स्थान पर दिल्ली प्रांत का शासक नियत हुआ। १२ वें वर्ष शाहजहानाबाद की इमारतों के बनवाने का इसे प्रबंध मिला। इसने पाँच ज़ीहिज्जः सन् १०४८ हि० को निश्चय के अनुसार खुदाई आरम्भ की और ९ मुहर्रम सन् १०४९ हि० को नींव डाली। चार महीने तक इस कार्य में इसने प्रयत्न किया था कि ठट्टा का सूबेदार नियत होकर वहाँ गया। १४ वें वर्ष सन् १०५० हि० में यह वहीं मर गया। मुअतमिद ख़ाँ रचित इकबालानामा से भिन्न जहाँगीरनामा इसकी रचना है। इसने बहुत सी बातें, जिसे मुअतमिद ख़ाँ ने अपने स्वभाव के कारण छोड़ दिया है, ब्यौरेवार लिखा है। जहाँगीर ने अपनी शाहजादगी में जो विद्रोह किया था, उसका इसने विस्तार से विवरण लिखा है।

ग़ैरत ख़ाँ महम्मद इब्राहीम

यह नजावत ख़ाँ का पुत्र था। शाहजहाँ की सेवा में इसने प्रसिद्धि प्राप्त की और आठ सदी ४०० सवार का मंसब पाया। जिस समय औरंगज़ेब दक्षिण से पिता को देखने के लिए उत्तर जा रहा था और नजावत ख़ाँ भी उक्त शाहज़ादे की मित्रता में दृढ़ता से कमर बाँधकर साथ गया था, उस समय इसका मंसब बराबर बढ़ते हुए दो हजारी १००० सवार का हो गया तथा इसे शुजाअत ख़ाँ की पदवी मिली। महाराज जसवंतसिंह के युद्ध और दाराशिकोह के प्रथम युद्ध के अनंतर इसका मंसब बढ़कर पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया और इसने ख़ानआलम की पदवी पाई। जब औरंगज़ेब दाराशिकोह का पीछा करते हुए मुलतान तक पहुँचकर लौट आया और उक्त प्रांत का प्रबंध लश्कर ख़ाँ को सौंपा, जो कश्मीर में था, तब उसके पहुँचने तक उक्त नगर की रक्षा के लिए यह नियत हुआ। इसके अनंतर वहाँ से लौटकर दाराशिकोह के दूसरे युद्ध में औरंगज़ेब के साथ रहा। इसके बाद किसी कारण से इसका मंसब छीन लिया गया पर दूसरे वर्ष के अंत में तीन हजारी २००० सवार का मंसब देकर इस पर फिर कृपा की गई। तीसरे वर्ष में ग़ैरत ख़ाँ की पदवी पाकर उसी पद पर नियत हुआ। ९वें वर्ष सुलतान महम्मद मुअज्जम के साथ, जो ईरान के शाह की काबुल की ओर चढ़ाई करने का विचार सुनकर वहाँ भेजा जा-

रहा था, नियुक्त होकर पाँच सौ सवार की तरक्की पाई। १०वें वर्ष उक्त शाहजादे के साथ यह भी सेवा में पहुँचा और उसके साथ नियत हुआ, जो कि अपनी दक्षिण की सूबेदारी पर जाने की छुट्टी पा चुका था। इसके बाद इसने जौनपुर की सूबेदारी पाई [1] और २३वें वर्ष में उस पद से हटाया जाकर दरबार आया। यह सुलतान महम्मद अकबर के साथ सिसौदियों और राठौड़ों के विरुद्ध युद्ध पर नियत हुआ, जिन्होंने उस वर्ष उपद्रव मचा रखा था।

जब शाहजादा राजपूतों के बहकाने से अपने पिता के विरुद्ध लड़ने को आया तब यह भी उसके साथ था। उक्त शाहजादा के भागने पर यह शाहआलम के पास चला आया, जिसने इसको बादशाह के पास भेज दिया। इस कारण यह दंडित होकर एहतमाम खाँ को सौंपा गया कि यह अकबरी महलों [2] में कैद रखा जाय। यह बहुत दिनों तक वहाँ कैद रहा। ४३वें वर्ष में गुप्तरीति [3] से इसको छुट्टी मिली और तीन हजारी ३००० सवार का मंसब पाकर जौनपुर का फौजदार नियत हुआ।

---

१. बिजली के मारने से यह लंगड़ा हो गया, जिसमें अन्य छ आदमी मारे गए थे। मआसिरे-आलमगीरी पृ० १७०।

२. अकबरी महलात से किससे तात्पर्य है, यह ज्ञात नहीं हुआ। मआ० आल० पृ० २०५

३. 'गायबानः रिहाई याफ़्त' में मआ० आल० पृ० ४०५ में 'गायबानः' मंसब पाने का उल्लेख ज्ञात होता है। इसके बाद इसका विवरण नहीं दिया गया है।

इसके एक भाई महम्मद क़ुली का मंसब शाहजहाँ के २६वें वर्ष में बढ़कर एक हज़ारी ४०० सवार का हो गया और वह दारा शिकोह के साथ कंधार की चढ़ाई पर गया। २८वें वर्ष में यह हयसाल का दारोग़ा नियत हुआ। ३०वें वर्ष में यह मीर तुज़ुक हुआ और मोतबिर खाँ की पदवी पाई। ३१वें वर्ष में इसका मनसब बढ़कर दो हज़ारी २००० सवार का हो गया, जिसके ८०० सवार दो अस्पा सेह अस्पा थे और यह अवध के अंतर्गत बहराइच का फौजदार तथा जागीरदार नियत हुआ। औरंगजेब के १०वें वर्ष में यह सुलतानपुर बिल्हारी[1] का फौजदार था। इसके अनंतर किसी कारण दंडित होने से इसका मंसब छिन गया। १२वें वर्ष में फिर दो हज़ारी २००० सवार का मंसब पाकर जिलो के सेवकों का दारोग़ा नियत हुआ। एक दूसरा भाई महम्मद इसमाइल ख़ाँ औरंगजेब की राजगद्दी के पहिले एक हज़ारी ५०० सवार का मंसबदार हो चुका था। दूसरे वर्ष में इसे ख़ाँ की पदवी मिली।

नजाबत ख़ाँ का एक पौत्र बहरवर ख़ाँ था। औरंगजेब के ९वें वर्ष में रायरायान मलूकचंद की मृत्यु पर महम्मद आज़मशाह का नायब होकर मालवा प्रांत गया। इसके अनंतर नजाबत ख़ाँ की पदवी से सम्मानित हो बुरहानपुर का नाज़िम और बगलाने का फौजदार नियत हुआ। ४७ वें वर्ष में यह दो हज़ारी ५०० सवार का मंसबदार हो गया। आज़मशाह के प्रभाव-काल में यह मालवा का सूबेदार नियत हुआ। फर्रु-

---

1. बिल्हेरी।

ख़सियर के राज्य में अमीरुल्उमरा हुसेन अली ख़ाँ ने उक्त खाँ को अधिकार देने पर मुल्हेर दुर्ग में कैद कर दिया, जहाँ वह नियत था। इसके दो पुत्र थे एक फतहयाब खाँ था, जो बहुत दिनों तक औरंगगढ़ उर्फ मुल्हेर का अध्यक्ष रहा। सन् ११५६ हि० (१७४३ ई०) में अब्दुल् अजीज़ ख़ाँ बहादुर के साथ, जिसे महम्मद शाह ने गुजरात का सूबेदार नियत किया था, उक्त प्रांत को चला पर मार्ग में शत्रु (मराठों) से लड़ते हुए यह मारा गया। इसका पुत्र अपने पिता की पदवी पाकर कुछ समय तक जागीरदार रहा। लिखते समय वह इनकी उनकी नौकरी में कालयापन करता रहा। दूसरा पुत्र फैजयाब ख़ाँ आवारा था, जो मर गया।

मिर्ज़ा चीन .कुलीज

यह अकबर के समय के मिर्ज़ा क़ुलीज मुहम्मद ख़ाँ[1] का योग्य पुत्र था। वह बुद्धिमान तथा गुणी था। मुल्ला मुस्तफा जौनपुरी के यहाँ शिष्य होकर कुछ पुस्तकें पढ़ीं। इसमें बहुत से अच्छे गुण आ गए। उदारता तथा दान में इसका हाथ ऊँचा था और वीरता तथा दृढ़ता से खाली नहीं था। देशीय प्रबंध में अच्छी योग्यता थी और बहुत दिनों तक यह जौनपुर तथा बनारस की फौजदारी करता रहा। कहते हैं कि मजलिस के प्रबंध करने का इसको अच्छा ज्ञान था। आराम और गाने के सामान से इस प्रकार अपनी महफ़िल को सजा देता था कि देखनेवाले सौ वर्ष तक ईर्ष्या करते रह जाते थे। जब इसका पिता जहाँगीर के राज्य में मर गया तब इसका छोटा भाई मिर्ज़ा लाहौरी, जो अपने पिता को सब संतानों से अधिक प्रिय था और जिसका बड़े स्नेह के साथ लालन पालन किया था परंतु जिसके स्वभाव में संसार भर की दुष्टता, उपद्रव और बदमाशी भरी हुई थी, उक्त मिर्ज़ा के पास पहुँचा। अभी कुछ दिन बीते थे कि उसने बादशाही राज्य में उपद्रव मचाना आरंभ किया और जौनपुर के आसपास लूट मार कर विद्रोही कहलाने लगा। यहाँ तक कि उसकी दुष्टता के कारण मिर्ज़ा चीन .कुलीज उसी झगड़े में मारा

---

१. इसी भाग का ३२वाँ शीर्षक देखिए। आइन अकबरी, ब्लॉकमैन भाग १, पृ० ३५४–५।

गया। उसकी सब संपत्ति बादशाह ने जब्त कर ली। कहते हैं कि पूरे एक साल तक लेखकगण इसके सामान की सूची बनाते रहे।

सन् १०२२ हि० (सन् १६१३ ई०) में जिस समय जहाँगीर अजमेर में था, जौनपुर के एक प्रसिद्ध विद्वान मुल्ला मुस्तफा को मिर्जा का पक्ष लेने के कारण बुलाकर चाहते थे कि उसे दंड दें। ठट्टा के मुल्ला महम्मद ने, जो आसफ खाँ का गुरु था और अपनी विद्वत्ता से उस ऐश्वर्य-शाली खाँ का पार्श्ववर्ती हो गया था, उक्त मुल्ला से शास्त्रार्थ करना आरंभ किया और यह एक सप्ताह तक चलता रहा। जब इसकी इतनी विद्वत्ता प्रगट हुई तब उसने स्वयं प्रार्थना कर इसे उस बला से छुटकारा दिया। मुल्ला मक्का गया और वहाँ से अपने असली निवासस्थान को लौट कर वहीं मर गया।

ईश्वरीय कोप का मिर्जा लाहौरी एक भयानक नमूना था और दुष्टता से भरा हुआ था। मिर्जा लाहौरी कुछ हैसियत नहीं रखता था। वह मांस का लोथड़ा, दुबला पतला, बदसूरत और बुरे स्वभाववाला था। कोड़े की आवाज सुनने में उसे बड़ी प्रसन्नता होती थी। दिन रात चाहता था कि कोड़े की आवाज सुनाई पड़ती रहे। एक दंड भी खुदा के बंदों को दंड देने से उसका मन नहीं भरता था। उन सेवकों को जीवित ही जमीन में गड़वा देता था, जो बुरे समाचार ले आते थे। इसके अनंतर जब कब्र खोलवाता था तब वे मरे हुए पाए जाते थे। बाजार और गलियों में आदमियों के कंधे पर चढ़कर घूमता था। उसकी फरयाद उसके पिता के ऊँचे पद के कारण कोई नहीं

सुनता था। जिस समय उसका पिता लाहौर का सूबेदार था, उस समय यह सुनकर कि एक हिन्दू के घर विवाह है, यह स्वयं जाकर लड़की को बलात् उठा लाया। जब उसके वारिसों ने उसके पिता के यहाँ फरयाद किया तब उसने अपनी विद्वत्ता के रहते हुए, क्योंकि वह अपने को अपने समय का मुज्तहिद समझता था, पुत्र के प्रेम में पड़कर उत्तर दिया कि तुम लोग समझ लो कि मुझसे अच्छा संबंध किया है। जब मिर्ज़ा चीन क़ुलीज खाँ उस पाजी के कारण मारा गया। तब मिर्ज़ा लाहौरी गिरफ्तार होकर दरबार भेजा गया। वह बहुत दिनों तक कैद रहा। अंत में छुट्टी तथा रोजीना मिला। आगरे में दर्शन की खिड़की के नीचे जमुना के किनारे मकान बनाकर बहुत सा कबूतर पाला। जीविका का उपाय भीख थी पर किसी प्रकार अपने कार्यों के फल रूप कष्ट से जीवन व्यतीत करता रहा, यहाँ तक कि मर गया।

क़ुलीज महम्मद खाँ के लड़के और संबंधियों में मिर्ज़ा चीन क़ुलीज, क़ुलीजुल्ला, बालजू क़ुलीज, बैरम क़ुलीज और जान क़ुलीज थे, जिनमें से बहुतेरे योग्य मंसब रखते थे। सब मर गए।

चिलमा बेग, ख़ान आलम

यह हमदम कोका का पुत्र था, जो मिर्ज़ा कामराँ का धाय भाई था। सौभाग्य से हुमायूँ का कृपापात्र होकर सफ़रची नियत हो गया। जब सन् ९६० हि० में मिर्ज़ा कामराँ की दोनों आँखें दवा लगाकर अंधी कर दी गईं तब मिर्ज़ा कामराँ ने सिंध नदी के किनारे से हज्ज जाने की प्रार्थना की। हुमायूँ मिर्ज़ा को बिदा करने के लिए कुछ चुने हुए आदमियों के साथ उसके गृह पर गया, तब मिर्ज़ा ने सम्मान करने के अनंतर यह शैर पढ़ा। शैर, अर्थ—

दर्वेश की टोपी का कोना आकाश को छूता है, जब तुमसे शाह का साया उसके सिर पर पड़ता है।

इसके अनंतर यह शैर भी पढ़ा। शैर, अर्थ—

मेरी जान पर जो कुछ तुझसे पहुँचे, मिन्नत ही का स्थान है।
चाहे अत्याचार का तीर हो, चाहे कष्ट का खंजर हो॥

बादशाह, जो वीरता तथा कृपा के लिए एक संसार था, सांत्वना देकर लौट आया। दूसरे दिन आज्ञा दी कि मिर्ज़ा कामराँ के जो सेवक साथ जाना चाहें उन्हें मनाही नहीं है पर किसीने जाना स्वीकार नहीं किया, यहाँ तक कि मित्रता और परिचय भी त्याग दिया। चिलमा बेग कोका से, जो पास था, बादशाह ने कहा कि यदि तुम चाहो तो साथ जाओ, नहीं तो हमारे पास रहो। इसने बादशाही कृपा और पहिले की सेवा के

हते हुए भी स्वामिभक्ति को सांसारिक सुखों के ऊपर समझ र प्रार्थना की कि मैं अपने लिए इस समय यही उचित समझता हूँ कि इस प्रकार के बुरे दिनों में और उसके एकाकीपन में मिर्ज़ा की सेवा में रहूँ। हुमायूँ ने उसकी स्वामिभक्ति की बातों को बड़ी कृपा से पसंद कर उसे छुट्टी दे दी, यद्यपि उसकी सेवा से बादशाह अधिक प्रसन्न थे। जो कुछ नगद और सामान मिर्ज़ा कामराँ के व्यय के लिए निश्चित हुआ था, इसे सौंपकर मिर्ज़ा के पास भेज दिया। कामराँ पर अवश्यंभावी घटना घटने पर यह अकबर की सेवा में नियत होकर बहुत थोड़े समय में तीन हज़ारी मनसब तथा ख़ानआलम की पदवी पाकर सम्मानित हो गया।

जब १९वें वर्ष में अकबर ख़ानख़ानाँ की प्रार्थना पर, जो दाऊद किर्रानी को पटना दुर्ग में घेरे हुए था क्योंकि वह बिहार तथा बंगाल पर अपना स्वत्व प्रगटकर युद्ध कर रहा था, वहाँ पहुँचा और दुर्ग के चारों ओर निरीक्षण करने के अनंतर हाजीपुर को घेर लेना उक्त दुर्ग के विजय के लिए एक साधन समझा तब उसने एक सेना ख़ानआलम की सरदारी में नियत किया। यह दुर्ग पटना के बिलकुल सामने है और इन दोनों के बीच में गंगा नदी लगभग दो कोस चौड़ी प्रबल वेग से बहती है। यह नावों पर सवार होकर ऊपर की ओर गंडक नदी की तरफ़ जाकर नावों से पार उतर पड़ा। यद्यपि दुर्ग से गोले और गोलियाँ बरस रही थीं पर घोड़ों पर सवार होकर इसने धावा किया। उस युद्ध में बहुत से वीर शत्रुओं के मारे जाने पर दुर्ग विजय हुआ और ख़ानआलम की बड़ी

प्रशंसा हुई। इसी वर्ष जब बंगाल, जो दाऊद के अधिकार में था, बिना युद्ध के विजय हो गया और वह उड़ीसा जाकर युद्ध की तैयारी करने लगा तब सिपहसालार ख़ानख़ानाँ ख़ानआलम को हरावल नियत कर उसे दमन करने वहाँ गया। २० ज़ीक़दः सन् ९८२ हि० (३ मार्च सन् १५७५ ई०) को उड़ीसा में तकरुई स्थान में दोनों सेनाओं का सामना हुआ। ख़ानआलम यौवन तथा वीरोन्माद में उपाय को भूल कर फुर्ती करके दूर चला गया और तीर चलाने वालों के झुंड में जम कर जोर-शोर से लड़ाई आरंभ कर दी। ख़ानख़ानाँ उसके इस तरह से चले जाने पर क्रुद्ध होकर कड़ी बातें कहता हुआ उसे पीछे को हटा लाया और अभी इस सेना का उचित प्रबंध नहीं हो सका था कि गूजर खाँ, जो शत्रु के अग्गल का सेनापति था, हाथियों के साथ आ पहुँचा। इन वेगगामी हाथियों को नील गाय की पूछों और मांसभक्षी जानवरों के दाँत और चमड़े बाँध कर इस तरह सजा दिया था कि उनकी भयंकरता बहुत बढ़ गई थी। हरावल सेना के घोड़े इन विचित्र जीवों को देखकर बिगड़ खड़े हुए और कोई प्रयत्न लाभदायक न होने से सेना का सिलसिला और भी बिगड़ गया। ख़ानआलम एक सधे हुए घोड़े पर निडर सवार था और दृढ़ता से युद्ध करते हुए इसने बहुत से शत्रुओं को मारा। एकाएक इसका घोड़ा तलवार की चोट खाकर अलफ् हो गया, जिससे यह ज़ीन से ज़मीन पर आ गया पर फिर यह फुर्ती से घोड़े पर सवार हो गया। इसी बीच एक मस्त हाथी ने लड़ते हुए पहुँच कर इसे भूमि पर गिरा दिया। अफ़ग़ानों ने घेर कर इसे मार डाला। कहते हैं

कि युद्ध के पहिले यह कहता था कि मुझे कुछ ऐसा अनुमान होता है कि इस युद्ध में मुझे प्राण देना पड़ेगा, पर संतोष यह है कि मेरे इस वलिदान का समाचार बादशाह तक पहुँचेगा। यह कवि था और शैर कहता था। इसका उपनाम 'हमदमी' था। उसका यह क़िता प्रसिद्ध है। अर्थ—

अरे, क्यों अपनी श्वेत डाढ़ी को नष्ट करता है
एक एक को चुन कर, पर सब ज्ञात हो जाता है
यौवन को हानि पहुँचा कर
डाढ़ी नोचने से कोई लाभ अब नहीं है॥

ज़फ़र ख़ाँ

यह ज़ैन ख़ाँ कोका का पुत्र था। इसका नाम स्यात् शुकरुल्ला था। अकबर के ४० वें वर्ष तक इसका मंसब दो सदी था। पिता की मृत्यु पर इसका मंसब सात सदी हो गया। ज्ञात होता है कि अकबर के राज्य के अंत में इसे ज़फ़र ख़ाँ की पदवी मिली थी। जहाँगीर की राजगद्दी पर ज़ैन ख़ाँ की पुत्री के महल में होने के कारण इस पर कृपाएँ बढ़ती गईं। दूसरे वर्ष जब बादशाही सेना लाहौर से काबुल की ओर रवाना होकर अटक दुर्ग के पास मौज़ा आहरुई में ठहरी हुई थी और वहाँ के निवासियों की फरियाद पहुँची कि खत्री जाति अत्यंत उपद्रवी है और अनेक प्रकार के फसाद और लूटमार करती है, तब अटक के अहमदबेग के स्थान पर इसे वहाँ जागीर मिली। इसे आज्ञा हुई कि बादशाह के काबुल से लौटने तक वहाँ रह कर उन सबको प्रयत्न कर लाहौर भेज दे और मुखिया लोगों को कैद में रखे। इसके सिवा जिन लोगों पर अत्याचार किया गया हो उनका कष्ट दूर किया जावे। ज़फ़र ख़ाँ यह काम ठीक करके लौटते समय सेवा में पहुँचा और इसकी प्रशंसा हुई। ३ रे वर्ष इसका मंसब बढ़कर दो हजारी १००० सवार का हो गया। इसके अनंतर उसी वर्ष इसने झंडा, खास खिलअत और जड़ाऊ खंजर पाया। ७वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया और यह बिहार का सूबेदार

नियत हुआ। १०वें वर्ष में यहाँ से हटाए जाने पर यह दरबार पहुँचा। पाँच सदी ५०० सवार का मंसब बढ़ने पर यह चंगश की चढ़ाई पर नियत हुआ। बाद का हाल ज्ञात नहीं हुआ[1]। इसके पुत्र सआदत ख़ाँ का हाल अलग दिया गया है।

---

१. इसकी मृत्यु सन् १०३१ हि० (सन् १६२२ ई०) में हुई, जब जहाँगीर ने इसके पुत्र सआदत ख़ाँ को आठ सदी ६०० सवार का मंसब दिया। (तुज़ुके जहाँगीरी पृ० ३४३)

ज़फ़र ख़ाँ ख़्वाजः अहसन् उल्ला

यह ख़्वाजः अबुल् हसन तुरबती[1] का लड़का था। जहाँगीर के १९ वें वर्ष में जब काबुल की सूबेदारी महाबत ख़ाँ के स्थान पर ख़्वाजः को मिली तब यह अपने पिता का प्रतिनिधि होकर वहाँ का शासक नियत हुआ और उस समय इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हज़ारी ६०० सवार का हो गया तथा ज़फ़र ख़ाँ की पदवी, झंडा, खंजर, जड़ाऊ तलवार और हाथी मिला। उस बादशाह के राज्य के अंत समय तक इसका मंसब ढाई हज़ारी १२०० सवार का हो गया था। शाहजहाँ के राज्य के प्रथम वर्ष में जब यह समाचार मिला कि उसने अहदाद के पुत्र अब्दुल् क़ादिर को तीराह के अंतर्गत खर्माब: दर्रे में आगे रख छोड़ा था तथा इसके अनंतर जब जहाँगीर के मरने का समाचार सुना तब कुछ लोगों को काबुल भेजकर स्वयं पशावर आया और साधारण तौर पर वहाँ का कार्य निपटाकर काबुल की ओर चला क्योंकि वहाँ के सूबेदार जाड़े में गर्मी के लिए पशावर में रहते थे और ठंडक के लिए ग्रीष्म ऋतु में काबुल में रहते थे। लौटते समय इसने असावधानी की, जिससे खैबर दर्रे की उद्दंड अफ़गान जातियाँ उर्कज़ई और अफ़रीदियों ने मार्ग रोककर इस प्रकार पड़ाव को लूटना आरंभ किया कि यह घबड़ा कर उनका प्रबंध

1. २० वाँ शीर्षक भाग २ में देखिए।

न कर सका और यहीं ठहर गया। इस पर उक्त प्रांत इसके पिता से ले लिए जाने पर यह दरबार आया। दूसरे वर्ष ख्वाजः अबुल्हसन के साथ जुझार सिंह बुंदेला का पीछा करने पर नियत हुआ। तीसरे वर्ष जब बादशाह दक्षिण गए तब यह उक्त ख्वाजः के साथ नासिक, त्र्यंबक और संगमनेर विजय करने पर नियत हुआ। ५ वें वर्ष जब कश्मीर की सूबेदारी एतक़ाद खाँ शाहपुरी के स्थान पर इसके पिता को मिली तब यह उसका प्रतिनिधि नियत होकर खिलअत और घोड़ा पाकर उस प्रांत को गया। ६ ठे वर्ष में इसके पिता की मृत्यु के बाद बादशाह ने कश्मीर की सूबेदारी पर इसीको नियत कर इसका मंसब बढ़ाकर तीन हजारी २००० सवार का कर दिया और झंडा और डंका भी दिया। ७ वें वर्ष में जब बादशाह कश्मीर जा रहे थे तब यह भीम्बर तक आकर सेवा में उपस्थित हुआ। १० वें वर्ष में यह आज्ञानुसार तिब्बत प्रांत को पहिले मार्ग से गया। कश्मीर से वहाँ को दो रास्ते जाते हैं—एक का नाम कर्ज और दूसरे का बलार है। पहिला दूसरे से ४ पड़ाव अधिक है पर दूसरा बराबर अधिक बर्फ गिरने से तथा दो घाटियों के कारण दुर्गम है। इसने उस प्रांत को कौशल से विजय कर वहाँ के शासक अब्दाल को कैद कर लिया तथा दूसरे मार्ग से जल्दी से लौट आया। इसकी इस जल्दी को बादशाह ने पसंद नहीं किया।

तिब्बत प्रांत में २१ परगने और ३७ दुर्ग हैं। पर्वतों की अधिकता और मैदान की कमी से खेती कम होती है और अन्नों में जौ, गेहूँ अधिक होता है। उसकी वार्षिक तहसील एक लाख रुपया से अधिक नहीं थी। उस प्रांत में एक नदी

है, जिसके एक ओर सोने के महीन टुकड़े मिलते थे और चोखे न होने से एक तोला सात रुपये का होता था। साल में लगभग २००० तोलों का ठीका होता था। यहाँ के मेवे जैसे ज़र्द आलू, शफ़तालू, खरबूजा और अंगूर अच्छे और मीठे होते हैं। ये साल में एक बार होते हैं। यहाँ के सेब बाहर और भीतर से लाल होते हैं।

११वें वर्ष में यह आज्ञानुसार वहाँ के शासक अब्दाल के साथ सेवा में उपस्थित हुआ। १२वें वर्ष में कश्मीर प्रांत से हटाया जाकर ख़ानदौराँ नसरतजंग के साथ हज़ाराजात को दमन करने के लिए नियत हुआ। १३ वें वर्ष में शाहजादा मुरादबख्श के साथ भेजा गया, जो भीरः प्रांत में नियत हुआ था। इसके अनंतर दो वर्ष दंडित होकर मंसब और जागीर से दूर रहा। १४वें वर्ष के अंत में पहिले की तरह वहीं बहाल हो गया। १५ वें वर्ष में जब समाचार मिला कि कश्मीर का सूबेदार तरबियत ख़ाँ बार बार लिखने पर और धन भेजने पर भी वहाँ के धनहीनों के साथ जैसा कि चाहिए वैसा बर्ताव नहीं करता क्योंकि उस साल वहाँ अकाल पड़ा था तब यह दूसरी बार वहाँ का सूबेदार नियत हुआ। १८ वें वर्ष में जब बादशाह कश्मीर गए तब एक दिन ज़फ़राबाद बाग में, जिसे इसने बनवाया था, बादशाह गए तब इसके अच्छे व्यवहार के उपलक्ष में इसके मंसब में १००० सवार बढ़ाए गए, क्योंकि उस प्रांत की प्रजा और निवासी इससे प्रसन्न थे। इसके अनंतर कुछ कारण-वश यह पुनः कुछ दिन तक सेवा से दूर रखा गया पर २५वें वर्ष में इसको तीन हजारी १५०० सवार का मंसब मिला।

२६वें वर्ष में सर्दार खाँ के स्थान पर ठट्टा का शासक नियत हुआ और इसका मंसव ५०० सवार बढ़ाए जाने पर तीन हज़ारी ३००० सवार का हो गया। २९वें वर्ष जब वहाँ का शासन सुल्तान सिपहर शिकोह को मिला तब यह ३० वें वर्ष ठट्टा से दर्बार चला आया। दारा शिकोह के पहिले युद्ध में पाँच सहस्र वीर सैनिकों के साथ मध्य के बाएँ भाग का सर्दार नियत हुआ। उक्त खाँ का स्वभाव संसार के छल, कपट और अनुभव से दूर था, इसलिए शाहजहाँ के राज्य में, जब गुण की प्रतिष्ठा होती थी और सेवकों पर कृपा रहती थी, यह दो बार दंडित हुआ था। जब औरंगजेब बादशाह हुआ तब परिश्रम और कष्टसहिष्णुता का समय आया और मान तथा अहंता का समय बीत गया। राज्य के आरंभ ही में इसे चालीस हज़ार वार्षिक वृत्ति मिली। ६ठे वर्ष सन् १०७३ हि० (सन्१६६३ ई०) में लाहौर में मर गया और अपने पिता के मक़बरे में गाड़ा गया।

कहते हैं कि यह देखने में बहुत नाटा और दुबला पतला था। प्रसिद्ध है कि एक दिन शाहजहाँ के सामने यह बात हो रही थी कि ख्वाजः अबुल्हसन दिन भर में एक बार पानी पीता था। मुल्ला हिफ़ज़ी वहाँ उपस्थित था। उसने कहा कि ज़फ़र खाँ का छोटा कद इसी कारण बिना पानी के बीज के समान है। परंतु वह बुद्धिमानी और उपाय सोचने में अद्वितीय था। काबुल में महाबत खाँ के विद्रोह के समय नूरजहाँ बेगम के साथ था और इसी की राय से काम पूरा हुआ। यह गुणी था। जहाँगीर के समय यह प्रसिद्ध था कि चार सर्दारों के पुत्र

अपने अपने पिता से योग्यतर हैं। पहिला ख़ान आज़म का पुत्र जहाँगीर कुली ख़ाँ, दूसरा सईद ख़ाँ चगत्ता का पुत्र सादुल्ला ख़ाँ, तीसरा ज़ैन ख़ाँ का लड़का ज़फ़र ख़ाँ, और चौथा यह ज़फ़र ख़ाँ, जो ख़्वाजा अबुलहसन का लड़का था। ख़्वाजः सुन्नी था परंतु ज़फ़र कट्टर शीया था। यह ईरान के आदमियों को धन देता था, विशेष कर कवियों पर बहुत कृपा रखता था। योग्य कविगण भी अपने देश को छोड़कर इसकी शरण में आ रहते थे और उनकी आशा भी प्रार्थना से पूरी हो जाती थी। जब प्रसिद्ध मिर्ज़ा सायब तबरेज़ी ईरान से काबुल आया तब इसकी उदारता और सत्कार से प्रसन्न हो इससे ऐसा प्रेम करने लगा कि बहुत दिनों तक उक्त ख़ाँ के साथ हिन्दुस्तान में निवास किया। उसने एक शैर कहा है—शैर, अर्थ

खानखानाँ को आनंद के जलसे तथा युद्ध में 'सायब' मैंने देखा है।

तू ज़फ़र ख़ाँ सा उदारता तथा वीरता में नहीं है।

इसने उन सब कवियों के शैरों का चुना हुआ संग्रह, जिनसे कि इसे संबंध था, लिखवाकर प्रत्येक पृष्ठ के पीछे उसी भाव के चित्र बनवाए थे। स्वयं भी अच्छा शैर कहता। उसका एक शैर इस तरह है, अर्थ—

दुष्कृपा की तलवार से यदि कर सके तो जीवन को काट दे।
आकाश जब तक तुझको पैर से गिरा दे, तू स्वयं जल्दी कर॥

मुमताज़ महल की बड़ी बहन और सैफ़ ख़ाँ की स्त्री मल्का बानू की पुत्री बुज़ुर्ग खानम के साथ इसका निकाह हुआ था। इसके गर्भ से मिर्ज़ा मुहम्मद ताहिर पुत्र हुआ, जिसका

उपनाम आशना था और जो शाहजहाँ के समय डेढ़ हजारी मंसब पाकर इनायत खाँ की पदवी से सम्मानित हुआ था। यह दारोगा हजूर नियत हुआ, जिस पद पर विश्वसनीय आदमी नियत होते थे। उस राज्य के अंत में यह पुस्तकालय का दारोगा नियत हुआ था। कहते हैं कि शाहजहाँ ने सरमद की चाल व्यवहार देखने के लिए, जो नंगा रहता था, इसे भेजा। इसने लौट कर नीचे लिखा शेर पढ़ा—

नंगे सरमद पर लांछन का बड़प्पन है।
उससे जो नंगापन प्रगट है वह स्त्री का पर्दा खोलना है।

यह उस पिता का लड़का था, जिसके स्वभाव में दुनियादारी नहीं थी, इसलिए कश्मीर प्रांत में इसके एकांतवासी होने पर औरंगजेब के छठे वर्ष में २४०००) रु० वार्षिक वृत्ति इसके लिए नियत हुई। सन् १०८१ हि० (सन् १५९३ ई०) में यह मर गया। शाहजहाँ के तीस वर्ष के राज्य का हाल बादशाहनामा के नाम से इसने लिखा था। यह अच्छा साहित्य-मर्मज्ञ था और मसनवी तथा दीवान लिखे थे। उसके एक शेर का यह अर्थ है—

हलके पन में आराम है।
सोया हुआ छाया मार्ग काट लेता है॥

जबरदस्त ख़ाँ

यह शाहजहाँ का एक वालाशाही सवार था। उक्त बादशाह की राजगद्दी के अनंतर इसने एक हज़ारी ५०० सवार का मंसब पाया। दूसरे वर्ष पहिली बार पाँच सदी १०० सवार और दूसरी बार २०० सवार मंसब में बढ़ाए गए। ४थे वर्ष इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हज़ारी १००० सवार का हो गया। बहुत दिनों तक बिहार प्रांत में नियुक्त रहकर वहाँ के बलवाई ज़मींदारों को दंड देने में उस प्रांत के सूबेदारों की पूरी सहायता बराबर करता रहा। एतक़ाद ख़ाँ की सूबेदारी के समय पलामूँ के ज़मींदार प्रताप के, जो उक्त प्रांत के विद्रोहियों का एक सर्दार था, एक पुत्र को बहुत प्रयत्न करने के अनंतर १७वें वर्ष में सूबेदार के पास लिवा ले आया था। इसके अनंतर दरबार गया। १८वें वर्ष में इसका मंसब दो हज़ारी १००० सवार का हो गया। १९वें वर्ष में खिलअत पाकर ठट्टा प्रांत के अंतर्गत सिविस्तान की जब्ती के लिए भेजा गया। २३वें वर्ष सन् १०५९ हि० (सन् १६४९ ई०) में सिविस्तान की फौजदारी के समय वहीं इसकी मृत्यु हो गई।

जमाल बख्तियार, शेख

यह शेख मुहम्मद बख्तियार का लड़का था। इस अह्ल की जाति आगरा प्रांत के अंतर्गत चंदवार और जलेसर में बहुत दिनों से रहती थी। इसकी बहिन गौहरुन्निसा अकबर के महलों में सर्दार थी, इस कारण सिफ़ारिश पहुँचा कर यह हजारी मंसबदार हो गया। ईर्ष्यालु मनुष्यों ने इसकी उन्नति से बिगड़कर इसके पीने के पानी में ज़हर मिला दिया, जिससे शेख का हाल दूसरा हो गया। रूप नाम के बादशाही ख़वास ने भी सान्त्वना के लिए इसमें से थोड़ा पिया और उसका भी हाल बदलने लगा। जब बादशाह को यह समाचार मिला तब वह स्वयं उपाय करने बैठा, जिससे यह अच्छा हो गया।

२५ वें वर्ष में इस्माइल कुली ख़ाँ के साथ नयाबत ख़ाँ को दंड देने के लिए, जिसने विद्रोह किया था, नियत होकर इसने युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई। २६ वें वर्ष में शाहजादा सुल्तान मुराद के साथ नियुक्त हुआ, जो मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम से युद्ध करने भेजा गया था। एक दिन जब शाहजादा ख़ुर्द काबुल में ठहरा हुआ था तब यह साहस के कारण चिनारतो मार्ग ले कर मिर्ज़ा हकीम के सैनिकों से युद्ध करता हुआ शाहजादे की सेना के पास पहुँचा। एक दिन अकबर ने इसकी शराब पीने के कारण भर्त्सना की और सामने उपस्थित होने से रोक दिया। शेख़ ने लज्जा तथा हठ के कारण वहाँ से जाकर अपना सब

ऐश्वर्य का सामान बाँट दिया और स्वयं फ़कीर बन बैठा बादशाह ने इस काम से अधिक क्रुद्ध होकर इसे कैद कर दिया कुछ दिन बाद क्षमा किया जाकर कृपापात्र हुआ और बहु दिनों तक सेवा में रहा। इसने शराब पीना छोड़ दिया थ जिससे इसे कँपकँपी का रोग हो गया। ३० वें वर्ष में जाबु लिस्तान की चढ़ाई के समय इसकी बीमारी बढ़ गई, इसलि आज्ञानुसार लुधियाने में यह ठहर गया। उसी वर्ष सन् ९९ हि० (सन् १५८५ ई०) में यह मर गया।

मीर जमालुद्दीन अंजू

अंजू लोग शीराज़ के सैयदों में से थे। इनका वंश इब्राहीम तबातबाई हुसेनी के पुत्र हसन और पौत्र क़ासिम अल्रासी तक पहुँचता है। इस वंश के दो अंतिम बड़े लोग शाह महमूद और मीर शाह अबू तुराब ईरान के सद्र मीर शम्सुद्दीन असदुल्लाह शुस्तरी की मध्यस्थता से शाह तह्मास्प सफ़वी प्रथम के समय में शेखुल् इस्लाम और प्रधान क़ाज़ी नियत हुए थे। मीर जमालुद्दीन इन्हीं के वंशजों में से था। यह दक्षिण में आया, जहाँ के शासकों ने इसका बड़ा सन्मान कर इससे संबंध भी किया। इसके अनंतर अकबर की सेवा में पहुँचकर ३१ वें वर्ष में इसने छ सदी मंसब पाया। ४० वें वर्ष तक एक हज़ारी मंसब हो गया। कहते हैं कि अकबर के अंत समय तक तीन हज़ारी मंसब तक पहुँच गया था। जब ५० वें वर्ष के अंत में आसीरगढ़ विजय हुआ तब आदिल शाह बीजापुरी ने विचार किया कि अपनी लड़की का शाहज़ादा दानियाल से निकाह करे। अकबर ने मिर्ज़ा को मँगनी के लिए वहाँ भेजा। मीर ने सन् १०१३ हि० में गंगा के किनारे पत्तन के पास मजलिस सजाकर लड़की को शाहज़ादे को सौंपा और स्वयं आगरे पहुँचा। उसने इतनी अच्छी भेंट बादशाह के सामने उपस्थित की, जैसी उस समय तक दक्षिण से नहीं आई थी। यह शाहज़ादा सुल्तान सलीम से विशेष परिचय रखता था इसलिए उसकी राजगद्दी के अवसर

पर इसे चार हज़ारी मंसब, डंका व झंडा मिला। जब सुलतान खुसरू ने बलवा किया तब मीर इस संदेश के साथ नियत हुआ कि जो प्रांत मिर्ज़ा मुहम्मद के अधीन था उसपर सुलतान अधिकृत हो। पर उसने बुद्धि की कमी और अभाग्य से इसे स्वीकार नहीं किया। जब वह साथियों के साथ पकड़ा जाकर सामने लाया गया तब हसनबेग बदख्शी ने, जो उसका मुख्य सम्मतिदाता था, कहा कि मैं अकेला ही पक्षपाती नहीं हूँ, यहाँ खड़े हुए सब सर्दार इस काम में मिले हुए हैं। कल ही मीर जमालुद्दीन अंजू ने, जो समझाने आया था, मुझसे पाँच हज़ारी मंसब लेने की प्रतिज्ञा ली थी। मीर के मुँह का रंग उड़ गया। खानेआज़म ने निर्भयता के साथ प्रार्थना की कि आश्चर्य है कि हुजूर इसकी व्यर्थ की बातें सुनते हैं। वह जानता है कि मुझको मार डालेंगे, इसलिए यह चाहता है कि दूसरों को भी अपनी तरफ खींच लें। इसमें मैं भी शरीक हूँ, जिस दंड के योग्य होऊँ वह मुझे भी दिया जाय। बादशाह ने यह सुनकर मीर को सान्त्वना दी। इसके अनंतर इसे बिहार प्रांत का शासक नियत किया। ११ वें वर्ष में इसे अज़दुद्दौल्ला की पदवी मिली। मीरने एक जड़ाऊ खंजर भेंट किया, जिसे उसने स्वयं बीजापुर सरकार में तैयार कराया था। इसकी मूठपर पीले रंग का आबदार और मुर्ग के अंडे के आधे डौल का मोती जड़ा हुआ था तथा जिसके चारों ओर विलायती मोती और पुराने रंगदार पन्ने जड़कर उसकी शोभा बढ़ाई गई थी। उसका मूल्य पचास सहस्र निश्चित हुआ। यह बहुत दिनों तक अपनी जागीर बहराइच में रहा। वहाँ से दरबार आकर मर गया। मीर में बाहरी

गुण बहुत थे। फरहंगे जहाँगीरी पुस्तक इसी की है जो उस विषय की विश्वसनीय और मान्य पुस्तक है। वास्तव में शब्दों के अन्वेषण और गँवार मसलों के चुनने में इसने बहुत परिश्रम किया। इसका बड़ा पुत्र मीर अमीनुद्दीन पिता के साथ दक्षिण में नियत था। खानखानाँ अब्दुर्रहीम की लड़की से इसका संबंध हुआ था। इसने कुछ तरक्की की पर ठीक जवानी में इसकी मृत्यु हो गई। दूसरे पुत्र मीर हिसामुद्दीन मुर्तजा खाँ का वृत्तांत अलग दिया हुआ है।

जलाल काकिर

यह दिलावर खाँ का द्वितीय पुत्र था। यह काबुल में नियुक्त था। जहाँगीर के राज्य के अंत में एक हजारी ६०० सवार के मंसब तक पहुँचा था। उसके अनंतर जब शाहजहाँ बादशाह हुआ तब उसके पहिले वर्ष में पाँच सदी १०० सवार इसके मंसब में बढ़ाए गए। तीसरे वर्ष रुकनुद्दीन रुहेला के पुत्र कमालुद्दीन के झगड़े में सईद खाँ के साथ इसने बहुत प्रयत्न किया। १२वें वर्ष में जब बादशाह राजधानी में थे, तब यह खिलअत पाकर शाह क़ुली खाँ के स्थान पर जम्मू का फ़ौजदार नियत हुआ। १३वें वर्ष में जब मुराद बख्श सेना के साथ भीरा में नियत हुआ तब इसको भी उसके साथ वालों में लिखा गया था। १४ वें वर्ष इसके मंसब में ३०० सवार बढ़े और यह घोड़ा पुरस्कार में पाकर दक्षिण के सहायकों में नियत हुआ। १८वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दो हजारी १५०० सवार का हो गया। बहुत दिन दक्षिण में व्यतीत कर ३० वें वर्ष में मिर्ज़ा ख़ाँ मनोचेहर के साथ देवगढ़ के जमींदार कोकना के जिम्मे जो भेंट बची हुई थी उसे उगाहने के लिए उस प्रांत में गया। इसके अनंतर औरंगजेब की प्रार्थना पर ख़ानदेश के अंतर्गत नसीराबाद आदि की फौजदारी तथा जागीरदारी पर नियत किया

गया। इसके अनंतर जब औरंगज़ेब बादशाह हुआ तब चौथे वर्ष इसका मंसब बढ़कर तीन हज़ारी २००० सवार का हो गया और मालवा के अंतर्गत होशंगाबाद का फौजदार नियत हुआ।

जलाल खाँ क़ोरची

यह अकबर का मुसाहिब और पार्श्ववर्ती था। इसका मंसब पाँच सदी था। ५वें वर्ष[1] में इसको तानसेन कलावंत को लिवा लाने के लिए पत्र के साथ भट्टा के राजा रामचन्द्र बघेला के यहाँ भेजा, जिसके दर्बार में वह रहता था और जो कवित्त पढ़ने तथा ध्रुपद गाने में भारतवर्ष का सब से अच्छा गुणी था। यह उसको राजा के भेंट के साथ लिवा लाया। ११वें वर्ष में यह समाचार बादशाह को मिला कि जलालखाँ किसी सुन्दर युवक के प्रेम में फँसा है तब बादशाह को यह अनुचित जान पड़ा और उस युवक को इससे अलग कर दिया। यह विद्रोही होकर एक रात्रि उस युवक को लेकर भागा। जब यह वृत्तांत बादशाह को मिला तब उसने मिर्ज़ा यूसुफ़ख़ाँ रिज़वी को कुछ सेना सहित उसका पीछा करने भेजकर पकड़वा मँगाया। बहुत दिनों तक जिलौखाने में कैद रह कर छोटे बड़े की लात खाई। इसके अनंतर इस पर कृपा हुई और यह बराबर युद्धों में बादशाह के साथ रहा। इसके बाद अजमेर प्रांत के अंतर्गत सिवाना दुर्ग विजय करने को भेजी गई सेना के सहायतार्थ नियत हुआ। २०वें वर्ष में वहाँ पहुँच कर इसने बहुत प्रयत्न किया और मारवाड़ के राजा चन्द्रसेन बादशाही सेना से परास्त हुए। इसी

---

१ मआसिरुल्उमरा हिंदी भाग १ पृ० ३३० पर सातवाँ वर्ष लिखा है।

समय एक आदमी ने अपने को देवीदास प्रगट किया, जो अजमेर प्रांत के अंतर्गत मेड़तः की सीमा में मिर्ज़ा शरफुद्दीन हुसेन के साथ युद्ध में मारा गया था और उक्त खाँ के पास पहुँचा कि उसके द्वारा बादशाही दरबार में जा सके। इस समय सब को चन्द्रसेन को खोजने की फिक्र थी। एक दिन उस झूठे ने प्रगट किया कि वह रामराय के पुत्र कल्ला की जागीर में, जो उसका भतीजा है, छिपा हुआ है। इस पर शाही सेना कल्ला के निवास स्थान पर भेजी गई। उसने इसे अस्वीकार कर तथा शुमालखाँ क़ोरची से मिलकर इस झूठे को दमन करने का प्रबंध किया। शुमालखाँ ने उसे अपने घर बुलाकर पकड़ने का उपाय किया पर वह अपनी वीरता से निकल भागा। इसके अनंतर यह वैमनस्य रख कर एक दिन जलालखाँ के घर को शुमालखाँ का निवास-स्थान समझ कर कुछ आदमियों को साथ लेकर युद्ध करने गया। यह सन् ९८३ हि० (सन् १५७६ ई०) में बिना सामान के युद्ध करते हुए मारा गया।

जहाँगीर कुली ख़ाँ

इसका नाम लालबेग काबुली था और यह मिर्ज़ा हकीम के दासपुत्रों में से था। इसका पिता निज़ाम क़लमाक़ मिर्ज़ा के मजलिस का मशालची था। अपने कार्य से लालबेग मिर्ज़ा का कृपापात्र होकर यह अच्छे पद पर काम करने लगा। मिर्ज़ा की मृत्यु पर यह अकबर की सेवा में चला आया। अकबर ने इसको अपने बड़े पुत्र सुलतान सलीम को दे दिया। इसके अच्छे कार्यों और अच्छे विचारों से शाहजादे ने इस पर अनेक प्रकार की कृपा करते हुए बाज़बहादुर की पदवी दी। कुछ दिन में यह धनवान हो गया और इसे डंका मिल गया। जब शाहज़ादा हिन्दुस्तान का बादशाह हुआ तब इसको पाँच हज़ारी मंसब और जहाँगीर कुली ख़ाँ की पदवी देकर बिहार तथा पटना का सूबेदार नियत किया। जब बादशाह की यह आज्ञा हो चुकी कि उस प्रांत के जागीरदारों से जो कोई उक्त ख़ाँ के विरुद्ध सिर उठावे तो उसको दंड देना उसी के हाथ में है, तब जहाँगीर कुलीख़ाँ का प्रभाव सब के ऊपर छा गया। खड्गपुर का राजा संग्राम, जो उस प्रांत के अच्छे जमींदारों में से था और अकबर के समय से बराबर बिहार प्रांत के शासकों के अधीन रहकर जिसने बादशाही कामों से कभी हाथ नहीं खींचा था और इसी कारण राजा टोडरमल ने उसको पुत्र कहा था, इस समय जहाँगीर कुली ख़ाँ की ऐंठ को न सहन कर युद्ध को तैयार हो

गया। उक्त ख़ाँ ने अच्छी सेना के साथ उस पर चढ़ाई कर युद्ध किया और संग्राम वीरता से लड़कर गोली से मारा गया तथा उक्त ख़ाँ विजयी हुआ। दूसरे वर्ष सन् १०१६ हि० में कुतबुद्दीन ख़ाँ कोका के स्थान पर, जो शेर अफ़गन ख़ाँ इस्तजलू के हाथ मारा गया था, बंगाल का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। उस प्रांत में पहुँचने पर वहाँ के नियम आदि जानकर कुछ कार्य न कर सका था कि मौत ने आ दबाया। ३रे वर्ष सन् १०१७ हि० (सन् १६०९ ई०) में यह मर गया। यह धार्मिकता में प्रसिद्ध था और उपकार का बदला देने में बहुत प्रयत्न करता था। एक सौ हाफ़िज़ नौकर रक्खे था कि बराबर कुरान पढ़कर उसका पुण्य इसको दिया करें। स्वयं भी नमाज़ बहुत पढ़ा करता था। यह सब होते हुए भी यह बहुत कठोर हृदय का था, तनिक भी नहीं दया करता था। नमाज़ पढ़ते और माला फेरते हुए भी दोषियों को कोड़ा मारने, गला घोंटने और मार डालने के लिए संकेत करने से नहीं रुकता था। इसके यहाँ एक सौ तुरही बजाने-वाले नौकर थे कि जब युद्ध बराबर पर हो, तब एक साथ ही सब बजाने लगें, जिससे गँवारों तथा बलवाइओं का साहस घट जाय। कश्मीरी गुलेला मारनेवाले भी एक सौ नौकर थे, जिसमें कोई पक्षी उसके सिर पर से उड़ कर न जा सके, सब को गुलेला मारते थे।

जहाँगीर क़ुली ख़ाँ

यह ख़ान आज़म मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका[1] का सबसे बड़ा पुत्र था। इसका नाम शम्सुद्दीन उर्फ़ मिर्ज़ा शम्सी था। जब मिर्ज़ा कोका गुजरात के शासन-काल में सोमनाथ के पास बलावल बंदर से शंका के मारे इलाही जहाज पर सवार होकर मक्का को रवाना हुआ तब शम्सी और शादमान को छोड़कर अन्य सब पुत्र तथा परिवार वाले साथ गए। अकबर ने बड़ी कृपा करके शम्सुद्दीन को एक हज़ारी मंसब दिया। यह अपने सब भाइयों से बुद्धिमानी तथा विद्वत्ता में बढ़ कर था और सुविचार तथा सुशीलता के कारण अकबर के राज्यकाल से शाहजहाँ के समय तक बराबर बादशाही कृपापात्र रहकर प्रसिद्धि के साथ जीवन व्यतीत कर दिया। अकबर के समय इसका मंसब दो हज़ारी था। जहाँगीर के तीसरे वर्ष में जब गुजरात प्रांत का शासन मुर्तज़ा ख़ाँ बुख़ारी के स्थान पर ख़ानआज़म को मिला तब इस कारण कि बादशाह के हृदय में उक्त ख़ाँ की ओर से कुछ मालिन्य था और ख़ुसरो का पक्षपाती होने से उसकी ओर से वह सुचित्त न था यह निश्चय हुआ कि वह स्वयं दरबार में रहे और जहाँगीर क़ुली ख़ाँ पिता का प्रतिनिधि होकर वहाँ जाय क्योंकि उस पर उसकी योग्यता तथा बुद्धिमानी के कारण बादशाह को पूरा विश्वास था।

---

१ देखिए इसी ग्रंथ के भाग २ का ४ था शीर्षक।

प्रसिद्ध है कि मिर्ज़ा कोका का जिह्वा पर अधिकार न था और बात करते हुए, विशेषकर क्रोध के समय, गाली गलौज नहीं रोक सकता था। यहाँ तक कि वह बादशाह का भी विचार नहीं करता था। एक दिन की घटना है कि बादशाह जहाँगीर ने जहाँगीर क़ुली ख़ाँ से कहा कि तू अपने पिता का उत्तरदायी हो। उसने प्रार्थना की कि मैं उसके जान माल का उत्तरदायी होता हूँ पर उसकी ज़बान का ज़ामिन नहीं हो सकता। इसके अनंतर तीन हज़ारी ३००० सवार का मंसब पाकर यह जौनपुर का हाकिम नियत हुआ। इसी समय शाहज़ादा शाहजहाँ बंगाल पर अधिकार कर पटना की ओर चला और अब्दुल्ला ख़ाँ फ़ीरोज़जंग राजा भीम के साथ अलग होकर इलाहाबाद रवाना हुआ। जब वह चौसा उतार तक पहुँचा तब जहाँगीर क़ुली ख़ाँ अपने में सामना करने का सामर्थ्य न देखकर फ़ुर्ती से जौनपुर से निकलकर इलाहाबाद के शासक मिर्ज़ा रुस्तम सफ़वी के पास पहुँचा। इसके अनंतर इलाहाबाद के शासन पर नियत हुआ। शाहजहाँ की राजगद्दी के बाद यद्यपि यह इलाहाबाद की सूबेदारी से हटा दिया गया परंतु पुराने मंसब के बहाल होने पर सईद ख़ाँ के पुत्र बेगलर ख़ाँ के स्थान पर सोरठ और जूनागढ़ का शासक नियत हुआ। ५वें वर्ष सन् १०४१ ई० (सन् १६३२ ई०) में मर गया। शाहजहाँ ने कृपा कर इसके योग्य पुत्र बहराम को दो हजारी २००० सवार का मंसब देकर उसे उसके पिता के स्थान पर नियत किया। गुजरात के शासनकाल में इसने बहरामपुर अपने नाम पर बसाया था।

जानश बहादुर

जानश बहादुर मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम के सर्दारों में से था। मिर्ज़ा की मृत्यु के अनंतर उसके पुत्रों के साथ ३० वें वर्ष में अकबर के दरबार में पहुँचा और योग्य मंसब, ख़िलअत, घोड़ा और धन पाकर प्रसन्न हुआ। इसी समय ज़ैनखाँ कोका के साथ यह युसुफ़ज़ई अफ़गानों को दमन करने के लिए नियत हुआ। अफ़गानों के युद्ध में शाही सेना के परास्त होने पर जब कोकलताश चाहता था कि अपने को युद्ध में समाप्त कर दे, तब यह उसकी बाग पकड़ कर लौटा लाया। इसके अनंतर पहिली बार कुँवर मानसिंह के, दूसरी बार सादिक ख़ाँ के और तीसरी बार ज़ैन ख़ाँ के साथ तारीकियों पर नियत होकर इसने बहुत प्रयत्न किया। ३५वें वर्ष में जब ख़ानख़ानाँ दुर्ग कंधार विजय करने पर नियत हुआ तब इसका नाम अपने साथियों की सूची में लिखा। इस कार्य के रुक जाने और ख़ानख़ानाँ के ठट्टा की चढ़ाई पर नियत होने पर इसने भी साथ जाकर वहाँ अच्छा नाम कमाया। ३८वें वर्ष में ख़ानख़ानाँ के साथ दरबार आया। इसके बाद दक्षिण में नियुक्त होकर अंतिमकाल में रामपुर में था, जहाँ ४६वें वर्ष सन् १००९ हि० (सन १६०१ ई०) में यह शूल रोग से मर गया। यह एक वीर सिपाही था और इसका मंसब

पाँच सदी था। इसके बाद इसके भाई उसी प्रांत में जागीर पाकर काम करते रहे। इसके पुत्र शुजाअत खाँ शादीबेग[1] का हाल अलग दिया हुआ है।

1. इस ग्रंथ के चौथे भाग में देखिए।

जान निसार ख़ाँ

इसका नाम कमालुद्दीन हुसेन था और जुनेर का पुराना निवासी था। यह शाहजहाँ की शाहज़ादगी के समय के उसके अच्छे सेवकों में से था और स्वामी के स्वभाव को समझनेवाला तथा स्वामिभक्त सेवकों का अग्रगण्य था। जहाँगीर के हथसाल का दारोगा बनारसी, जो अपनी शीघ्रता में आकाश की गति से भी बढ़ गया था, यमीनुद्दौला के संकेत पर जहाँगीर के मरते ही फुर्ती से रवाना हो गया और कश्मीर के पहाड़ों से बीस दिन में १९ रबीउल् अव्वल सन् १०३७ हि० को जुनेर पहुँच गया और जहाँगीर को मृत्यु का समाचार वहाँ पहुँचा दिया। शाहजहाँ की इच्छा बादशाहत करने में देर करने की नहीं थी इसलिए तीन दिन तक शोक मनाकर वहाँ से उसी मास की २३ वीं तारीख को गुजरात मार्ग से आगरे को रवाना हो गया। जाननिसार ख़ाँ को एक फर्मान के साथ, जिसमें अनेक प्रकार की कृपाएँ तथा मंसब, जागीर व दक्षिण की सूबेदारी की पहिले ही तरह पर बहाली लिखी हुई थी, खानजहाँ लोदी के पास बुर्हानपुर भेजा, जिसमें उसको बादशाही कृपा की सूचना देते हुए उसके विचार का पता लेवे क्योंकि उसकी दुश्शीलता और मनोमालिन्य में कोई शंका नहीं थी। उसका भाग्य और लक्ष्मी चंचल हो चुकी थी इसलिए फरमान पाने पर उसने उत्तर दिया कि मैंने अपने सिर को हवा को दे दिया। उसने उक्त ख़ाँ को

उत्तर न देकर विदा कर दिया। इसने अहमदाबाद में सेवा में पहुँचकर जलूस के दिन दो हजारी १००० सवार का मंसब और डंका, निशान, हाथी तथा पंद्रह सहस्र रुपये नगद पाया। तीसरे वर्ष दियानतखाँ दस्त-बियाज़ी के स्थान पर अहमदनगर का दुर्गाध्यक्ष हुआ और इसे चालीस सहस्र रुपया सेना के व्यय मद्धे मिला। ४थे वर्ष दर्बार पहुँचने पर पाँच सदी ५०० सवार इसके मंसब में बढ़ाए गए और यह लक्खी जंगल का फौजदार नियत हुआ। यहाँ से यह सिविस्तान की फौजदारी पर भेजा गया। ११ वें वर्ष में दुर्ग कंधार को बादशाही सेना ने घेर लिया और आसपास के फौजदार तथा सूबेदार अपनी सहायता लेकर वहाँ पहुँचे। उक्त खाँ भी अपने ताल्लुके से शीघ्रता से आकर काम में लग गया। कंधार के सूबेदार क़ुलीज खाँ के साथ बुस्त के दुर्ग लेने में इसने प्रयत्न किया। १२ वें वर्ष में ५०० सवार और इसके मंसब में बढ़ाए गए तथा यह सिविस्तान से भक्कर जाकर यूसुफ मुहम्मद खाँ के बदले वहाँ का शासक हुआ। उसी वर्ष वहीं यह मर गया। ज़खीरतुल् ख़वानीन के लेखक ने लिखा है कि सिविस्तान के शासन-काल में वहाँ के बहुत से जमींदारों की पुत्रियों से, जो सीमजः और सोढ़ जाति की थीं, मँगनी की थी, और इसी कारण इसका शासन अच्छा हुआ और उनमें विद्रोह या उपद्रव के लक्षण नहीं रहे। इसके अनंतर जब इसकी मृत्यु हो गई तब हर एक ज़मींदार अपनी पुत्री को इसके घर से बलात् खींचकर ले गया। स्यात् ऐसी घटना भक्कर में प्रचलित थी क्योंकि इसकी सीमा सिविस्तान तक पहुँचती थी। इसकी मृत्यु सिविस्तान के शासन-समय में नहीं हुई। इसके पुत्र मिर्जा

हफ़ीज़ुल्ला ने, जो पुरानी सेवा के कारण लड़कपन में दो वार पुरस्कृत हो चुका था, औरंगज़ेब के समय में वसालत खाँ की पदवी पाई। बीजापुर के घेरे में यह शाहज़ादा मुहम्मद आज़म की सेना का वख्शी था। थोड़े समय में उस कार्य को इसने जान लिया। वह हर समय खाया करता था, जिससे इसकी मृत्यु हो गई।

जान निसार ख़ाँ

इसका नाम ख्वाजः अबुल् मकारम था। आरंभ में यह शाहज़ादा मुहम्मद मुअज़्ज़म के विश्वासपात्र सेवकों में से था। जिस समय सुल्तान महम्मद अकबर विद्रोह कर तथा राजपूतों से मिलकर भारी सेना के साथ पिता के विरुद्ध रवाना हुआ, उस समय सुल्तान अकबर की सेना की खबर बादशाह को कम पहुँची थी। ख्वाजः अबुल् मकारम ने शाहज़ादा महम्मद मुअज़्ज़म की ओर से हरावल नियत होकर महम्मद अकबर के क़रावलों से सामना किया और युद्ध के अनंतर घायल हो लौट आया। इसी बहाने इसका बादशाह से परिचय हो गया और इसके अनंतर नौसदी मंसब और जाननिसार खाँ की पदवी पाकर उक्त शाहजादे के साथ राम दर्रा की चढ़ाई पर नियत हुआ। सातगाँव के घेरे में बहुत परिश्रम कर यह घायल हुआ। जब उक्त शाहज़ादा आज्ञानुसार लौटकर अबुलहसन कुतुबशाह पर नियत हुआ तब यह भी साथ भेजा गया और शाहजादे के संकेत पर गढ़ी सर्म विजय करने जाकर उसी में थाना बना ठहर गया तथा उसमें से निकलकर अबुलहसन की सेनाओं को परास्त किया। गोलकुंडा की चढ़ाई और घेरे में बड़ी वीरता दिखलाकर यह घायल हुआ। ३३ वें वर्ष में यशम पत्थर की मूठ व साज का खंजर पाकर शत्रु को दमन करने पर नियत हुआ। दूसरे वर्ष खिलअत और हाथी पाया। इसने कई बार

अच्छा प्रयत्न किया था, इसलिए बादशाह की इस पर कृपा थी। इसके अनंतर जब संताजी घोरपदे से कर्णाटक में युद्ध हुआ तब दैवयोग से शाही सेना परास्त हुई। उक्त खाँ घायल होकर जान बचा कर निकल आया। इसके अनंतर ग्वालियर का फौजदार तथा दुर्गाध्यक्ष होकर इसने संतोष किया।

जब औरंगजेब की मृत्यु हो गई तब यह बहादुर शाह का पुराना सेवक होते और उन्नति की आशा रखते हुए भी आजमशाह को पास में देखकर आज़मशाह और सुलतान मुहम्मद अज़ीम को प्रार्थनापत्र लिखा कि मैं सेवा के लिए आना चाहता हूँ परंतु मुझको लिवा जाने के लिए दूसरी ओर से सेना नियत है। जितनी जल्दी हो सकेगा सेना तथा रसद ढोनेवालों को लेकर पहुँचता हूँ। इसी समय बहादुर शाह के आगरे पहुँच जाने का वृत्तांत सुन कर फुर्ती से उसके पास पहुँच गया। बादशाह को पहिले से मालूम हो चुका था कि जाननिसार खाँ चार पाँच सहस्र सवारों के साथ महम्मद अजीम के पास पहुँच गया है और यह कार्य उसकी इच्छा के विरुद्ध हुआ था। महम्मद आज़मशाह के मारे जाने पर लज्जा के कारण कुछ ठहरकर सेवा में पहुँचा। इसका मंसब बढ़कर चार हजारी २००० सवार का हो गया और डंका पाया। इसके अनंतर बहादुरशाह की मृत्यु पर फर्रुख़सियर के युद्ध में यह जहाँदार शाह की सेना के दाहिने भाग में था। इसके अनंतर फर्रुखसियर की सेवा में उपस्थित हुआ। जब हुसेन अली खाँ दक्षिण का नाजिम होकर वहाँ पहुँचा और शत्रु[1] को चौथ तथा दस रुपए प्रतिशत

१ शत्रु से यहाँ मराठों से तात्पर्य है।

शिरदेशमुखी कर देना निश्चय कर इसने संधि कर लिया तव यह वात वादशाह को पसंद नहीं आई। जाननिसार खाँ, जो स्वभाव को समझनेवाला, अनुभवी तथा अब्दुल्ला खाँ के साथ पढ़ा हुआ था, ६ ठे वर्ष बुरहानपुर की सूवेदारी परभेजा गया कि हुसेन अली खाँको समझा कर ठीक रास्ते पर लावे। अकवर-पुर उतार पहुँचने पर हुसेन अली खाँ ने यह जानकर कि उसके पास सेना नहीं है, अपनी सेना भेजकर उसे औरंगावाद वुला लिया। प्रगट में खाने पीने का सामान भेजने, सम्मान करने और संवोधन में चचा कहने में बड़ा उत्साह दिखलाया पर बुरहानपुर पर अधिकार देने में ढिलाई करता रहा। रवी फसल के वीतने पर इस शर्त पर अधिकार दिला दिया कि वह अपने वड़े पुत्र दाराव खाँ को बुरहानपुर भेजे और स्वयं उसके साथ रहे। जव हुसेन अली खाँ ने राजधानी जाने का विचार किया तव उक्त खाँ पर विश्वास नहीं करने और बुरहानपुर के निवासियों के दाराव खाँ के विरुद्ध फर्याद करने पर उसके स्थान पर सैफुद्दीन अली खाँ को नियत कर इसको अपने साथ लिवा गया। इसके वाद का हाल नहीं ज्ञात हुआ। इसे दो पुत्र थे—एक दाराव खाँ तथा दूसरा कामयाव खाँ। ये दोनों आलम अलीखाँ के युद्ध में निज़ामुल्-मुल्क आसफजाह के साथ थे। दूसरा युद्ध में घायल हुआ। पहिला खानजहाँ वहादुर कोका आलमगीरी का दामाद था। जाननिसार खाँ की पुत्री, जो इसकी वहिन थी, एतमादुद्दौला क़मरुद्दीन खाँ को व्याही थी, इसलिए इसको पिता की पदवी देकर महम्मदशाह के समय में इलाहावाद के अंत-र्गत कोड़ा जहानावाद सरकार का फ़ौजदार नियत किया। सात

साल वहाँ रहकर १४ वें वर्ष में वहाँ के ज़मींदार भगवंतसिंह[१] के हाथ मारा गया।

---

१ असोथर के राजा भगवंतसिंह खीची। इस युद्ध का विवरण भगवंतरासो में विस्तार से दिया है। देखिए काशी, नागरी प्रचारिणी पत्रिका नया संदर्भ भाग ५ पृ० १०५-१३१।

जान सिपार खाँ

यह मुख्तार खाँ सब्जवारी का तृतीय पुत्र था। इसका नाम मीर बहादुर दिल था। जिस समय औरंगजेब बादशाहत लेने की इच्छा से राजधानी की ओर चला उस समय यह भी अपने बड़े भाई मीर शम्सुद्दीन मुख्तार खाँ के साथ शाही सेना में जा मिला। उन युद्धों में, जो उक्त शाहजादे को घमंडी शत्रुओं से करने पड़े थे, इसने बहुत अच्छी सेवा की तथा साहस दिखलाया था। दाराशिकोह के युद्ध के अनंतर इसका मंसब बढ़कर एक हजारी ५०० सवार का हो गया और जान-सिपार खाँ की पदवी मिली। इसके बाद बाहरी कामों पर नियत होकर अपनी अच्छी सेवा और अच्छे व्यवहार से अपना सम्मान बढ़ाता गया। २४वें वर्ष में बीदर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। हैदराबाद के विजय के अनंतर यह ज़फ़राबाद का फौज-दार नियत हुआ। जब बादशाह उस नए विजित प्रांत के प्रबंध से निपट कर लौटते हुए ज़फ़राबाद के पास बीदर में ठहरे तब तैलंग के सुलतान अबुल्हसन ने, जिसने अपने पंद्रह वर्ष के शासनकाल में विषय वासना में डूबे हुए हैदराबाद नगर से एक कोस बाहर सिवाय गोलकुंडा मुहम्मद नगर जाने के और कभी कहीं यात्रा नहीं की थी और जिसके लिए प्रति दिन की सवारी कठिन थी, फकीर हो जाने की प्रार्थना की। वास्तव में औरंग-जेब भी उसकी चालों से, क्योंकि उसका स्वभाव हठी था,

अपने हृदय में मालिन्य जमा किए हुए था, इस कारण जो बर्ताव उसने बीजापुर के विजय के अनंतर वहाँ के शासक सिकंदर के साथ किया था वैसा अबुल्हसन के साथ नहीं किया। यहाँ तक कि उसे सामने भी नहीं बुलाया। पहिले ही दिन से उसे नजरबंद कर रक्खा। इसलिए उक्त खाँ, जो बीदर का फौजदार था, उसे दौलताबाद दुर्ग तक पहुँचाने के लिए नियत हुआ, जिसमें बची अवस्था वहीं आराम से व्यतीत करे। इसके अनंतर यह हैदराबाद का सूबेदार नियत हुआ, जो प्रांत उपजाऊ और आबाद था, विशेषकर उस समय जब क़ुतुबशाही वंश ने वहाँ का बहुत अच्छा प्रबंध कर रखा था। यह बहुत दिनों तक उस प्रांत में अपनी योग्यता के कारण रहा। अमीरुल् उमरा शायस्ता खाँ और आक़िल खाँ ख़वाफी के सिवाय कम सूबेदार एक साथ इतने समय तक एक सूबेदारी पर बराबर रहे होंगे। ४५वें वर्ष सन् १११३ हि० (सन् १७०२ ई०) में यह मर गया। इसके योग्य पुत्र रुस्तमदिल ख़ाँ[1] का हाल अलग दिया गया है।

---

१ इसी ग्रंथ के चौथे भाग में देखिए।

जान सिपार ख़ाँ ख़्वाजः बाबा

यह नक़ीब ख़ाँ क़ज़्वीनी का भतीजा था। जहाँगीर के राज्य काल में जाँबाज़ ख़ाँ की पदवी पाकर एक हजार चार सदी मंसब तक पहुँचा था। शाहजहाँ के प्रथम वर्ष में सेवा में पहुँचने पर इसका मंसब बहाल रहा। तीसरे वर्ष इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी ६०० सवार का हो गया। बहुत दिनों तक मंदसोर का फौजदार नियत रहा। १८ वें वर्ष सन् १०५५ हि० (सन् १६४५ ई०) में इसकी मृत्यु हुई। शाहजहाँनामा की १० वर्षीय दूसरी सूची से मालूम होता है कि यह जान सिपार ख़ाँ की पदवी और दो हजारी १००० सवार के मंसब तक पहुँच चुका था। इस वर्ष की कोई घटना देखने में नहीं आई।

जान सिपार खाँ तुर्कमान

इसका नाम जहाँगीर बेग था और यह जहाँगीर का एक सर्दार था। दक्षिण प्रांत में नियत होकर यह वहाँ बहुत दिनों तक रहा। अपने कार्य-कौशल तथा साहस से इसने बादशाह का बहुत अच्छा काम किया। जब दक्षिण का कार्य सुलतान पर्वेज के बुरहानपुर में बहुत दिनों तक रहने, भारी सेनाओं के साथ अच्छे सरदारों के नियुक्त होने और बड़े कोषों के व्यय होने पर भी पूरा नहीं हुआ और दक्षिणियों ने मलिक अंबर से मिलकर बालाघाट के महालों पर अधिकार कर लिया तब निरुपाय होकर ११ वें वर्ष में उस प्रांत के कार्यों को ठीक करने के लिए सुलतान ख़ुर्रम भेजा गया, जिसे विजय के बाद शाहजहाँ की पदवी मिली थी। इसके सौभाग्य से दक्षिणियों की बुद्धि ठिकाने आ गई और विद्रोह तथा उपद्रव छोड़कर उन्होंने अधीनता स्वीकार कर लिया। बादशाही राज्य में लूट मार करना छोड़कर तथा मालगुजारी देना स्वीकार कर आज्ञाकारी हो गए। १२ वें वर्ष में शाहजादे ने दक्षिण में नियुक्त तथा साथवालों को, जिसे उचित समझा, स्थान स्थान का फौजदार और थानेदार नियुक्त किया। जहाँगीर बेग पर विशेष कृपाकर जालनापुर थाना और उसके आसपास की भूमि पर अधिकार करने भेजा, जो दौलताबाद से पचीस कोस पर है और उस समय के बालाघाट के अच्छे थानों में से था तथा बादशाही मंसबदारों में से बहुत से अपनी सेना और सेवकों के साथ वहाँ नियत हो चुके

। इसके अनंतर दक्षिण के कुछ उपद्रवी प्रतिज्ञा तोड़कर बादशाही महलों में लूट मार मचाने लगे और बालाघाट ही पर संतोष न कर बुरहानपुर तक उपद्रव करने लगे। लाचार होकर शाहजादा शाहजहाँ दूसरी बार दक्षिण आया और १६वें वर्ष के आरंभ में बुरहानपुर में आकर ठहरा तथा वहीं से भारी सेनाएँ निज़ामशाह और मलिक अंबर को दंड देने के लिए नियुक्त कीं। अनेक युद्धों के अनंतर, जिनमें हर बार बादशाही सेना विजय प्राप्त करती थी, मलिक अंबर ने शाहज़ादा का ऐसा प्रभाव देखकर अधीनता स्वीकार कर ली और लज्जा के कारण नम्रता दिखलाई। हर एक सर्दार ने वर्षाऋतु के अंत तक बालाघाट के महालों में समय व्यतीत किया। जानसियार ख़ाँ भी तीन सहस्र सवारों के साथ बीड़ में ठहरा रहा। थाने फिर नए सिरे से बाँटे जा रहे थे, इसलिए इसका मंसब बढ़ाकर इसे बीड़ का थानेदार नियत किया। १९वें वर्ष में अहमदनगर के अंतर्गत भातुरी मौजे में मलिक अंबर और मुल्ला महम्मद लारी में, जो बीजापुर का प्रधान सेनापति और अमात्य था तथा जिसे वहाँ का शासक आदिलशाह सम्बोधन और पत्र व्यवहार में मुल्ला बाबा कहता था, युद्ध हुआ और दुर्भाग्य से मुल्ला मारा गया। इससे सेना का प्रबंध बिगड़ गया और बादशाही सर्दार, जो मुल्ला की सहायता के लिए आए थे, कैद हो गए परंतु खंजर ख़ाँ अहमदनगर में जा रहा और जान सिपार ख़ाँ ने अपनी जागीर में फुर्ती से पहुँच कर बीड़ दुर्ग को दृढ़ कर लिया। जहाँगीर की मृत्यु-काल के कुछ पहले ख़ानजहाँ लोदी ने बालाघाट प्रांत निज़ामशाह को दे दिया

और बादशाही सर्दारों के नाम, जो उन थानों में थे, लिख भेजा कि उस महाल को निज़ामशाह के आदमियों को सौंपकर बुरहानपुर लौट आवें। उक्त खाँ भी खानजहाँ की आज्ञा मान कर उसके पास चला गया। थोड़े दिन भी नहीं बीते थे कि शाहजहाँ हिन्दुस्तान का बादशाह हुआ। उक्त खाँ भी जलूस के आरंभ में फुर्ती से सेवा में पहुँचकर मंसब में डेढ़ हजारी १००० सवार बढ़ने से चार हजारी ३००० सवार का मंसबदार होकर तथा डंका-झंडा पाकर सम्मानित हुआ और जहाँगीर कुली खाँ के स्थान पर यह इलाहाबाद का सूबेदार नियत हुआ। परंतु आकाश के फेर ने, जो सदा फिसाद करता रहता है, हर एक सुख में इच्छा पूरी नहीं होने देता, सफलता रूपी मद में असफलता की खुमारी मिला देता है, सुख-रूपी स्वच्छ जल को गँदला करता है, प्याला भरने नहीं पाता कि फिर खाली कर देता है और पृष्ठ पूरा नहीं हो पाता कि उसे उलट देता है, इसी वर्ष इसकी अवस्था पूरी कर दी। इसके पुत्र इमाम कुली को एक हजारी ४०० सवार का मंसब मिला था। शाहजहाँ के तीसरे वर्ष में दक्षिण के सूबेदार आज़म खाँ के साथ इसने एक दिन जब बालाघाट में आदिलशाही तथा निज़ामशाही सेना के चंदावल पर धावा किया और सेना का सर्दार मुलतफित खाँ भाग गया तब यह कुछ अच्छे सैनिकों के साथ वीरता से युद्ध करता रहा और वहीं मारा गया। ज़ानसिपार खाँ का एक भाई मुर्तज़ा कुली खाँ था, जिसे एक हज़ारी ६०० सवार का मंसब मिला था। यह १० वें वर्ष में दक्षिण में मर गया।

जानी बेग अर्गून, मिर्ज़ा

यह शंकल वेग तर्खान के वंश में था। जब इसका पिता अतकूतमर तकतमश खाँ की चढ़ाई में वीरता से लड़कर मारा गया तब तैमूरलंग साहिब-किराँ ने छोटी अवस्था ही में कृपाकर इसको तरखान का पद दिया। हलाकू खाँ के पुत्र इवाग़ा खाँ के पुत्र अर्गून खाँ तक इससे चार पीढ़ी होती है। न्यायी राजे भली प्रकृतिवाले कुछ नौकरों को कुछ 'करो मत करो' कहकर इसी प्रकार के नाम से प्रसिद्ध बना देते हैं। साहिब-क़िरानी तरख़ान को नक़ीब लोग किसी स्थान में जाने से रोक नहीं सकते थे और नौ दोष तक उससे या उसके पुत्रों से नहीं पूछते थे। चंगेज़ खाँ ने क़शलीक़ और बाता को इसी पद के कारण दंड से, जिन्होंने शत्रु को सूचना दे दी थी, क्षमा कर दिया, उन्हें आज्ञा के बोझ से हलका कर दिया और उनके लूट का बादशाही भाग उन्हीं को छोड़ दिया। कुछ तरख़ानों को सात वस्तु देकर सम्मानित किया। तब्ल, तूमानतोग, नक्कारः और अपने चुने हुए दो आदमियों को कशूनतोग, अर्थात् चतरतोग देते। ये तरकश भी रखते थे। मुग़लों में नियम है कि सिवा राजा के कोई तरकस हाथ पर नहीं रख सकता। शिकारगाह भी इनके लिए रक्षित था और जो कोई अन्य उसमें जाता, वह नौकर ही होता था। ये अपनी जाति के स्वयं सर्दार होते। दरबार में दोनों ओर सर्दारगण इन कमानदारों से दूर बैठते थे।

तुग़लक़तमूर ने अमीर लूलाजी पर यही कृपा की थी। एक सहस्र तक देना लेना उसके लिए क्षमा था और उसके पुत्रों से नौ दोष तक कुछ न पूछा जाता था। जब नौ गुनाह से अधिक होता तब पूछा जाता। खून के बदले में दो साल के नुक़रा घोड़े पर बैठाते। घोड़े के पैर के नीचे सफेद नमदा डालते थे। उसकी प्रार्थना एक बड़े बर्लास सर्दार पहुँचाते और उसका उत्तर एक अरकेवत सर्दार उसके पास ले जाता। बाद को शहरग उसको खोलते और दोनों सर्दार दो ओर से देखते रहते, जिसमें उसका कार्य पूरा हो जाता। उस समय शाही स्थान से लिवा आकर शोक के साथ बैठाते थे। ख़िज़्र ख्वाजा मीर खुदादाद को यह पद मिला था और अन्य तीन बढ़ाए गए थे। मजलिस के दिन, जब सब बड़े सर्दार पैदल रहते और एक शाही यसावल सवार होकर आदमियों को ,रोकता रहता तब, ऐसे लोग उससे भी आगे रहते थे। उस प्रसन्नता की मजलिस में स्वामी के सामने एक प्याला जिस प्रकार रखा जाता है उसी प्रकार इसके भी आगे बाईं ओर से एक प्याला रखते थे। इसकी मुहर शाही फर्मानों पर सामने की ओर रहती थी पर शाही सिक्का अंतिम पंक्ति के ऊपर रहता और इसका उसके नीचे। शेख अबुल्फ़ज़्ल कहता है कि ये सब कृपाएँ यदि समझ कर की जाती थीं तो संसार के स्रष्टा की प्रसन्नता के बराबर थीं। यह कि नौ गुनाह तक, चाहे जिस प्रकार का भी हो, न पूछें ऐसे में सभ्यता का लेश भी नहीं है। यदि दूरदर्शी बड़ों ने अनुभव करके निश्चय किया हो कि इससे ऐसे दुष्कार्य नहीं किए जाते थे और केवल मर्यादा बढ़ाने को ऐसी आज्ञा होती थी, तो कुछ ठीक है पर

यह कि बाद को नौ पेट तक न पूछा जाय इसमें शक्तिमान ईश्वर ने उसको भविष्य-ज्ञान देने में करामात ही कर दिया है।

मिर्ज़ा के चौथे पितामह अब्दुल्ख़ालिक के पुत्र मिर्ज़ा अब्दुल्अली को मिर्ज़ा अबुसईद के पुत्र सुलतान महमूद के यहाँ से उच्च पद तथा बुख़ारा का शासन मिला। शैबानी ख़ाँ उज़्बक इसके पहले यहाँ था। जब यह शासक हुआ तब उसने विद्रोह कर अपने स्वामी को पाँच पुत्रों के साथ मार डाला। छठा मिर्ज़ा ईसा छ महीने का था। अर्गून जातिवाले सर्दार हीन होकर मावरुन्नहर छोड़ ख़ुरासान में मीर ज़ुलनून बेग अर्गून के यहाँ चले आए, जो सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा का प्रधान सेनापति, अमीरुल्उमरा तथा उसके पुत्र बदीउल्ज़माँ मिर्ज़ा का अभिभावक और कंधार का जागीरदार था। जब बदीउल्ज़माँ मिर्ज़ा दुष्टता से सुलतान हुसेन मिर्ज़ा से बिगड़ गया तब मीर ज़ुलनून बेग ने उसका साथ देकर अपनी पुत्री उसे दे दिया। इसके अनंतर जब मिर्ज़ा हुसेन का समय पूरा हो गया तब दोनों पुत्र बदीउल्ज़माँ और मुज़फ़्फ़र मिर्ज़ा गद्दी पर बैठ गए। ख़ुरासन में कुप्रबंध मच गया। शैबानी ख़ाँ ने चढ़ाई की और युद्ध में अमीर ज़ुल-नून मारा गया। इसका पुत्र शुजाअ बेग प्रसिद्ध नाम शाहबेग कंधार की रक्षा करता था। इसने सन् ८९० हि०, सन् १४८५ ई० में सिंध के शासक जाम निज़ामुद्दीन प्रसिद्ध नाम जाम नंदा से सीवी दुर्ग ले लिया।

प्राचीन काल में सिंध का शासन सुमर जाति के हाथ में था। पाँच सौ साल बीतने पर, छत्तीस राजाओं के राज्य करने के बाद सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ के राज्यकाल के अंत में

जादून जाति के सुमः उपजाति का अधिकार हो गया। ये अपने को जमशेद के वंश का बतलाते थे और प्रत्येक अपने को जाम कहता था। दिल्ली के सुलतान को ये कर देते थे पर कभी कभी विद्रोह भी करते थे। सुलतान फ़ीरोज़शाह पानभत्ता के समय तीन बार सिंध पर सेना ले गया और उसे दिल्ली ले आया तथा उस प्रांत को सेवकों को सौंपा। इसके अनंतर उसका भलप्पन समझकर उसे फिर वहाँ का शासन दिया।

जब दिल्ली का राज्य निर्बल हो गया तब गुजरात के शासकों से सहायता पाने के लिए उनसे संबंध किया पर शाहबेग की इस प्रांत पर दृष्टि गड़ी हुई थी इसलिए उसने आसानी से भक्कर और सिविस्तान पर अधिकार कर लिया। जब जाम नंदा मर गया तब उसके पुत्र जाम फ़ीरोज़ तथा उसके एक दामाद जाम सलाहुद्दीन ने राज्य के लिए झगड़ा किया और दूसरा गुजरात के सुलतान 'महमूद की सहायता से विजयी हुआ। निरुपाय होकर जाम फ़ीरोज़ शाह बेग से प्रार्थी हुआ और उसने सेना साथ कर दिया। दैवयोग से जाम सलाहुद्दीन मारा गया और जाम फ़ीरोज़ विजयी हो गया। जब बाबर बादशाह ने काबुल से आकर कंधार घेर लिया तब ,शाहबेग ने यथाशक्ति प्रयत्न किए पर जब लाभ न देखा तब निरुपाय हो कंधार से मन हटाकर ठट्टा के आसपास की भूमि के सहित अपने अधिकार में कर लिया। इसकी तारीख 'खराबीए सिंध' है। जाम फ़ीरोज़ सामना न कर सका और गुजरात जाकर सुलतान बहादुर के सर्दारों में भर्ती हो गया। शाहबेग ने सिंध प्रांत में अपने नाम सिक्का और ख़ुतबा चला दिया। यह वीर पुरुष, विद्वान

और गुणी था। शरह अक़ायद लसफी, शरह काफिय: और शरह मुतालअ इसी की रचनाएँ हैं। इसने लंगाहों से मुलतान भी ले लिया था।

जब सन् ९३० हि०, सन् १४२४ ई० में यह मर गया तब इसका पुत्र मिर्ज़ा शाहहुसेन अर्गून गद्दी पर बैठा। भक्कर दुर्ग को, जो पंजाब नदी के बीच एक टापू पर बना हुआ है, पुनः नए सिरे से ठीक कर उसमें भारी इमारतें बनवाईं और मुलतान की ओर गया। वहाँ का हाकिम सुलतान महमूद लंगाह उसी समय मर गया। उसका पुत्र सुलतान हुसेन लंगाह उसका उत्तराधिकारी हुआ। मिर्ज़ा शाहहुसेन ने मुलतान का घेरा कर सन् ९३२ हि० में उस पर अधिकार कर लिया और उसमें अपनी ओर से शासक नियत कर दिया। हुमायूँ अपनी असफलता के समय इसके यहाँ गया और इसने कुछ दिन तक ऊपरी आवभगत से अपने यहाँ रखा। इसके अनंतर नासिर मिर्ज़ा को, जो हुमायूँ का चाचा था, अपना दामाद बनाने की प्रतिज्ञा कर मिला लिया और इससे लड़ने को तैयार हुआ। निरुपाय हो हुमायूँ एराक़ को रवाना हुआ। नासिर मिर्ज़ा से भी इसने वादा पूरा नहीं किया। कहते हैं कि शाहहुसेन को गर्मी का रोग था, जिससे नदी के बीच की ठंढी हवा के बिना उसे आराम नहीं मिलता था। इसी कारण नाव में सवार होकर छ महीना नदी के नीचे की ओर जाता और छ महीना ऊपर की ओर जाता। जिस समय वह भक्कर की ओर गया हुआ था उस समय कुछ अर्गून सर्दारों ने उससे बिगड़ कर अब्दुलअली के पुत्र मिर्ज़ा ईसा को सर्दार बनाया, जो मिर्ज़ा का तीसरा पूर्वज था

और पहले समय जाति की सर्दारी इसके पूर्वजों ही में थी। मिर्जा शाह हुसेन सुलतान महमूद की सहायता को, जो उसका धायभाई था और भक्कर का अध्यक्ष था, ससैन्य आया। संधि की बात हुई और तीन भाग मिर्जा ईसा को तथा दो भाग उसको निश्चय हुआ। जब वह सन् ९६३ हि०, सन् १५५६ई० में मर गया तब कुल राज्य मिर्जा ईसा को मिल गया। यह भी सन् ९७५ हि०, सन् १५६८ ई० में मर गया। इसके पुत्रों मुहम्मद बाक़ी और जानबाबा में झगड़ा हुआ और बड़ा भाई मुहम्मद बाक़ी विजयी होकर शासक हुआ। सन् ९९३ हि०, सन् १५८५ ई० में पागलपन के बढ़ जाने से तलवार की मूठ दीवाल में अड़ाकर नोक को पेट में घुसेड़ कर मर गया। अर्गूनियों ने उसके पुत्र मिर्ज़ा पायंदः मुहम्मद के नाम सर्दारी निश्चित कर, जो एकांत प्रेमी तथा पागल सा था, राज्य का कार्यभार उसके पुत्र मिर्ज़ा जानी बेग को सौंपा।

जिस समय अकबर पंजाब प्रांत में चौदह वर्ष तक रहा था, उस समय पास होते हुए भी मिर्ज़ा सेवा में नहीं उपस्थित हुआ। ३५वें वर्ष के अंत में सन् ९९९ हि०, सन् १५९१ ई० में ख़ानख़ानाँ को, जो लाहौर से कंधार विजय करने पर नियत हुआ था, आज्ञा हुई कि किसी को भेजकर उसे सतर्क कर दे और लौटते समय उसे दंड दे। खानखानाँ को मुलतान और भक्कर जागीर में मिला था। गजनी और बंगश के पास के रास्ते को जागीर के प्रबंध की शंका से छोड़कर लंबा मार्ग लिया। इसी बीच ठट्टा की उन्नति चाहनेवाले सेवकगण लौट आए। ख़ानख़ानाँ ने सिंध पर अधिकार करने की आज्ञा माँग ली।

मिर्ज़ा जानीबेग ने भारी सेना के साथ सिविस्तान की सीमा पर डेढ़ सौ कोस आगे बढ़कर सामना किया और वीरतापूर्ण कई युद्ध हुए। सन् १००० हि० के मुहर्रम महीने में मिर्ज़ा पराजित हुआ और तब उसने निरुपाय होकर संधि कर ली। ३८वें वर्ष सन् १००१ हि० में खानखानाँ के साथ लाहौर में अकबर की सेवा में आया। इसे तीनहजारी मंसब और मुल्तान प्रांत की सूबेदारी मिली तथा सिंध में मिर्ज़ा शाहरुख नियत हुआ। परंतु इसी समय समाचार मिला कि अर्गूनी लोग दस सहस्र पुरुष और स्त्री नावों पर सवार होकर ऊपर की ओर आ रहे हैं। देश से जाने के कारण मल्लाहों तथा खिदमतगारों को छोड़ आए हैं और स्वयं अपने हाथों और दाँतों से खींच रहे हैं। अकबर ने दया और मुरौवत से मिर्ज़ा को सिंध प्रांत का शासन दे दिया और लाहरी बंदर खालसा कर सिविस्तान सरकार को दूसरे आदमियों को वेतन में दे दिया, जिसे पहले ही भेंट कर चुका था। ४२वें वर्ष में इसका मंसब साढ़े तीन हजारी हो गया। मिर्ज़ा बुद्धिमानी तथा समझदारी में पूर्ण था और बातचीत में सच्चा तथा भला था। कार्यों तथा उठने बैठने का उसका धीमा-पन तथा मिलनसारी आदर्श थी। छोटी अवस्था ही से मदिरा प्रेमी था पर कभी उन्मत्त नहीं हुआ। काम करने या कहने में बहुत सतर्क रहता। मदिरापान से यह अस्वस्थ हो गया और कँपकँपी से सरेसाम रोग हो गया। ४५वें वर्ष सन् १००८ हि० (सन् १६०० ई०) में यह बुर्हानपुर में असीरगढ़-विजय के अनंतर मर गया।

कहते हैं कि एक दिन मजलिस में इसने कहा कि यदि ऐसा

दुर्ग अर्थात् आसीरगढ़ मेरे पास होता तो सौ वर्ष तक न देता। सुननेवालों ने बादशाह तक इसे पहुँचा दिया। बादशाह के हृदय में उसकी ओर से मालिन्य आ गया पर इसी समय उसकी मृत्यु हो गई। यह कवि-हृदय रखता था और इसका उपनाम हलीमी था। उसके एक क़िता का नीचे अर्थ दिया जाता है—

वह समय अच्छा था जब प्रेम सहनशील था।
रात्रि में आह भरना और सवेरे रोना काम था॥
आकाश के बुरे चक्र ने मुझे नहीं छोड़ा।
शोक की पूंजी बाज़ार की शोभा थी॥

सिंध प्रांत भक्कर से कच्छ और मकरान तक दो सौ सत्तावन कोस लंबा और कस्बा बदीन से बंदर लाहरी तक सौ कोस चौड़ा था। कस्बा चांदर से, जो भक्कर के अंतर्गत है, बीकानेर तक साठ कोस है। इसके पूर्व में गुजरात, उत्तर में भक्कर और सीवी, दक्षिण में समुद्र और पश्चिम में कच्छ है। दूसरे प्रांत का मकरान लंबाई में १०२ दर्जा तथा ३० दक़ीक़ा और चौड़ाई में २४ दर्जा १० दक़ीक़ा है। पहले ब्रह्मनाबाद राजधानी थी, जिसे अब ठट्टा व दयेल कहते हैं। यह अच्छे जल, हवा और मेवों के आधिक्य के लिए प्रसिद्ध है। हरियाली की शोभा अधिक है और सुख आराम करने के यहाँ के निवासी विशेष प्रेमी हैं। हर गृह में मदिरापान तथा गाना होता रहता है। स्त्रियों के वस्त्र वृद्धा तथा युवती सभी के रंगीन कुसुंभी रंग के होते थे। यद्यपि विद्या का प्रचार अधिक था और विद्वान तथा गुणी भी बहुत थे पर कुकर्म तथा व्यभिचार की अवि नहीं थी।

प्रति सप्ताह अच्छे भले आदमी पीर पट्ठा की मजार पर जाते हैं, जो उस प्रांत का मालिक है और नगर से एक फर्सख पर ऊँचे मौजे पर बना है। यह शेख बहाउद्दीन ज़िकरिया का शिष्य था। इसका नाम इब्राहीम और अल्ह शाहआलम था। उत्तरी पहाड़ की कई शाखाएँ थीं, एक कंधार तक गई थी और दूसरी समुद्र से कोह मार कस्बे तक, जिसे रामगिरि कहते हैं, सिविस्तान में समाप्त होती है। उस स्थान को समवी भी कहते हैं। वहाँ बड़ी जाति बलूच बसती है और इसको कलमानी या कलमाती कहते हैं। यहाँ बीस सहस्र गृह हैं। यहीं से चुनकर ऊँट ले जाते हैं। दूसरे सिविस्तान से सीवी तक के स्थान को खर कहते हैं। तहमर्दी समूह के रक्षक तीन सौ सवार और सात सहस्र पैदल थे। इस गरोह के नीचे दूसरे बलूची हैं, जो एक सहस्र हैं और जहरी नाम से प्रसिद्ध हैं। यहाँ से अच्छे घोड़े निकलते हैं। दूसरा एक पहाड़ है, जिसका एक सिरा कच्छ और दूसरा कलमानी मनुष्यों तक पहुँचता है। इसे कार: कहते हैं और इसमें चार सहस्र बलूच रहते हैं। मुलतान और अच्छ की सीमा से ठट्टा तक उत्तरी ओर ऊँचे पथरीले पहाड़ थे और उसमें बलूचियों के झुंड के झुंड रहते थे। दक्षिण की ओर अच्छ से गुजरात तक रेग के पहाड़ हैं, जो शोभा से खाली होते भी अनेक प्रकार के हैं। भक्कर से नसरीवर (नसरपुर) तथा अमरकोट तक साद, जाड़ेचा तथा अन्य लोग बसे हुए हैं। यहाँ का जाड़ा कपड़े का मुहताज नहीं अर्थात् अधिक नहीं और गर्मी सिविस्तान को छोड़कर साधारण है। अनेक प्रकार के मेवे और अच्छा आम बहुत होता है। जंगल में खरबूजा आप से आप

होता है। फूल बहुत होते हैं और धान भी बहुत और अच्छा होता है। निमक और लोहे की भी खानें है। दही अच्छी होती है और चार महीने तक मिलती है। एक प्रकार की मछली जिसे पलव: कहते हैं, बड़ी सुस्वादु होती है। इस प्रांत में अन्न बहुत होता है और तिहाई भाग में खेती होती है। पाँच सरकार तथा तिरपन परगने इसमें हैं। इसकी आय छ करोड़ साठ लाख बावन सहस्र छ,सौ तिरान्नबे दाम है।

इस समय कुल सिंध प्रांत खुदायार खाँ लती के हाथ में है। बहुत दिनों से वह ठट्टा प्रांत सिविस्तान तथा भक्कर सरकारों के साथ बादशाही सरकार से इजारे की तौर पर लिए हुए था। इसके अनंतर जब सिंध नदी के उस पार का कुल देश नादिर-शाह को प्रतिज्ञापत्र के अनुसार मिल गया तब उसकी ओर से भी उस प्रांत के शासन पर उक्त खाँ नियत हुआ।

इस देश की बड़ी घटनाओं में कलेजा खानेवालों का हाल है। उसको डाइनें कहते हैं; जो आदमी हैं पर दृष्टि तथा जादू से जिगर निकाल लेती हैं।* कुछ कहते हैं कि धीरे धीरे उसकी वैसी हालत होती है। जिस पर दृष्टि पड़ती है वह वेहोश हो जाता है। उस समय अनारदाने सी वस्तु उस आदमी में से निकाल लेती है। कुछ देर उसे पिंडली में रखती है और उस समय जिगर निकल जाने से वह वेहोश रहता है। जब उपाय से निराश हो जाते हैं तब उस वस्तु को आग में डाल देती हैं। वह तबक-सा चौड़ा हो जाता है और उसे अपने समान लोगों में बाँटकर खा जाती हैं। इधर वह वेहोश मर जाता है। जिसको अपने समान बनाना चाहती हैं उसे भी इसी का एक टुकड़ा देती

हैं और जादू वतलाती हैं। जव ये पकड़ी जाती हैं तव इनकी पिंडली खोलकर उस अनारदाने को निकालते हैं और उस पीड़ित को खाने को देते हैं जिससे वह अच्छा हो जाता है। पहिले स्त्रियाँ ही होती थीं, जिन्हें पत्थर बाँधकर नदी में डाल देते थे पर वे नष्ट नहीं होती थीं। जव चाहते कि इसी प्रकार का वना लें तव दोनों पिंडलियों और जोड़ों पर दागते और आँखों में निमक छोड़कर गृह में भूमि पर चालीस दिन लटका रखते तथा विना निमक का खाना देते। कुछ लोग मंत्र पढ़ते। इस समय उसे धजरः कहते। यद्यपि उसमें शक्ति न रह जाती पर होश रहता था। उसके प्राण पर चोट पहुँचानेवाला पकड़ कर लाया जाता और वह जादू पढ़कर या कुछ खिलाकर उसको स्वस्थ कर देता।

जाफर ख़ाँ

यह वास्तव में ब्राह्मण का लड़का था। हाजी शफीअ इस्फ़हानी ने इसे खरीद कर इसका मुहम्मद हादी नाम रखा और अपने लड़के के समान इसे पाला और शिक्षा दी। उसके साथ यह ईरान गया। उसकी मृत्यु पर यह दक्षिण लौटकर बरार प्रांत के दीवान हादी अब्दुल्ला खुरासानी का कुछ दिन के लिए नौकर हो गया। इसके बाद बादशाही सेवा में आकर औरंगजेब के समय योग्य मंसब और कारतलब खाँ की पदवी पाकर यह दक्षिण प्रांत में नियत हुआ। कुछ दिन यह हैदराबाद का दीवान रहा। इसके बाद बंगाल प्रांत की दीवानी पर यह ज़िया-उल्ला खाँ के स्थान पर नियत हुआ और इसे मुर्शिद कुली खाँ की पदवी मिली। जिस समय मुहम्मद फर्रुखसियर अपने चाचा जहाँदार शाह से युद्ध करने के लिए आगरे की ओर चला उस समय उसने हैदरबेग को कुछ आदमियों के साथ बंगाल प्रांत भेजा कि वहाँ का कोष ले आवे। इसने युद्ध कर उसे परास्त कर लौटा दिया। जब फर्रुख़सियर बादशाह हुआ तब अफरासियाब खाँ मिर्जा जमीरी का भाई रशीद खाँ वहाँ का सूबेदार नियुक्त होकर आया पर वह भी युद्ध कर मारा गया। उक्त खाँ ने जगत सेठ साहु के द्वारा, जो उस प्रांत के विश्वस्त धनवानों में से एक था, बहुत धन व्यय कर उस प्रांत की सूबेदारी, सात हजारी ७००० सवार का मंसब और मोतमिनुल् मुल्क अलाउद्दौला जाफर खाँ बहादुर असद्‌जंग की पदवी प्राप्त की। बहुत वर्षों तक

वहाँ रहकर सन् १०३८ हि० (सन् १६२९ ई०) में मर गया। मुर्शिदाबाद इसी का बसाया हुआ है। कहते हैं कि शासन-कार्य में यह बहुत कुशल था। इसने गंदगी से भरा हुआ एक खलिहान बनवा कर उसका बैकुंठ नाम रखा था और जमींदारों को उसी में कैद करता था। बैकुंठ हिंद की भाषा में स्वर्ग को कहते हैं, जो उनके विश्वास में बहुत अच्छा स्थान है।

इसके अनंतर इसका दामाद शुजाउद्दीन मुहम्मद खाँ बहादुर, जो मिर्जा दक्षिणी के नाम से प्रसिद्ध था, फुर्ती कर मुर्शिदाबाद में आ पहुँचा और महम्मद शाह बादशाह से अच्छा मंसब मोतमिनुल् मुल्क शुजाउद्दौला बहादुर असद खाँ की पदवी और उस प्रांत का शासन प्राप्त कर लिया। यह बुरहानपुर का रहने वाला था। इसके पिता का नाम नूरुद्दीन अफ़शार था, जिसका एक पूर्वज अली यार सुलतान शाह तहमास्प के समय खुरासान के अंतर्गत फराह का शासक था और वह स्वयं औरंगाबाद प्रांत के एलकंदल का ताल्लुकेदार था। जाफर खाँ की बंगाल की सूबेदारी के समय यह उड़ीसा का शासक था। इसने उक्त खलिहान को तोड़वाकर जमीन्दारों को छोड़ दिया। यह तेरह वर्ष शासन कर सन् ११५२ हि० (सन् १७३९ ई०) में मर गया। 'रौनक़ अज बंगाल रफ्त' (बंगाल से शोभा गई) से मरने की तारीख निकलती है।

इसका पुत्र अलाउद्दौला सरफ़राज़ खाँ बहादुर हैदरगंज, जिसका नाम मिर्जा असदुद्दीन था, बंगाल का शासक नियत हुआ। दस महीने के अनंतर सन् ११५३ हि० में यह अलीवर्दी खाँ के हाथ मारा गया, जो इसके पिता का बढ़ाया हुआ

एक सर्दार था। मुर्शिदकुली ख़ाँ बहादुर रुस्तम जंग सरफ़राज़ ख़ाँ का बहनोई था। इसका नाम मिर्ज़ा लुत्फ़ुल्लाह था और इसका पिता हाजी शुकरुल्ला तबरेज़ी ईरान से हिन्दुस्तान आकर सूरत में रहने लगा था। वहीं मिर्ज़ा लुत्फ़ुल्लाह पैदा हुआ। अवस्था प्राप्त होने पर विद्या सीखकर यह व्यापार के लिए बंगाल गया। शुजाउद्दौला ने इसकी योग्यता देखकर अपनी पुत्री से इसका निकाह कर दिया। पहिले लुत्फ़ अली ख़ाँ और जाफ़र ख़ाँ के मरने के बाद मुर्शिद कुली ख़ाँ की पदवी मिली। उस समय यह उड़ीसा का शासक था। जब अलीवर्दी ख़ाँ सरफ़राज ख़ाँ को मार कर उस ओर चला तब इसने भी सेना एकत्र कर सामना किया और परास्त होने पर दक्षिण चला गया। सन् ११५४ हि० में फिर सेना एकत्र कर यह उड़ीसा आया। अलीवर्दी खाँ के भाई हाजी मुहम्मद के पुत्र सईद मुहम्मद खाँ को कैद कर लिया, जो उड़ीसा में उसका प्रतिनिधि था। अलीवर्दी ख़ाँ ने दोनों के साथ उड़ीसा जाकर वहाँ के शासक को परास्त कर दिया। इसके अनंतर वह दक्षिण आया। निज़ामुल्मुल्क आसफजाह ने उस पर कृपा करके जागीर दी और अपना मुसाहिब बना लिया। यह सन् ११६४ हि० (सन् १७५१ ई०) में मर गया। 'मख़मूर' उपनाम से शेर भी कहता था। इसका एक शेर इसका प्रकार है—

मत समझ कि वृद्धों से संगीन (भारी या पत्थर का) काम पूरा नहीं होता
बाल की लेखनी (कूची) से पहाड़ की सूरत पैदा हो जाती है॥

इसकी स्त्री मेहमान बेगम के नाम से मशहूर थी और शुजाउद्दौला की पुत्री थी। यह बहुत दिनों तक जीवित रही

और हैदराबाद में अपने पति के खरीदे हुए मकान में रहती थी। इसका पुत्र यहिया ख़ाँ औरंगाबाद के अंतर्गत खनपुरा का दुर्गाध्यक्ष रहा। लिखने के समय के कुछ वर्ष पहिले नौकरी छोड़कर यहाँ से चला गया।

जाफ़र ख़ाँ उमदतुलमुल्क

यह सादिक ख़ाँ मीर वख़्शी का पुत्र और यमीनुद्दौला आसफ ख़ाँ का भांजा और दामाद था। इसकी स्त्री फरज़ानः वेगम उर्फ़ बीबी जी थी। इसके बाल्यकालही से इस पर बादशाह की कृपा रही और उसके अनंतर अपनी योग्यता तथा सेवा से इसने अपने ऊपर बादशाह की कृपा बनाए रखी। जब इसका पिता मर गया तब स्नेह के कारण औरंगजेब को शोक मनाने के लिए इसके यहाँ भेजा था कि बादशाही कृपा दिखलाकर इसको इसके भाइयों के साथ सान्त्वना देवे। जब सेवा में पहुँचा तब इसका मंसब एक हजारी ५०० सवार बढ़ाकर चार हजारी २००० सवार का कर दिया। इसके अनंतर सच्ची कृपा बहाना या कारण नहीं चाहती और हार्दिक दया बहाना नहीं ढूँढ़ती है? ७वें वर्ष में बादशाह के इसके गृह पर जाने से यह विशेष सम्मानित हुआ। १०वें वर्ष उक्त ख़ाँ ने अनेक प्रकार के रत्न और अच्छी वस्तुएँ भेंट दीं। लगभग एक लाख रुपये का सामान कृपा करके स्वीकार किया गया और इसको पाँच हज़ारी ३००० सवार का मंसब देकर सम्मानित किया। इसके अनंतर कुछ दिन तक कोपभाजन रह कर फिर यह असीम कृपा का पात्र हुआ। १९वें वर्ष में यह पंजाब का सूबेदार नियत हुआ। २०वें वर्ष के अंत में ख़लीलुल्लाह के स्थान पर मीर बख़्शी के ऊँचे पद पर यह नियुक्त हुआ। २३वें वर्ष में मकरमत ख़ाँ के स्थान पर यह दिल्ली का सूबेदार नियत हुआ। २४वें वर्ष में ठट्टा प्रांत

वस्तुएँ भी थीं। १३ वें वर्ष सन १०८१ हि० में दिल्ली में उक्त खाँ रोग ग्रस्त हुआ, जो बढ़ती गई और अंत में यह मर गया।[1] औरंगजेब इस समय दो बार इसके घर पर देखने और शोक मनाने गया था। शाहजादा मुहम्मद आज़म और मुहम्मद अकबर को इसके पुत्रों नामदार खाँ और कामगार खाँ के घर शोक मनाने और उनकी माता फ़रज़ानः बेगम को सान्त्वना देने के लिए भेजा। इन दोनों के लिए एक एक खास खिलअत और उनकी माँ के लिए अवसर के अनुकूल संदेश भेजा। इसके अनंतर शाहजादा मुहम्मद अकबर उन दोनों को शोक से उठाकर दरबार लाया। हर एक को जड़ाऊ खंजर, जिसमें मोतियाँ लटकाई गई थीं, देकर और अनेक प्रकार की कृपा और खातिरदारी कर सम्मानित किया। इसके संबंधियों और साथियों को भी मातमी खिलअत मिले।

जाफर खाँ पिछले समय के सर्दारों में अपने विवेक और हितेच्छा के कारण बहुत प्रसिद्ध था। इसकी दयालुता और अच्छे गुण तथा सुशीलता और उच्च विचार सभी में विख्यात थे। कहते हैं कि इसको बहुमूल्य श्वेतवस्त्र अधिक पसंद थे। मालवा प्रांत के अन्तर्गत धार के क़ाजी ने यह सुनकर इसके शासन काल में बहुत महीन सूत बड़े प्रयत्न से तैयार कराकर उसके कुछ थान जामे वार के बनवाए, जिनमें प्रत्येक थान का मूल्य पचास रुपयों से कम नहीं था और इन सबको भेंट कर दिया।

---

१. २५ ज़ीहिज्जा, जेठ व० १२ सं० १७१७ को मृत्यु हुई थी। [illegible] और कामगार खाँ के लिए १४९ वाँ और १३ वाँ शीर्षक [illegible]।

का नाज़िम सईद खाँ के स्थान पर हुआ। ३०वें वर्ष में यह दरबार आया। जब किसी कारण से मुअज़्ज़म खाँ वजीर के पद से हटाया गया तब ३१वें वर्ष में यह प्रधान अमात्य नियत हुआ और जड़ाऊ कलमदान पाकर सम्मानित हुआ। दाराशिकोह के युद्ध के अनंतर जब औरंगज़ेब नूरमंज़िल बाग में ठहरा हुआ था तब जाफर खाँ, जो शाहजहाँ की सेवा में था, सभी बादशाही सेवकों के साथ उसके पास उपस्थित हुआ। दिल्ली के पास एज़ाबाद में प्रथम बार राजगद्दी हुई पर उस समय दाराशिकोह का पीछा करने के लिए पंजाब जाने का औरंगजेब ने निश्चय किया क्योंकि ऐसे कार्य में देर करना नीतियुक्त नहीं था। इसलिए राजगद्दी के कुल उत्सव आदि पूरा करने का कार्य दूसरी राजगद्दी के समय तक के लिए रोक दिए गए। जाफ़र खाँ मालवा का सूबेदार नियत हुआ। इसका मंसब १००० सवार दो अस्पा सेह अस्पा के बढ़ने से छ हज़ारी ६००० सवार दोअस्पा सेहअस्पा का हो गया। जब छठे वर्ष में बड़ा दीवान फ़ाज़िल खाँ कश्मीर में मर गया तब जाफ़र खाँ को बुलाने को आज्ञापत्र भेजा गया। उस प्रांत से बादशाह के राजधानी आते समय पानीपत में यह सन् १०७९ हि० में बादशाही सेवा में पहुँचा। गुण ग्राहकता से इसे प्रधान मंत्री का पद दिया क्योंकि यह सर्दार अपनी योग्यता तथा शील के कारण उस पद के उपयुक्त था। इस ऐश्वर्यशाली सर्दार ने जमुना के किनारे बहुत बड़ी इमारत बनवाकर सजाया था और इसका सम्मान बढ़ाने के लिए बादशाह दो बार आठवें तथा नवें वर्ष में उसके घर पर गए। उक्त खाँ ने सभी शाही प्रथाएँ पूरी कर बहुत बड़ी भेंट दी जिसमें अप्राप्य

वस्तुएँ भी थीं। १३ वें वर्ष सन् १०८१ हि० में दिल्ली में उक्त ख़ाँ रोग ग्रस्त हुआ, जो बढ़ती गई और अंत में यह मर गया।[1] औरंगजेब इस समय दो बार इसके घर पर देखने और शोक मनाने गया था। शाहजादा मुहम्मद आज़म और मुहम्मद अकबर को इसके पुत्रों नामदार खाँ और कामगार खाँ के घर शोक मनाने और उनकी माता फ़रज़ान: बेगम को सान्त्वना देने के लिए भेजा। इन दोनों के लिए एक एक ख़ास ख़िलअत और उनकी माँ के लिए अवसर के अनुकूल संदेश भेजा। इसके अनंतर शाहजादा मुहम्मद अकबर उन दोनों को शोक से उठाकर दरबार लाया। हर एक को जड़ाऊ खंजर, जिसमें मोतियाँ लटकाई गई थीं, देकर और अनेक प्रकार की कृपा और खातिरदारी कर सम्मानित किया। इसके संबंधियों और साथियों को भी मातमी खिलअत मिले।

जाफर खाँ पिछले समय के सर्दारों में अपने विवेक और हितेच्छा के कारण बहुत प्रसिद्ध था। इसकी दयालुता और अच्छे गुण तथा सुशीलता और उच्च विचार सभी में विख्यात थे। कहते हैं कि इसको बहुमूल्य श्वेतवस्त्र अधिक पसंद थे। मालवा प्रांत के अन्तर्गत धार के क़ाज़ी ने यह सुनकर इसके शासन काल में बहुत महीन सूत बड़े प्रयत्न से तैयार कराकर उसके कुछ थान जामे वार के बनवाए, जिनमें प्रत्येक थान का मूल्य पचास रुपयों से कम नहीं था और इन सबको भेंट कर दिया।

---

१. २५ जीहिज्जा, जेठ व० १२ सं० १७१७ को मृत्यु हुई थी। नामदार खाँ और कामगार खाँ के लिए १४९ वाँ और १३ वाँ शीर्षक इसी भाग में देखिए।

जाफर खाँ ने उनको मँगाकर देखा और क्रुद्ध होकर कहा कि बहुत गंदा है, खर्च कर डालो। क़ाज़ी ने सम्मान के साथ प्रार्थना की कि चांदनी के उपयुक्त समझकर यह साहस किया था। इसपर बहुत प्रसन्न होकर चांदनी बनवाने के लिए आज्ञा दे दी। इसके भूख की तीव्रता और चटोरपन की बहुत सी कहानियाँ कही जाती हैं। कहते हैं कि एक दिन तरबूज इसके पास ले आए, जिसमें मिठास बहुत थी। संतुष्ट होकर इसने कहा कि ऐसा नहीं खाया था, परंतु इसमें मछली की बू आती है। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वह तरबूज कोंकण का था, जिस प्रांत में मछली के टुकड़े मिट्टी में मिले हुए खेतों में पाए जाते हैं।

जाफ़र ख़ाँ तकलू

यह क़ज़्ज़ाक़ ख़ाँ का लड़का था, जिसका पिता महम्मद ख़ाँ शरफ़ुद्दीन उग़ली तकलू हुमायूँ बादशाह के ईरान से लौटते समय हेरात और शाह तहमास्प सफवी के बड़े पुत्र लिह्रा सुलतान महम्मद मिर्ज़ा का शासक था। शाह ने एक आज्ञापत्र, जो मुरौव्वत के नियमों के अनुकूल था इसको हुमायूँ का आतिथ्य करने को लिखा। इसने भी सेवा का पूरा प्रबंध, जो ऐसे अतिथियों के लिए योग्य है. कर प्रशंसा का पात्र हुआ। इसकी मृत्यु पर क़ज़्ज़ाक़ ख़ाँ अपने पिता के समान लिह्रामिर्ज़ा और खुरासान का शासक होकर घमंड के मारे विद्रोही हो गया। शाह ने सन् ९७२ हि० में प्रधान मंत्री मासूमबेग सफ़वी की सर्दारी में उस पर सेना भेजी। क़ज्ज़क़ ख़ाँ के दैवात् इसी समय बीमार हो जाने से उसकी सेना में गड़बड़ मच गया। निरुपाय होकर सुलतान महम्मद के साथ इख्तियारुद्दीन के दुर्ग में जा बैठा। शाही सेना ने हिरात पहुँचकर क़ज़्ज़ाक़ ख़ाँ को प्रतिज्ञा कर नीचे बुलाया। उसी अवस्था में वह मर गया। उसका सब सामान व माल मासूमबेग के हाथ लगा। इस घटना के अनंतर जाफ़रबेग, जो योग्यता और साहस के कारण अपने पिता का विश्वासपात्र था, खुरासान से अकबर की शरण में चला आया और इसपर कृपा भी हुई। सन् ९७३ हि० में खानजमाँ शैबानी का पीछा करने में बादशाह के साथ रहा। इसके अनन्तर अलीक़ुली ख़ाँ के दोषों को इस शर्त पर क्षमा किया

गया कि जब तक बादशाही सेना उस सीमा में है तब तक वह गंगा पार न करे और इसके अनंतर बादशाह चुनार दुर्ग घूमने के लिये गए। खानज़माँ जल्दी के मारे और दुःशीलता से नदी पार कर गया। अकबर ने यह समाचार पाकर स्वयं उस पर धावा किया। जाफर खाँ वेग से ग़ाज़ीपुर पहुँचा और उसकी बहुत सी नावों को, जो माल से भरी हुई थीं, अधिकार कर लिया, जिससे उसकी प्रशंसा हुई और एक हज़ारी मंसब तथा ख़ाँ की पदवी मिली।

ज़ाहिद ख़ाँ

यह सादिक़ ख़ाँ हरवी का लड़का था। अकबर के ४० वें वर्ष तक साढ़े तीन सदी मंसब तक पहुँचा था। जब इसका पिता दक्षिण में मर गया तब ४७ वें वर्ष में यह सेवा में पहुँचा। ४९ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़ा और इसने ख़ाँ की पदवी पाई। जहाँगीर की राजगद्दी के समय इसका मंसब बढ़कर दो हज़ारी हो गया। इसके अनंतर राव दलपत भुरटिया को दंड देने पर ससैन्य नियत होकर इसने ऐसा काम दिखलाया कि इसकी प्रशंसा हुई।

जाहिद खाँ कोका

इसकी माता हूरी खानम शाहजहाँ की बड़ी पुत्री (जहाँ-आरा) बेगम साहबा की धाय थी। उस बादशाह के १३ वें वर्ष में जाहिद खाँ नूरुद्दौला के स्थान पर दोआब का फौजदार नियत हुआ। १४ वें वर्ष में इसने खाँ की पदवी पाई और इसका मंसब बढ़कर एक हजारी १००० सवार का हो गया तथा यह दक्षिण में नियत हुआ। १५ वें वर्ष में यह शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब के साथ दरबार आया। १७ वें वर्ष इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया। इसके अनंतर पाँच सदी २०० सवार बढ़े और यह क़रावल बेग नियत हुआ। १८ वें वर्ष में बेगम साहबा के अच्छे होने के जलसे में, जो आग से जल गई थीं, इसे खिलअत, जड़ाऊ जमधर, झंडा और हाथी मिला तथा इसका मंसब बढ़कर दो हजारी १५०० सवार का हो गया। इसके अनंतर यह क़ौशबेग पद पर नियत हुआ। १९ वें वर्ष में २४ रज्जब सन् १०५५ हि० को यह बीमार हो गया। हकीम दाऊद तक़र्रुब खाँ ने फसद खोलने के लिए बहुत कहा पर इसने स्वीकार नहीं किया और मर गया।

कहते हैं कि यह बड़ा विषयी था और उद्दंडता से बातें करता था। एक दिन बेगम साहबा ने इसकी सिफ़ारिश करके इसको एक शाहजादे के घर पर भेजा। शाहजादे ने सन्मान के साथ अपने पास बुलवा कर कहा कि तुम्हारे बारे में बेगम

साहबा ने सिफ़ारिश की है, ईश्वरेच्छा से तुम्हारी तरक्की में प्रयत्न किया जायगा। इसने उत्तर दिया कि लँगड़े और अंधे की सिफ़ारिश होनी चाहिए, मैं इन दोषों से बरी हूँ, यदि मुझे उन्नति के योग्य समझें तो करें नहीं तो खैर। यह मित्रों का हितैषी था। इसके पुत्रों में से एक फ़ैजुल्ला ख़ाँ था, जिसका वृत्तांत अलग दिया हुआ है। दूसरा महम्मद आबिद था, जिसने औरंगजेब के १३ वें वर्ष में डेढ़ हजारी ३०० सवार का मंसब और नवाज़िश ख़ाँ की पदवी पाई थी।

ज़ियाउद्दौला मुहम्मद हफ़ीज़

यह ख्वाजः सादुद्दीन का लड़का था, जो पहिले सुलतान जहाँ शाह का सेवक था और क़ोरबेगी तथा अर्ज़ मुकर्रर के पदों पर नियत था। उक्त शाहज़ादा के भ्रातृ-युद्ध में मारे जाने पर यह निज़ामुल्मुल्क आसफजाह के साथ जाकर उस ऊच्चपदस्थ सर्दार की सरकार में खानसामाँ नियत हुआ। सैयद दिलावर अली खाँ के युद्ध में यह भी साथ था। आलम अली खाँ के युद्ध के अनंतर यह तीन हज़ारी २००० सवार का मंसब, बहादुर की पदवी और डंका पाकर प्रसन्न हुआ। इसके अनंतर जब सुलतान जहाँ शाह का पुत्र मुहम्मद शाह बादशाह हुआ तब यह आसफजाह से बिदा होकर राजधानी गया और बादशाही सेवा में पहुँचकर पहिले अर्ज़ मुकर्रर और फिर बयूताती काम पर नियत हुआ। अंत में इसके साथ ही मीर आतिश भी नियुक्त हो गया। इसकी मृत्यु पर इसके पुत्र ने पिता की पदवी, पैतृक ताल्लुका और खानसामाँ का पद पाया। क्रमशः अच्छा मंसब और ज़ियाउद्दौला की पदवी पाई। कहते हैं कि साम्राज्य का काम बिगड़ने पर यह दिल्ली में बैठा रहा। इसका व्यय इसकी जागीर से चलता था। जवाहिर सिंह जाट के युद्ध में यह नजीबुद्दौला के साथ था। सन् ११७९ हि० (सन् १७६५ ई०) में यह मर गया।

१

ज़िकरिया खाँ बहादुर हिज़ब्र जंग

यह सैफ़ुद्दौला अब्दुस्समद खाँ[१] का पुत्र था, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है। यह अपने पिता के समय उसी के स्थान पर लाहौर का सूबेदार नियत हुआ। इसका शील और न्याय सब के मुँह से सुन पड़ता था। पिता की मृत्यु पर इसी के साथ इसे मुलतान की भी सूबेदारी मिल गई और लाहौर के पास उसने दो विजय पाई। एक युद्ध में पनाह नामक भट्टी विद्रोही पर, जिसने हसन अब्दाल से रावी तक अधिकार कर रखा था, राजा कौड़ामल के अधीन सेना नियत किया, जिसने उसे पकड़ कर मार डाला। दूसरे में उसने मीरमार[१] नामक जमींदार पर, जो लाहौर और सतलज के बीच लूट पाट मचाया करता था, क़ज़्ज़ाक बेग खाँ को सेना सहित भेजा, जिसने उसे पकड़कर शूली दे दी। नादिर शाह के आने पर यह उसका मुकाबला न कर सका और उसकी अधीनता स्वीकार कर उसी काम पर बहाल रहा टते समय नादिर शाह ने पूछा कि तू क्या चाहता है? इसने कैदियों को, जो सेना में थे, छुटकारा देने के लिये प्रार्थना किया तब चोबदार नियुक्त हुए। शाहजहानाबाद के कैदियों ने इस प्रकार छुट्टी पाई। सन् ११५२ हि० में नादिर के बुलाने पर यहाँ से सिंध जाकर सन् ११५८ हि० (सन् १७४५ ई०) में मर गया। बड़ा पुत्र मीर यहिआ खाँ था, जिसने अंत में दरवेशी में समय व्यतीत किया। दूसरा पुत्र मिर्ज़ा फिलौरी हया-

तुल्ला खाँ था, जिसे नादिर शाह की ओर से शाह नवाज खाँ की पदवी मिली और वह मुलतान में नियत हुआ। यह एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ के पुत्र तथा लाहौर के नाज़िम मीर मन्नू मुईनुल्मुल्क की सेना से युद्ध कर मारा गया। तृतीय पुत्र ख्वाजा बाकी खाँ था, जो निज़ामुद्दौला आसफ़जाह के राज्य में आकर इस समय एज़ुद्दौला हिज़ब्र जंग की पदवी पाकर कालयापन करता है। ग्रंथकर्ता से इससे जान पहचान है।

१ मआसिरुल्उमरा भाग २ का ४९ वाँ शीर्षक देखिये।

ज़ुल्क़द्र खाँ तुर्कमान

इसका पीरीआक़ा नाम था। यह काबुल में नियुक्त मंसब-दारों में से एक था। शाहजहाँ के ग्यारहवें जुलूसी वर्ष में जब कंधार का दुर्गाध्यक्ष अलीमर्दान खाँ फ़ारस के शाह से सशंकित होकर हिंदुस्तान के बादशाह की ओर होना चाहता था, तब काबुल के सूबेदार सईद खाँ ने शाही इच्छानुसार इसको ठीक हाल जानने को उक्त खाँ के पास भेजा। यह वहाँ से जल्दी चलकर अलीमर्दान खाँ के प्रार्थना-पत्र सहित साथियों के साथ लौट आया और आगरे में सेवा में पहुँचने पर इसका मंसब बढ़कर एक हजारी ५०० सवार का हो गया। जब अली-मर्दान खाँ के आने पर काश्मीर की सर्दारी उसे मिली तब ज़ुल्क़द्र खाँ भी उक्त प्रांत में नियत हुआ। १३ वें वर्ष में अली-मर्दान खाँ की प्रार्थना पर १०० सवार इसके मंसब में और बढ़े। फिर उस समय जब बादशाह काश्मीर गए तब इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया और पुर-स्कार में घोड़ा मिला। १४ वें वर्ष में २०० सवार मंसब में और बढ़े। १५ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दो हजारी १६०० सवार का हो गया। फिर यह ग़ज़नी का अध्यक्ष नियत हुआ और १७ वें वर्ष में झंडा पाने से इसकी प्रतिष्ठा बढ़ी। १९ वें वर्ष में शाहज़ादा मुरादबख्श के साथ, जो बलूख और बदख्शाँ पर अधिकार करने के लिए भेजा गया था, वहाँ गया।

२० वें वर्ष में नजर मुहम्मद खाँ के घोड़ों के साथ लौटकर बाद-शाह की सेवा में आया। काबुल की क़िलेदारी तथा निम्न बंगश के साथ ऊपरी बंगश की अध्यक्षता मिली जिसपर यह पहिले से नियत था और इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी हो गया। साथ ही चाँदी की जीन सहित घोड़ा इसे मिला और यह १५ लाख रुपयों के साथ शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब के पास बल्ख भेजा गया। २१वें वर्ष में जब शाहजादा वहाँ से हिंदुस्तान की ओर रवाना हुआ तब इसको साथ के कोष की रक्षा पर नियुक्त किया। घाटी पार करने में हजारों और अलमानों के साथ दो बार युद्ध हुआ और इसने स्वामिभक्ति से कोष की रक्षा के लिए प्रयत्न किया। बहादुर खाँ रुहेला के आ मिलने से, जो सेना के पीछे था और इसके प्रयत्न से कोष काबुल सुरक्षित पहुँच गया। इसी वर्ष १०५७ हि० (सन् १६४७ ई०) में यह मर गया।

ज़ुल्फ़िकार खाँ

इसका नाम मुहम्मद बेग था। यह औरंगज़ेब की शाहज़ादगी के समय का अच्छा नौकर था। मीर आतिश के पद पर उक्त शाह ने इसे नियत किया था। जब शाही झंडा साम्राज्य लेने की इच्छा से बुर्हानपुर में राजधानी आगरे की ओर जाने को खड़ा हुआ तब इसे ज़ुल्फ़िकार खाँ की उपाधि मिली। सब युद्धों में आगे खेमा ले जाकर स्थान पर लगवाने का कार्य इसे मिला था। हरावली में अग्गल नियत होकर यह युद्ध में वीरता का झंडा बराबर ऊँचा रखता। जब महाराज जसवंत के साथ के युद्ध में राजपूत सर्दार औरंगजेब के तोपखाने के पास पहुँच कर लड़ाई करने लगे तब उन वीरों के धावों से युद्ध में मुर्शिद कुली खाँ, जो तोपखाने का सर्दार था, वीरता दिखला कर मारा गया तब ज़ुल्फ़िक़ार खाँ हिंदुस्तान के वीरों की चाल पर कि जब युद्ध कठोर हो जाता है तब वे घोड़ों से उतर कर मरने मारने को तैयार हो जाते हैं, घोड़े से उतर पड़ा और शत्रु से दृढ़तापूर्वक युद्ध कर घायल हुआ। निडर शत्रु इससे आगे बढ़कर हरावल पर जा पहुँचे और इस ओर से उस खतरा के निकल जाने पर यह मारे जाने से निर्भय हो रहा। दाराशिकोह युद्ध वाले दिन जब कुशल सेनानियों की चाल के विरुद्ध व्यूह को बिगाड़ तोपखाने को पार कर उसके आगे बढ़ आया और दाहिने तथा बाएँ भाग दोनों ओर के अस्त व्यस्त हो

गए तब बहुत से सर्दार उस ओर के मारे गए। ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ ने सहायता का उपयुक्त अवसर जानकर साहस किया तथा बड़ी वीरता से मध्य पर धावा किया। गर्मी की अधिकता से शत्रु विना तीर और भालों ही के मर रहे थे। निरुपाय होकर अंत में दाराशिकोह भागा। इस युद्ध में भी ख़ाँ घायल हुआ। यहाँ से आलमगीर के आगरा पहुँचने पर शाहजहाँ की ओर से पत्र व संदेश के आने जाने और भेंट करने की इच्छा प्रकट करने पर और इस ओर से सेवा की इच्छा दिखलाने एवं क्षमा माँगने आदि का व्यवहार चलने लगा। औरंगजेब अपने पिता के प्रेम पर विश्वास नहीं कर पाया था कि शाहजहाँ ने दूरदर्शिता और रक्षा के लिए दुर्ग के बुर्ज आदि को दृढ़ कराया, जिससे बीच का पर्दा एक साथ ही उठ गया। ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ बहादुर ख़ाँ के साथ आलमगीर के संकेत से घेरे की इच्छा कर रात्रि को दुर्ग के पास पहुँचा। दुर्ग की दृढ़ता के कारण उसे विजय करना मन में नहीं ला सका तब दीवाल और पेड़ों की आड़ लेकर दोनों ओर से तीर गोले चलने लगे। दुर्ग के सैनिक बहुत कुछ स्वामिभक्ति और वीरता दिखलाकर जाने देने को तैयार रहे पर उमरा और मंसबदार लोग बुरी नीयत और कृतघ्नता से खिड़की के मार्ग से दरिया से होकर निकल गए और स्वामिद्रोह तथा कृतघ्नता प्रगट कर दिया। शाहजहाँ ने संसार के इस द्रोह को देखकर दूसरी बार स्वयं पत्र लिखा और फ़ाज़िल ख़ाँ के हाथ भेजा। यह काम पहिले से भिन्न था इसलिये इस समय पिता होने के और पालन-पोषण के स्वत्व को नहीं छिपाया। काम नष्ट हो रहा था और राज्य की

रक्षा कुछ वर्ष के लिये वह अब नहीं कर सकता था, क्योंकि उसका ऐश्वर्य और बड़प्पन पृथ्वी और आकाश के बीच में लुढ़क रहा था। शाहजादा ने इस बादशाही फर्मान के उत्तर में प्रार्थना की कि मैं दासता के संकीर्ण मार्ग पर दृढ़ हूँ पर इस घटना के हो जाने से, जो दैवी इच्छा से हुआ है, डर के कारण सेवा करने का साहस नहीं रखता। यदि कृपा करके दुर्ग का फाटक और भीतरी भाग मेरे मनुष्यों को मिल जायँ तो संतोष के साथ सेवा में उपस्थित होऊँ। यद्यपि यह कार्य बुद्धिमानी से दूर था पर कर्मानुसार शाहजहाँ ने इसे मान लिया। १५ रमज़ान सन् १०६९ हि० को सुलतान मुहम्मद ने ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ के साथ दुर्ग में जाकर फाटकों पर अधिकार कर शाही मनुष्यों को निकाल दिया। उसी महीने की २१ वीं को जब कि ३२वें वर्ष जुलूसी में ३ महीना कुछ दिन बीता था, उस बादशाह के अधिकार का अंत कर दिया गया। ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ, जो साथ देने और स्वामिभक्ति के कारण आलमगीरी सेवकों का सर्दार था, चार हज़ारी २००० सवार का मंसब, डंका और साठ सहस्र रुपया पाकर शाहजहाँ की रक्षा और दुर्ग आगरा की अध्यक्षता पर नियत हुआ।

उस समय जब आलमगीरी सेना दिल्ली से शुजाअ का सामना करने को नियत हो उस ओर चली तब ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ आज्ञानुसार दुर्ग रादअंदाज़ ख़ाँ को सौंप कर एक करोड़ रुपया और थोड़ी अशरफ़ी कोष से लेकर तोपख़ाना और अपने साथियों सहित इलाहाबाद शाहज़ादा सुलतान मुहम्मद के पास पहुँचा, जो हरावल की तौर पर आगे भेजा गया था।

व्यूह रचकर तथा भाले और तलवार को काम में लाकर शुजाअ बहुत से अपने पक्षवालों को कटाकर परास्त हो भागा। जुल्फ़िक़ार खाँ भी मुअज़्ज़म खाँ के साथ सुलतान मुहम्मद के संग भगैलों का पीछा करने पर नियत हुआ। इसके बाद सेनाध्यक्ष के साथ पीछा कर शुजाअ को कहीं ठहरने का अवसर न दिया और टाँडा से, जिसे अपनी रक्षा के लिए उसने ठीक किया था, जहाँगीर नगर चला गया। इसी समय में जुल्फ़िक़ार खाँ बहुत दिनों से कूच के अधिक परिश्रम से और बीमारी के बढ़ जाने से निर्बलता के कारण सवारी करने की तथा कंप के कष्ट उठाने की शक्ति खो बैठा, इसलिये इसकी प्रार्थना पर यह वहाँ से दर्बार बुला लिया गया। मुअज़्ज़म खाँ से बिदा होकर यह मुअज़्ज़म नगर आया। वहाँ से यह राजधानी की ओर आगे बढ़ा पर मार्ग में बीमारी के बढ़ जाने से सन् १०७० हि० के शाबान महीने में दूसरे जलूसी वर्ष के अंत में आगरा पहुँच कर मर गया। इसे पुत्र नहीं थे। इसकी मृत्यु के बाद तीसरे वर्ष में इसका दामाद मुहम्मद अमीन बेग ईरान से आया और बादशाही कृपा का पात्र हुआ।

ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ क़रामान्लू

इसका नाम खानलर था। यह फर्हाद खाँ करामानलू के छोटे भाई ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ का पुत्र था। फर्हाद ख़ाँ गत शाह अब्बास के बड़े सर्दारों में से एक था। फर्हाद ख़ाँ सन् १००७ हि० में दीनमुहम्मद ख़ाँ उज़बक के युद्ध में शाह की हरावली में था, पर अनुपम वीरता और साहस दिखलाने पर भी दोप लगाए जाने पर यह भागा। इससे शाह को इस पर विद्रोह का संशय हुआ। यद्यपि इसकी बुद्धिमानी और दुनियादारी से यह दूर था, कि इतना ऊँचा पद और ऐश्वर्य पाने पर, जो इसे शाह से मिला था, स्वामिद्रोह की चाल पकड़े पर जब शाह को यह जाँच से ठीक जान पड़ा तब उसने अलीवर्दी ख़ाँ को कई गुलामों सहित इसे मारने पर नियत किया। जब ख़ाँ ने इसके घर जाकर हाथ मिआन पर डाला और खंजर खींचा तब इसने जाना कि क्या रंग है! केवल इसने तुर्की में इतना ही कहा कि अंत यही हुआ।

जब फर्हाद ख़ाँ मारा जा चुका तब ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ, जो आज़रबईजाँ का अमीरुल्उमरा था तथा दरबार में रहता था, दुःख से स्वयं शाही महल में पहुँचकर मारे जाने की आशा से बैठ गया। वह नहीं जानता था कि उसको जीता छोड़ने की आज्ञा हुई है। शाह ने इस पर प्रसन्न होकर इसे खिलअत दिया। इसने प्रार्थना की कि जब।फरहाद ख़ाँ मारे जाने के

योग्य हो गया तब क्यों यह सेवा उसके उपयुक्त नहीं हुई ? इसके बाद जब .जुल्फ़िक़ार ख़ाँ को शर्वान की बेगलरबेगी स्थायी रूप से मिली तब दाग़िस्तान के कुछ कर्मचारी उससे विरुद्ध हो गए। सन् १००९ हि० में ईरान के शाह ने कशलाक कराबाग़ से करचग़ा बेग को, जो राज्य के हितैषियों में से था, शर्वान भेजा कि .ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ और वहाँ के अमीरों से मिलकर भयभीतों को पत्र लिखकर तथा उन्हें सान्त्वना देकर फिर राज-भक्त बना ले। इस पर भी जो कोई अब विद्रोह करे उसे दंड दिया जाय। जब करचग़ा बेग वहाँ सीमा पर पहुँचा तब एकाएक अकारण ही .ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ को मारने की शाह की आज्ञा मालूम हुई। करचग़ाबेग शाही धन पहुँचाने के बहाने उसके खेमे में गया और एकांत कराकर साथ के कुछ दासों से उसको दाएँ बाएँ घेरकर तलवार से मार डाला। बुद्धिमानों ने बतलाया कि इस क़त्ल का कारण दाग़िस्तान के षड्यंत्रकारी कर्मचारियों को प्रसन्न करने के सिवाय और कुछ नहीं था परंतु वह कारण समझदारी और बुद्धिमानी से बहुत दूर था। स्यात् शाह को इसका बुरा व्यवहार ज्ञात हो गया हो। यद्यपि सफवी सुलतानों का स्वभाव विशेषतः अत्याचार और निडरता के लिये प्रसिद्ध है और मुख्य कर मृत शाह अब्बास की निडरता तथा अत्याचार कज़िलबाशों की जाति की बराबरी का था। अंत यहाँ तक पहुँचा कि ईरान राज्य का प्रबंध अस्त व्यस्त हो गया। शाह तुच्छ कारणों पर उच्च पदस्थों को नीचे गिरा देता था और इस निंद्य चाल को राज्य की दृढ़ता का कारण समझता था। इसपर अकबर ने अत्याचार दूर करने को दो बार शाह को बहाने

से लिखा कि राज्य की नीति और कानूनी न्याय में हथकड़ी व कैदखाना इसी लिये पसंद किया गया है कि धूर्त विद्रोहियों और उपद्रवियों को बंद रखा जाय। आदमी नई बातें दिखाने-वाला तिलस्म है और कठिनाई से हल होने वाली पहेली है। एक अप्रसन्नता के कारण, जो उससे होगया हो, उसे न मार डालना चाहिए क्योंकि यह उच्चवंशस्थ मूल सिवाय ईश्वर के किसी से नहीं बनता। इसीलिये बुद्धिमान प्रबंधकर्ता इस ऊँचे महल की नींव को केवल नष्ट करने और ढहाने में जल्दी करना पसन्द नहीं करते। मिसरा का अर्थ—

कटे हुए सिर का पैवंद नहीं लगा सकते।

अस्तु, ज़ुल्फ़िक़ार खाँ के मारे जाने के बाद उसके अनुगामियों में गड़बड़ी हुई और शाह ने उन पर कुछ भी दया न की तब खानलर ईरान से भागा तथा जहाँगीर के राज्यकाल के अंत में हिन्दुस्तान आकर दरबार में पहुँचा। यमीनुद्दौला के बहनोई सादिक खाँ की पुत्री से इसका विवाह हुआ। शाहजहाँ के छठे वर्ष में पूर्वजों की पदवी पाने से इसकी इज़्ज़त बढ़ी। कुछ दिन बीतने पर इसने तीन हजारी मंसब पाया। उस बादशाह के राज्य के अंत में एकांतवास की चाल पर पटने में जाकर रहने लगा। जब शुजाअ खजवा युद्ध से भागकर उस नगर में आया तब उसने शीघ्रता में और दुःख से इसकी पुत्री को अपने बड़े पुत्र सुलतान जैनुद्दीन के लिये माँगा। आलमगीर के दूसरे वर्ष सन् १०७० हि० में यह लक़वा रोग से, जो उसके एकांतवास के कारण हो गया था, मर गया। यह गान विद्या का मर्मज्ञ, बातचीत में कुशल और अपने देश के वादन-विद्या का

झाता था। इस कार्य में ईरान के अच्छे अच्छे लोगों से बढ़ गया था। इसका पुत्र असद खाँ [1] अमीरुल्‌उमरा है, जिसका हाल अलग दिया है।

---

१. मआसिरुल्‌उमरा, हिंदी भाग २ का ८६ वाँ शीर्षक देखिए।

ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ नसरत जंग

इसका नाम मुहम्मद इस्माइल था। यह असद ख़ाँ आसफ़ुद्दौला का पुत्र था। सन् १०६७ हि० में आसफ ख़ाँ यमीनुद्दौला की पुत्री मेहरुन्निसा बेगम के पेट से इसका जन्म हुआ। इसकी तारीख 'ज़े बुर्जे असद रू नमूद आफ्ताब' (सिंह राशि से सूर्य उदय हुआ) से निकलती है। ११ वें वर्ष आलमगीरी में इसने तीन सदी का मंसब पाया। २० वें वर्ष में अमीरुल्उमरा शायस्ता ख़ाँ की पुत्री से निकाह होने पर इसका मंसब बढ़ा और इसे एतक़ाद ख़ाँ की पदवी मिली। २५ वें वर्ष के आरंभ में जब शाही झंडा अजमेर से दक्खिन को चला और ज़ुम्लतुल्मुल्क असद ख़ाँ को मुहम्मद अज़ीम सुलतान के साथ अजमेर में छोड़ा तब एतक़ाद ख़ाँ भी वहीं नियत हुआ। १२ ज़ीउल्क़दा को विद्रोही राठौड़ों से, जो मेड़ता में इकट्ठे होकर लूटमार कर रहे थे, बड़ी लड़ाई हुई। पाँच सौ शत्रुओं को और मृत महाराज जसवंत के सोनक या सोयक, साँवलदास तथा अन्य बड़े सर्दारों को, जो विद्रोह किया करते थे, मार डाला। इस पर इसकी उन्नति हुई और इसने प्रसिद्धि पाई। ३० वें वर्ष में कामगार ख़ाँ के स्थान पर यह ग़ुसुलख़ाने का दारोगा हुआ। शम्भाजी के पकड़े जाने के पहिले यह दुर्ग राहिरी, जिसमें वह सपरिवार रहता था, घेरने गया। १५ मुहर्रम सन ११०१ हि० को इसने उस दृढ़ दुर्ग को ले लिया तथा उसके पुत्रों और घर की स्त्रियों, जैसे माता और



ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ नसरतजंग

लड़की, को कैद कर लिया। इसके उपलक्ष में बादशाह ने तीन हजारी २००० सवार का मंसब और .ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ की पदवी देकर इसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। ३५ वें वर्ष में दुर्ग निरमल के विजयोपलक्ष में इसने चार हजारी मंसब पाया। यहाँ से यह दुर्ग चिंजी (जिंजी) पर, जहाँ शम्भा के भाई रामा (रामराजा) ने जाकर सौ हजार से अधिक सवार व पैदल सेना इकट्ठा किया था, नियत हुआ। खाँ ने बड़े परिश्रम तथा फुर्ती से उस दुर्ग को जा घेरा, पर अन्न की महँगी तथा अभागों के झुंडों के एकत्र होने से यह ठहर न सका और वहाँ से बारह कोस पीछे हट-कर ठहरा। शाहजादा काम बख्श जुमूल् तुल्मुल्क[1] के साथ इसकी सहायता करने पर नियत हुआ। .ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ स्वागत को आया। शाहजादा और जुमूल्तुल्मुल्क के बीच ऐसी शत्रुता हो गई कि कामबख्श ने असद .ख़ाँ को बादशाह की दृष्टि में गिराने को रामराजा से गुप्त पत्रोत्तर कर चाहा कि वह स्वयं किला में चला जाय। जुमूल्तुल्मुल्क ने अमीरों को मिलाकर शाहजादा को नजर कैद कर लिया। .ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ ने थानेदारों को, जो दुर्ग से दूर थे, एक एक कर बुला लिया। शत्रु विजयी हो युद्ध को आये। असद ख़ाँ शाहजादे की और पड़ाव की रक्षा पर रहा तथा .ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ मोर्चों से तोपों और दुर्ग तोड़ने के सामान को उठवाने में लगा रहा। दुष्टों ने इस्माइल ख़ाँ मक्खा पर, जो दुर्ग के पीछे के थाने पर नियत था, धावा कर उसे

---

१. इसकी जीवनी इसी ग्रंथ के भाग २ शीर्षक ८६ पर दी है और इसके पिता .ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ करामानलू की इसी भाग में दी हुई है।

घायल कर पकड़ लिया। इसपर खूब गड़बड़ मचा। निरुपाय होकर ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ बड़ी तोपों में कील ठोंक कर पड़ाव की ओर चल दिया। रामराजा और संता घोरपदे सेना के साथ पीछे पड़े। बड़ी लड़ाइयाँ हुईं और वीर ख़ाँ ने, जिसके साथ दो सहस्र सवारों से अधिक न थे, दृढ़ता से डटकर वीरता दिखलाई। बहादुरों में से ऐसे बहुत थोड़े बच गए, जो घायल नहीं हुए थे। अंत में शत्रु को परास्त कर विजयी हो पड़ाव पर पहुँच गया।

जब असद ख़ाँ शाहज़ादा के साथ दरबार को चला गया तब कई बार फिर रामराजा और ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ के बीच युद्ध हुए। इन सब में ख़ाँ की विजय हुई। जब उस प्रांत में अकाल पड़ा और अन्न महँगा हो गया तब एक प्रकार की संधि कर वह शाही राज्य में लौट आया। चार महीने ठहर कर फिर दुर्ग के घेरे में लगा और उन्हें कष्ट देने लगा। ३९ वें वर्ष में बादशाह ने इसे पाँचहज़ारी ४००० सवार का मंसब और नसरत जंग की पदवी दी। ६ शाबान सन् ११०९ हि० को, ४१वें वर्ष में दृढ़ दुर्ग चिंची को, जो अत्यंत ऊँचे सात दुर्गों से मिलकर बना है और उस प्रांत के सभी दुर्गों और भागों से ऊँचाई तथा युद्ध के सामान की अधिकता में बढ़कर था, बड़ी वीरता से युद्ध कर विजय किया। इस कारण उसका नसरत गढ़ नाम रखा गया। 'क़िलः चिंची मफ़्तूह शुद' (दुर्ग चिंची विजय हुआ) तारीख है। रामा विजयी सेना का ऐसा प्रभाव देखकर इतना डर गया कि स्त्रियों और लड़कों को छोड़कर एकदम भाग गया। एक सौ छोटे बड़े दुर्गों, जो कर्णाटक प्रांत में फैले थे,

तथा फिरंगियों के कई बंदरों को साम्राज्य में मिला लिया। वहाँ के शक्तिशाली ज़मींदारों ने अधीनता स्वीकार कर योग्यतानुसार भेंट दिए। नसरतजंग का मंसब एक हजार सवार बढ़ने से पाँच हज़ारी ५००० सवार का हो गया। ४६ वें वर्ष में बहरः मंद ख़ाँ के स्थान पर यह मीरबख्शी के उच्च पद पर नियत हुआ पर विद्रोहियों को दंड देने के लिये यह वहीं बराबर उस प्रांत में नियत रहा। ४८ वें वर्ष में जब दुर्ग वाकन्कीरा के घेरे में, जिसका नाम रहमान बख्श रखा गया था, बहुत समय लग गया, और उसके दुर्गाध्यक्ष पीरिया नायक ने अधिक दुष्टता कर मराठों को सहायतार्थ बुला लिया तथा वे सब भी सेना के चारों ओर पहुँच कर लूट मचाने लगे, तब ज़ुल्फ़िक़ार जल्दी से बादशाह के यहाँ बुला लिया गया। कहते हैं कि जब यह पास पहुँचा तब बादशाह ने अपने हाथ से उसे लिखा कि 'ए निराश्रयों की सहायता करने वाले तू जल्द अपने को उनके पास पहुँचा।' वास्तव में बहुत सा वीरता-पूर्ण प्रयत्न कर इसने जल्दी विजय प्राप्त किया। इस तुरंत के विजय से इसने उर्दूवालों का काम हलका कर दिया, जिनके प्राण नित्य प्रति के युद्ध से संकट में पड़े हुए थे। बूढ़े जवान सबने इसके लिये नसरतजंग की प्रशंसा की।

एक दर्बारी ने कुछ षड्यंत्रकारियों के संकेत पर बादशाह से प्रार्थना की कि सेना का हर एक सैनिक छोटा या बड़ा ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ को बहुत मानता है। बादशाह का स्वभाव अहंता तोड़ने वाला और अहंकार चूर्ण करने वाला था इसलिये उसे छोटा बनाने को तूरानी सर्दारों को उन्नति दी पर इसको केवल तलवार और खिलअत दे प्रसन्न कर अन्य दुर्गों को लेने और शत्रु को

दंड देने के लिये भेजा । अंत में छ हज़ारी ६००० सवार के मंसब तक पहुँचा । औरंगजेब की मृत्यु पर शाहज़ादा मुहम्मद आज़मशाह ने फिर मीरबख्शी के पद पर इसे वहाल किया। युद्ध में शाहजादा वेदार वख़्त के साथ हरावल में, जो अपने पिता का प्रधान था, नियत हुआ पर इस युद्ध में जुल्फिकार खाँ द्वारा उचित प्रयत्न नहीं हुआ प्रत्युत् अधिकतर स्वार्थपरता और आलस्य ही दिखलाया गया। जिस समय तक शाहज़ादा वहुत से नामी सर्दारों के साथ मारा जा चुका था उस समय तक तीर का एक छोटा घाव इसके ओठ पर लगा था। जब इसने देखा कि काम बिगड़ गया तब युद्ध स्थल से थोड़े सैनिकों के साथ निकल कर पिता के पास ग्वालियर चला गया।

कहते हैं कि इसने उस समय मुहम्मद आज़म के पास कहला भेजा कि वह ऐसे पुराने झगड़ों को भुला दे। सर्दारों को उस समय हाथ से न जाने दे और अपने को अलग कर प्रयत्न करे। शेरदिल शाहज़ादा ने क्रोधित होकर कहा कि तुम्हारी वीरता मालूम हो गई, जहाँ चाहो तुम अपनी जान बचाकर ले जाओ पर हम मैदान से मुख नहीं मोड़ेंगे। अंत में वहादुर शाह ने, जो बड़ा शीलवान और कृपालु था, अत्यंत कृपा कर जुल्फिकार खाँ को सातहज़ारी ७००० हज़ार सवार का मंसब और समसामुद्दौला अमीरुल् उमरा बहादुर नसरतजंग की पदवी दी और दक्खिन की सूबेदारी पर वख्शीगीरी के पद के साथ नियत किया। शैर का अर्थ—

ईश्वर! यह कैसी कृपा और दया है कि दंडनीयों को अनुग्रह से परिपूर्ण कर दिया।

जुल्फिकार खाँ मुनइम खाँ खानखानाँ से शत्रुता और झगड़ा बनाए रखकर सर्वदा उससे टेढ़ी चाल चलता। यद्यपि अनुभवी खानखानाँ बहुत सहनशील था और अधिकतर वह ध्यान भी न देकर पुराना सलूक हाथ से जाने नहीं देता था पर अप्रसन्नता से खानदेश प्रांत और पायाँ घाट बरार को घेरे के पहिले के नियम के अनुसार दक्खिन प्रांत से निकाल लिया, जिनका संबंध हिंदुस्तान से था। खानखानाँ की मृत्यु के बाद नसरतजंग ही मंत्रित्व के लिये चुना गया पर इस इच्छा से कि वजीरी के साथ पुराने पद भी उसके हाथ में रहें, उसने अपने पिता का नाम मंत्रित्व के लिये प्रस्तावित कर वैसी प्रार्थना की। बादशाह ने बुद्धिमान और योग्य होते हुए भी, इतने पद एक साथ इसे देना नीति के अनुकूल न समझ कर शील के कारण इसकी खातिर से दूसरे को वजीर नहीं बनाया।

बहादुर शाह की लाहौर में मृत्यु हो जाने पर यह अज़ीमुश्शान से वैमनस्य होने के कारण जहाँदार शाह, प्रथम पुत्र, के यहाँ पहुँचा, जिससे पहिले ही से व्यवहार था। दूसरे भाइयों को भी मिलाकर अज़ीमुश्शान से, जो बहुत कोष, सेना और सहायकों के कारण अन्य भाइयों से बढ़ गया था, युद्ध कर उस पर विजय प्राप्त किया। कहते हैं कि नसरतजंग ने कपट तथा धोखे से रफ़ीउश्शान और जहाँशाह को साम्राज्य में से भाग देने की प्रतिज्ञा कर जहाँदार शाह की ओर मिला लिया था और तीनों से अपने नाम मंत्रित्व की प्रतिज्ञा भी करा ली थी। कहते हैं कि एक साथ तीन बादशाह का होना असंभव नहीं है पर तीन शाहों का एक ही वजीर होना आश्चर्यजनक है। जब अज़ीमुश्शान

की ओर से, जो युद्ध में मारा गया या गोला से उड़ गया और जिसका चिन्ह नहीं पाया गया, संतोष हो गया तब जहाँ शाह से, जो उसका छोटा भाई था तथा वीरता और शील में सब से बढ़कर था, बातचीत की। कहते हैं कि जब उसके भला चाहने वालों ने जुल्फिकार खाँ को पकड़ने का संकेत किया तब उक्त खाँ ने जानबूझ कर जाने में सुस्ती किया और अंत में साम्राज्य प्रतिज्ञानुसार बाँटा न जा सका। फलतः युद्ध हुआ। जहाँशाह ने ठीक युद्ध में थोड़े सैनिकों के साथ मुइज्जुद्दीन के मध्य पर ऐसा धावा मारा कि सब छितरा गए। यहाँ तक कि जहाँदार शाह की प्रेयसी लालकुँवर, जिसको छोड़कर वह कभी अकेला नहीं रहता था, जुदा होकर लाहौर भागी और जहाँदार शाह स्वयं स्वरक्षार्थ ईंट पकाने के भट्टों में छिप गया। जहाँशाह के विजय के डंके बजने लगे। यह समाचार दूर के नगरों में पहुँचा और उसका खुतबा पढ़ा जाने लगा पर एकाएक एक गोली के लगते ही जहाँशाह मर गया। जुल्फ़िक़ार ख़ाँ ने, जो हरावली में तोप और तीर के युद्ध का प्रबंध कर रहा था, यह जानकर उसकी सेना पर धावा कर उसे परास्त कर दिया और उसके शव को उसके बड़े पुत्र फर्खुन्दः अख्तर के शव के साथ, जो सुंदरता में चंद्रमा के समान आकर्षक था, जहाँदारशाह के सामने, जो आश्चर्य से थोड़े आदमियों के साथ इस ईश्वरी शक्ति का निरीक्षण कर रहा था, लाया। इसके बाद समयानुकूल इस मिसरे को पढ़ा कि 'शत्रु को अवसर न देना चाहिए'। अंत में उसी रात को तोपखाना घुमाकर रफ़ीउश्शान के ऊपर, जो इस धोखे से अनजान रहकर अपनी सेना सहित खड़ा युद्ध में शरीक था,

गोले उतारने लगा और पौ फटते ही उसपर आक्रमण कर दिया। वह तैमूरी वंश की लज्जा रखने को बहुत हाथ पाँव मार कर अंत में ढाल तलवार सहित हाथी से कूद पड़ा और युद्ध करता हुआ मारा गया। जब इस प्रकार ईश्वर दत्त हिंदुस्तान का साम्राज्य जहाँदारशाह के भाग्य में आया तब जुल्फिकार ने वजीरी और शाही प्रबंध का झंडा उठाया। परंतु कोकलताश खाँ खानजहाँ, जो पहिले से जहाँदार के हृदय में स्थान कर उसके राज्य का प्रबंधक हो गया था, विजेता का साथी हुआ किंतु आपस के झगड़े और वैमनस्य से दोनों ने राज्य की शोभा बिगाड़ दी। बादशाह पहले ही से लालकुँवर के प्रेम के नशे में पूरी तरह चूर था और अब सफलता के नशे ने दूना होकर उसकी बुद्धि नष्ट कर दी। दीवाना था, उस पर भाँग खाया तथा मालीखौलिआ का रोग था ही, सरेशाम ने आ पकड़ा। वह शराब, गाना, सैर और तमाशा में ऐसा लग गया कि अपना होश तक गवाँ बैठा। तब दूसरे का वह क्या सुनता? शैर का अर्थ—

मदिरा-पान स्वस्थ सिर वाले के लिए हानिकारक है। जिसका अस्वस्थ है, वह पिए तो बहुत बुरा है।

'यथाराजा तथा प्रजा' के अनुसार ही अधीनस्थों की चाल हो जाती है। जुल्फिकार खाँ भी प्रबंध का अधिकार सभाचंद खत्री को जो दुष्टता और लुचपन में एक ही था, सौंपकर मौज करने लगा। मिसरा का अर्थ—जैसा मंत्री वैसा राजा। रबीउल् आखीर में लाहौर से कूच कर राजधानी शाहजहानाबाद दिल्ली पहुँचा। जय जय की पुकार आकाश तक पहुँची पर तीन चार महीने नहीं बीते थे कि फर्रुखसियर के आने

आने की आवाज कान में पड़ी। कोकल्ताश खाँ के बहनोई खान दौराँ ख्वाजा हुसेन की अभिभावकता तथा सेनापतित्व में, शाहज़ादा एज्जुद्दीन उसका सामना करने पर नियत हुआ। ज़ुल्फ़िक़ार खाँ उसकी सर्दारी से, जिसे न तो युद्ध का अनुभव था और न युद्ध-कौशल की अभिज्ञता थी, सन्तुष्ट न होकर इस नियुक्ति का विरोध करता रहा। कहा है, शैर (काव्यार्थ)—सेना के लिए सिवा उस मनुष्य के दूसरे को अग्रणी मत बनाओ, जो युद्धों में बहुत रह चुका हो।

पर कोकलताश खाँ के प्रभुत्व पर वह विजय न पा सका। जब खानदौराँ बुरी नीयत और धोखे के कारण शाहज़ादा सहित भागकर आगरे पहुँचा, जिसका कोकलताश खाँ की जीवनी में पूर्ण वर्णन हो चुका है, तब जहाँदार शाह ज़ुल्फ़िकार खाँ को हरावल का सेनानी नियत कर अस्सी सहस्र सवार के साथ ज़ीउल्कद: महीना में कूच कर आगरे के पास सामूगढ़ पहुँचा। फर्रुखसियर बिना पूरे सामान के सहित अर्थात् अधिक से अधिक १०-१२००० हजार सवारों के साथ जमुना के उस पार ठहरा।

यहाँ भी ज़ुल्फ़िक़ार खाँ और कोकलताश खाँ के बीच नदी उतरने के बारे में मतभेद हो गया। एक ने पुल बाँध कर उतरने की राय दी और दूसरे ने कहा कि वे सब भूख प्यास से ठहर न सकेंगे तथा स्वयं परास्त हो जायँगे। इसी बीच फर्रुख सियर ने उतार पाकर एकाएक नदी पार कर लिया और १३ ज़ीउल्हिज्जा के दिन के अंत में युद्ध को आ पहुँचा। ज़ुल्फ़िक़ार खाँ ने तोपखाना, बड़ी सेना और सर्दारों सहित व्यूह रचा। हुसेन अली खाँ बारह: ने उस पर सामने से घुड़सवारों के साथ

धावा किया पर तोप और तीर के धक्के से वह ऐसा बिखरा कि कोई उसका हाल भी न जान सका। वह बहुत से घायल आदमियों में पड़ा रहा पर सय्यद अब्दुल्ला ख़ाँ राजे ख़ाँ को अपने सामने से हटा कर सेना में घुस आया और जहाँदार शाह को मध्य भाग के साथ भगा दिया। तब भी उसी के कारण ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ विजय का डंका बजाता हुआ एक प्रहर रात्रि तक खड़ा रहा और बादशाह की खोज करता रहा। वह कहता था कि यदि वे शाहजादा को भी लावें तो ठीक हो और तब तक इन मूर्खों को मैं ठहराए हुए हूँ। परंतु जब कुछ पता नहीं लगा तब अपने साथियों से राय की। बहुतों ने कहा कि दक्खिन को चलना चाहिये क्योंकि नवाब का प्रतिनिधि दाऊद ख़ाँ वहाँ है और उसके पास धन और सेना की कमी नहीं है। पर सभाचंद ने कहा कि बूढ़े बाप पर दया करो, क्यों अपने हाथ से उसको मरने के लिये शत्रु को देते हो। इस पर ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ ने दिल्ली की राह ली।

कहते हैं कि इसके बख़्शी इमाम वर्दी ख़ाँ ने कहा था कि यह दुर्भाग्य का चिह्न है कि ऐसे समय एक लेखक से राय पूछते हैं। ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ मुइज़्ज़ुद्दीन के पहुँचने के एक पहर बीतने के बाद वहाँ गया, जो एकदम आसफुद्दौला के घर जाकर अपने प्रबंध में लगा हुआ था। ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ ने बहुत कुछ पिता से दक्खिन या काबुल की ओर चलने के लिये कहा पर असद ख़ाँ ने स्वीकार नहीं किया और मुइज़्ज़ुद्दीन को कैद कर दुर्ग में भेज दिया। यह वृत्तांत असद ख़ाँ की जीवनी में लिखा गया है। उस समय जब फर्रुख़सियर दिल्ली से पाँच कोस पर बारापुल्ल:

पहुँचा तब .जुल्फ़िक़ार ख़ाँ अपने पिता के साथ शीघ्र सेवा में उपस्थित हुआ। उस पर हर प्रकार की कृपा हुई। राजनीतिक बातें करने के बहाने .जुल्फ़िक़ार ख़ाँ को अपने पास ठहरा लिया और असद ख़ाँ को विदा किया। फिर .जुल्फ़िक़ार ख़ाँ उस खेमें में, जो इसके लिये खड़ा किया गया था, ठहराया गया और उससे कुछ कड़ी बातें कहलाई गईं कि इन सारे झगड़े का कारण तू ही है, तूने बेचारे शाहजादा करीमुद्दीन को, जो बादशाह का भाई था और पिता के मारे जाने पर किसी विद्वान के यहाँ छिपा हुआ था, मारा है। .जुल्फ़िक़ार ख़ाँ ने दूसरा रंग ढंग देखकर निडर हो खूब कड़े उत्तर दिए कि इसी बीच जल्लादों ने आज्ञानुसार आकर उसके गले में फाँसी लगा दिया और लात मूके मारे। उसी दिन जहाँदार शाह भी मारा गया। दूसरे दिन १७ मुहर्रम सन् ११२४ हि० को फर्रुख़सियर राजधानी में गया। जहाँदारशाह का सिर भाले पर और लाश हाथी पर रखी गई तथा .जुल्फ़िक़ार ख़ाँ की लाश उल्टी कर उसकी दुम में लटकाकर नगर में दिखलाई गई। शैर का अर्थ—

ऐ मालिक, तेरी दृष्टि कहाँ है कि द्वार नहीं घूमता।
प्रभुत्व तथा बड़प्पन की खान इस प्रकार बिकती है॥

पिता के रक्षार्थ मारे जाने के कारण 'इब्राहीम इस्माइल रा कुर्बान नमूद' (इब्राहिम ने इस्माइल को निछावर कर दिया।) से इसकी मृत्यु की तारीख़ निकली। .जुल्फ़िक़ार ख़ाँ अनुभवी सर्दार और गंभीर सम्मतिदाता था। चिंची युद्ध में वीरता तथा उदारता दिखलाकर प्रसिद्ध हुआ। नासिर अली ने इस की प्रशंसा

में एक ग़ज़ल कहा है, जिसका मतल: (प्रथम शैर) का अर्थ इस प्रकार है:—

हैदर का शान तेरे कपोल से प्रकट है।
युद्ध में तेरा नाम ज़ुल्फ़िक़ार[1] का काम करता है ॥

नासिर अली को ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ ने बहुत धन और एक हाथी पुरस्कार में दिया। पर अच्छे समय में इसकी कंजूसी, कुकार्य, झूठे वादे और ऊपरी बातचीत से प्रसन्न कर देने के स्वभाव से ज्ञात तथा अज्ञात सभी लोग इससे बुरा मानते थे। संसार की हवा मनुष्यों को गिरा देनेवाली है इससे अंत में इतनी सफलता पाकर भी ऐसे स्थान पर जा पहुँचा कि अपनी आत्मा की आज्ञा से अपने वंश का काम आपही बिगाड़ा और धन धूल में मिलाया। इसने नहीं जाना—मिसरा का अर्थ:—

'क्षमा में जो मजा है वह बदले में नहीं है।'

इसने अपने मित्रों की प्रतिष्ठा सहज अप्रसन्नता के कारण बिगाड़ी। इसने बदले को हर एक से बहुत बढ़ाकर लिया पर बदले के दिन का इसे कुछ भी डर नहीं रहा और न इसने सच्चा बदला लेनेवाले ही के क्रोध का भय किया। अत्याचार से, जो इसके नियुक्त सहकारी दाऊद ख़ाँ ने दक्खिन में लोगों पर किया और दुःख से, जो इसके भाग्यशाली दीवान सभाचंद ने मनुष्यों को पहुँचाया, इसका सब कुछ नष्ट हो गया। इसे संतान नहीं थी, इसलिये कोई इसके वंश में नहीं रह गया। शैरों का अर्थ:—

---

१. अली के तलवार का नाम है।

ए हकीम दैनिक कार्य की फिक्र करो।
जिससे काम का पल्टा सामने ही पावे।
भलाई चाहिए मनुष्य को बढ़ने की जगह में।
अदब की बाजार बदले में तेज़ है॥

क्षमा की शक्ति को लोग नम्रता की शक्ति कहते हैं। जब कभी बचा हुआ तू दे तब नम्रता से दे। शैर का अर्थ—

बदले के स्थान में पहले व बाद भी भलों ने खूब अनुभव किया है। कहते हैं कि नम्रता के समय दुःख न करे यदि प्रभुत्व में किसी को कष्ट न पहुँचाना चाहे।

—

जुल्फ़िक़ारुद्दौला

इसका नाम मिर्ज़ा नजफ़ ख़ाँ बहादुर था और यह सफ़दर जंग के भाई मिर्ज़ा मुहसिन का साला था। कहते हैं कि माँ की ओर से इसका वंश सफ़वी खान्दान से मिलता था। जब शुजाउद्दौला ने इसके भांजे मुहम्मद कुली ख़ाँ को, जो तत्कालीन बादशाह शाहआलम बहादुर के साथ पटना की चढ़ाई पर गया था, बुलाकर मार डाला तब यह सशंकित होकर स्वयं एकाकी बंगाल के सूबेदार कासिम अली ख़ाँ के पास पहुँचा। उक्त ख़ाँ ने मुरौवत से खेमे आदि का अच्छे सरदारों के समान प्रबंध कर दिया और कुलाह पोशों (टोप पहिरनेवालों) का सामना करने को भेजा। जब यह कार्य उससे पूरा न हो सका तब यह कासिम अली ख़ाँ के पास लौट आया। इसके अनंतर जब उक्त ख़ाँ शुजाउद्दौला की शपथ पर भरोसा कर बादशाह की नौकरी के लिए तैयार हुआ तब मिर्ज़ा नजफ़ ख़ाँ ने बहुत मना किया कि उसके शपथ का कोई भरोसा नहीं है, पर उसने नहीं माना तब यह अलग हो गया। इसके अनंतर यह हिन्दूपत बुन्देला के राज्य में आकर कुछ दिन ठहरा। फिर यहाँ से बादशाह के पास जाकर यह इलाहाबाद प्रांत के कड़ा मानिकपुर का फौजदार नियत हुआ। क्रमशः यह मीर बख्शी के पद तक पहुँच गया। फिर इसने जिहाद के लिये दृढ़चित्त होकर सेना एकत्र की और बहुत दिनों तक जाटों को, जो आगरे पर अधिकार कर वहाँ से शाहजहानाबाद दिल्ली तक विद्रोही होकर गड़बड़ मचाते

रहते थे तथा दृढ़ दुर्गों के कारण किसी को कुछ नहीं समझते थे, निकालने में प्रयत्न करता रहा। फिर यहाँ से बादशाह के साथ ज़ाबिता ख़ाँ को, जो नजीब ख़ाँ रुहेला का पुत्र था, दंड देने गया और उसके भागने के बाद उसके मकानादि जब्त कर लिए। सन् ११९२ हि० में बादशाह नारनौल की ओर गए और यह भी बुलाए जाने पर स्वयं सेवा में पहुँचा। जब आमेर के राजा का मामला तै हो गया तथा बादशाह राजधानी लौटे तब यह मार्ग से लौट गया। लिखते समय आगरा प्रांत के अंतर्गत अलवर के घेरे में, जो एक विद्रोही के हाथ में था, साहस दिखला रहा था। यद्यपि इसके पास कोष कुछ भी नहीं था, पर अच्छी सेना बहुत साथ थी और जो कुछ यह पाता, साथियों में बाँटकर उनको प्रसन्न रखता। सन् ११९३ हि० के अंत में जब तत्कालीन बादशाह मजदुद्दौला से अप्रसन्न हो गया तब उसको मिर्ज़ा नजफ़ ख़ाँ के द्वारा कैद करा दिया। उस समय से बादशाही का कुल प्रबंध उक्त ख़ाँ के हाथ में चला आया और बादशाह का मुख्तार हो गया है।

जैन खाँ कोका

इसकी माता पेचः जान अकबर की धाय थी। इसका पिता ख्वाजः मक़सूदअली हर्वी पवित्र विचार का सच्चा तथा दियानतदार आदमी था और हमीदः बानू बेगम का एक सेवक था, जो हौदज के पास बराबर नियत था। एराक की यात्रा में यह भी साथ गया था। अकबर ने इसके भाई ख्वाजः हसन की, जो जैनखाँ का चचा था, लड़की का शाहजादा सलीम से निकाह कर दिया था। इसी से सन् ९९७ हि० में सुलतान पर्वेज पैदा हुआ। ३०वें वर्ष में जब मिर्ज़ा महम्मद हकीम काबुल में मर गया और अकबर ज़ाबुलिस्तान जाने की इच्छा से सिंध नदी के पार उतरा तब ज़ैन खाँ, जिसे ढाई हज़ारी मंसब मिल चुका था, यूसुफ़ज़ई जाति वालों को ठीक करने और सवाद तथा बजौर पर अधिकार करने के लिए भेजा गया। यह झुंड पहिले क़राबाग और कंधार में रहता था और वहाँ से काबुल आकर इस पर अधिकार करने लगा था। मिर्ज़ा उलुग़-बेग काबुली ने इसे भगा दिया। बचे हुए वहाँ से लमग़ानात में कुछ दिन ठहर कर इश्तग़र में जा बसे। लगभग सौ वर्ष हुए कि तब से सवाद तथा बजौर में लूट मार कर दिन बिताते हैं।

उसी देश में एक और झुंड था, जो अपने को सुल्तानी कहता था और अपने को सुल्तान सिकंदर की पुत्री का वंशज

समझता था। यह जाति पहिले गुलामी करने लगी और फिर कपट करके इसने कुछ अच्छी जगह अपने अधिकार में कर लिया। इनमें से कुछ उन्हीं घाटियों में असफलता में दिन व्यतीत करते रहे और देश-प्रेम के कारण बाहर नहीं गए। जिस वर्ष पहिले अकबर मिर्ज़ा महम्मद हकीम को दंड देने के लिए उस प्रांत में गया था, उस समय उस जाति के बड़े लोग सेवा में पहुँचे थे। इनमें से एक कालू था, जो कृपा पाकर भी आगरे से भाग गया। ख़्वाजः शम्सुद्दीन ख़्वाफ़ी ने अटक के पास उसे कैद कर दर्बार भेज दिया। दंड के बदले उस पर कृपा हुई परंतु फिर भाग कर अपने देश चला गया और लूट मार करने में दूसरों का साथी हो गया।

जैन ख़ाँ कोका पहिले बजौर प्रांत में गया, जिसके दक्षिण में पेशावर और पूर्व में काबुल के परगने हैं, जो पचीस कोस लंबा और पाँच से दस कोस तक चौड़ा है तथा जिसमें इस जाति के ३० सहस्र गृहस्थ आदमी बसते हैं। वहाँ इसने बहुतों को दंड दिया। ग़ाज़ी ख़ाँ, मिर्ज़ा अली और दूसरे सर्दारों ने अमान माँगी और उपद्रव शांत हो गया। इसके अनंतर पार्वत्य-स्थान सुवाद की ओर गया और कड़े धावों पर शत्रु को भगा दिया। जगदर्रा में, जो उस प्रांत के बीच में है, इसने दुर्ग की नींव डाली। इसने तेईस बार विजय पाई और इसके सात भाले टूटे। कराकर की ऊँचाई और पवनीर प्रांत के सिवा सब पर अधिकार हो गया।

पहाड़ों में घूमते-घूमते सेना शिथिल हो गई थी, इस लिए जैन ख़ाँ ने सहायता माँगी। अकबर ने राजा बीरबल और

हकीम अबुल्फतह को एक दूसरे के बाद नियत किया। जब वे कोकल्ताश के पास पहुँचे तब पुरानी ईर्ष्या के कारण वे आपस में न मिलकर भिन्न मत हो गए। जब कोका ने राय करते समय कहा कि 'नई आई हुई सेना को बलवाइयों पर भेजा जाय और हम इस प्रांत में रक्षा के लिए रहें या आप लोग यहाँ जगदर्रा में रक्षा का काम देखिए और हम बलवाइयों को दंड देने जायँ' तब राजा और हकीम ने जवाब दिया कि 'शाही आज्ञा मुल्क पर धावा करने की है, उसकी रक्षा करने के लिए नहीं है। हम सब मिलकर दंड देने के बाद दरबार चले चलेंगे'। कोका ने कहा कि 'जिस प्रांत को इतना युद्ध कर अधिकृत किया है, उसे किस प्रकार बिना प्रबंध किए छोड़ दें। यदि यह दोनों प्रस्ताव न स्वीकार हो तो जिस मार्ग से आये हो उसी से लौट जावो।' वे यह न सुन कर कराकर के उस मार्ग से आगे बढ़े, जो पहाड़ों और गड्ढों से भरा हुआ था। कोका भी निरुपाय होकर उन्हीं के साथ चला कि कहीं ये पार्श्ववर्ती कोई ऐसी बात न कह दें कि बादशाह का विचार उसकी ओर से बदल जाय। यहाँ तक कि हर एक तंग दर्रे में बराबर लड़ाई होती रही और लूट भी खूब होती रही।

जब बलन्दरी घाटी की ओर बढ़े तब कोका पीछे हो गया। अफ़ग़ानों ने धावा किया और युद्ध होने लगा। उन सब ने हर ओर से तीर और पत्थर फेंकना आरंभ किया। आदमी लोग घबड़ा कर पहाड़ के नीचे भागे। इस दौड़ धूप में हाथी और घोड़े भी उन्हीं में मिल गए और बहुत से आदमी मारे गए। कोका चाहता था कि लड़ मरें परंत जानिश बहादर उसे लौटा

लाया और मार्ग न होने से कुछ दूर पैदल चल कर पड़ाव पर पहुँच गया। जब यह विदित हुआ कि अफ़ग़ान आक्रमण को आते हैं तब घबराहट में कुसमय में कूच कर दिया। अंधकार के कारण रास्ता छोड़ कर बहुत से लोग दर्रों में जा पड़े। अफ़गानों ने लूट बहुत बाँटी पर तौ भी बच गई। दूसरे दिन भी कितने मार्ग भूले हुए मारे गए। राजा बीरबल बादशाह की पहचान के लगभग पाँच सौ आदमियों तथा दूसरों के साथ मारा गया।

३१ वें वर्ष में कोकलताश पेशावर के पास मुहमंद और गोरी जातियों को दंड देने के लिए नियत हुआ, जो जलालुद्दीन रौशानी को सर्दार बनाकर तीराह और ख़ैबर में बलवा मचाए हुए थे। इसने अच्छा काम दिखलाया। ३२वें वर्ष में राजा मानसिंह के स्थान पर जाबुलिस्तान का शासक नियत हुआ। ३३वें वर्ष में फिर यूसुफजई लोगों को दंड देने के लिए नियुक्त होकर पहिले बजौर गया और उन पर आठ महीने तक आक्रमण किए। इसमें बहुत से शत्रु मारे गए और बचे हुए लोगों ने अधीनता स्वीकार कर ली। कोका सूवाद पर अधिकार करने चला। पहिले बचकोरा नदी के किनारे, जो उस देश में पहुँचने के मार्ग का आरंभ है, दृढ़ दुर्ग बनवाकर बैठ रहा। शत्रु ईद की कुरबानी में लगे थे कि कोका गुप्त रास्ते से सूवाद में जा पहुँचा। अफ़ग़ान घबड़ाकर भाग गए और उस देश पर अधिकार हो गया। हर एक आवश्यक स्थान पर दुर्ग बनवाकर रक्षा का प्रबंध किया। ३५वें वर्ष ज़ैन ख़ाँ उत्तर के ज़मींदारों को दंड देने के लिए नियत हुआ। पठान के पास से उस प्रांत में जाकर सतलज नदी तक पहुँचा। सब विद्रोहियों ने अधीनता

स्वीकार कर ली। नगरकोट के राजा विधिचन्द, जम्बू पर्वत के राजा परशुराम, मऊ के राजा बासू, राजा अनिरुद्ध जसवाल, राजा काम लौरो, राजा जगदीशचन्द्र दहवाल, पन्ना के राजा संसारचन्द, मानकोट के राय प्रताप, जसरौता के राय बासु, लखनपुर के राय वलभद्र, कोट भरतः के दौलत, रायकृष्ण वलाः वरियः और राय रावदिया धमरीवाल ने १० सहस्र सवार इकट्ठा कर लिए थे और पैदल एक लाख से अधिक थे पर ये सब अच्छी भेंट लेकर कोका के साथ दरबार गए। ३६ वें वर्ष में चार हजारी मंसब और डंका पाकर यह संमानित हुआ। ३७ वें वर्ष ज़ैन खाँ सिंध नदी के उस पार से हिंद कोह तक के प्रांत का शासक नियत हुआ और सूवाद तथा बजौर से तीराह की ओर गया। अफरीदी और उरकज़ई जातियों ने अधीनता स्वीकार कर ली। जलालः काफिरों के प्रांत में चला गया। कोका भी उस प्रांत में पहुँचा। जलालः के दामाद वहदत अली ने यूसुफजई की सहायता से कनशाल दुर्ग पर और काफिरों के प्रांत में कुछ सफलता प्राप्त की थी इसलिए कोका ने उन्हें दमन करने का साहस किया। सेना ने कोहसार तक, जो काशगार के शासक का थाना था, जाकर बहुतों को कैद किया। काफ़िरों के सर्दारों ने भी अफ़गानों की हार में प्रयत्न किया। कुछ चग़ानसरा की ओर बदख्शाँ जाकर लूट मार करने लगे। निरुपाय होकर यूसुफज़ई सर्दारों ने अधीनता स्वीकार कर ली और दुर्ग कनशाल तथा बदख्शाँ-काशगार की सीमा तक के बहुत से थानों पर अधिकार हो गया। इस खुशी में ४१ वें वर्ष के आरंभ में इसे पाँच हजारी मंसब मिला।

जब कुलीज खाँ काबुल का प्रबंध नहीं कर सका तब उसी वर्ष कोका उस प्रांत में नियत हुआ। उसी वर्ष शाहजादा सलीम .जैन खाँ की पुत्री पर आशिक हो गया और उसीकी चिंता में रहने लगा। अकबर इस कुचाल से परेशान हुआ, परंतु जब उसकी घबड़ाहट अधिक देखा तब स्वीकृति देकर सन् १००४ हि० में निकाह कर दिया। जब जलालुद्दीन रौशानी, जो काबुल प्रांत के उपद्रवों का जड़ था, मर गया और ज़ाबुल में उपद्रव शांत हुआ तब आज्ञानुसार .जैन ख़ाँ तीराह से लाहौर की रक्षा के लिए पहुँचा। जब अकबर बुरहानपुर से लौटकर आगरा आया तब इसको बुलवाया। काम करने से जान चुरा कर इसने शराब पीना आरंभ किया था, जिस कारण इससे कुछ लोग खिंच गए। इसकी बीमारी बढ़ने लगी और हृदय की निर्बलता से यह सन् १०१० हि० (सन् १६०२ ई०) में मर गया। कहते हैं कि बीरबल की घटना से .जैन खाँ की अवनति होने लगी और इसका बादशाह के हृदय में विचार बना रहा। जब सलीम कुविचार से इलाहाबाद जाकर रहने लगा और इसने बहुत से घोड़े उसके पास भेजे तब यह अप्रसन्नता और भी बढ़ी। उसी समय यह मर गया।

जैन खाँ कवित्त और राग का प्रेमी था। बहुत से बाजे स्वयं बजा लेता था और शैर भी कहता था। उसके एक शैर का उर्दू रूपांतर यों है—

आराम नहीं देता है यह चर्ख कज-ख़िराम।
रिश्तः मुराद का कि सुई में मैं डाल लूँ॥

कहते हैं कि जब इसने बादशाह को अपने घर बुलाकर जलसा

किया था तब ऐसी तैयारी की थी कि बराबरवाले आश्चर्य-चकित हो गए। इन्हीं में से एक चबूतरा पूरी लम्बाई और चौड़ाई तक तूस के शालों से ढँक दिया था, जो उस समय बहुत कम मिलते थे और उसके आगे तीन हौज़ थे, जिनमें से एक हौज यज़्द के गुलाब से, दूसरा केशर के रंग से और तीसरा अरगजा से भरकर बनवाया था। इनमें एक हजार से अधिक तवायफों को डाल दिया था। दूध और चीनी मिलाकर उसकी नहरें बहाई और सहन में पानी के बदले गुलाब जल छिड़का गया। इसने टोकरों में रत्न और जड़ाऊ बर्तन भरकर भारी हाथियों के साथ भेंट दिया था। कहते हैं कि उस समय हाथियों की अधिकता में ज़ैन ख़ाँ, घोड़ों में क़ुलीज ख़ाँ और ख़्वाजः सराओं में सईद ख़ाँ प्रसिद्ध थे।

जैनुद्दीन अली, सयादत खाँ, मीर

यह इसलाम खाँ मशहदी का भाई था। शाहजहाँ के राज्य-काल के आरंभ में योग्य मनसब पाकर ६ ठे वर्ष दाग तथा मनसबदारों की जाँच का दारोगा नियत हुआ। इसके अनंतर जब इसलाम खाँ बंगाल का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ, तब यह भी अपने भाई के साथ उस प्रांत में गया। उक्त खाँ ने इसको एक सेना का सरदार बनाकर उस प्रांत के अंतर्गत कूच हाजू तथा मोरंग पर भेजा, जहाँ के विद्रोहियों से खूब युद्ध होने के अनंतर वहाँ का प्रबंध ठीक हो गया। ११वें वर्ष में इसका मनसब बढ़कर एक हजारी २०० सवार का हो गया और सयादत खाँ की पदवी मिली। १३वें वर्ष जब इसलाम खाँ मंत्री होने के लिए दरबार गया तब यह बंगाल की प्रांताध्यक्षता उसका प्रतिनिधि होकर करता रहा। १४वें वर्ष २०० सवार और १६वें वर्ष पाँच सदी इसके मनसब में बढ़े। १९वें वर्ष जब इसलाम खाँ दक्षिण के चार सूबों का अध्यक्ष नियत हुआ तब यह भी दक्षिण में नियत हुआ और इसका मनसब बढ़ कर दो हजारी ५०० सवार का हो गया। इसी वर्ष यह पृथ्वीराज के स्थान पर दौलताबाद का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। २१वें वर्ष में इसके मनसब में २०० सवार बढ़े और इसके भाई की मृत्यु पर पाँच सदी ३०० सवार और बढ़ाये गए तथा उक्त दुर्गाध्यक्षता स्थायी रूप में बहाल रक्खी जाकर इस पर विश्वास बढ़ाया गया। २२वें वर्ष यह वहाँ से हटाए जाने पर दरबार

आया। २३वें वर्ष में यह द्वितीय बख्शी नियत हुआ और इसका मनसब बढ़कर तीन हजारी ३००० सवार का हो गया। २४वें वर्ष ५०० सवार की उन्नति के साथ आगरा दुर्ग का, वाकी खाँ के स्थान पर, अध्यक्ष नियत हुआ। २९वें वर्ष में यह वहाँ से हटाया गया। ३०वें वर्ष में दिल्ली के दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। इसके अनंतर जब औरंगज़ेब बादशाह हुआ, तब पहिले वर्ष में जब बादशाही सेना दारा शिकोह का पीछा करने के विचार से दिल्ली के पास पहुँची तब उस स्थान का प्रबंध इसे सौंपा गया। दूसरे वर्ष सन् १०६९ हि० (सन् १६५९ ई०) में अपनी मृत्यु से यह मर गया। इसके पुत्र फज़लुल्ला खाँ, इसके भतीजों सफी खाँ, अब्दुर्रहीम खाँ और अब्दुर्रहमान को, जो इसलाम खाँ के लड़के थे, शोक के खिलअत मिले। इसके बड़े पुत्र का नाम मीर फैजुल्ला था। औरंगजेब के राज्य के पहिले वर्ष में इसे फैज़ुल्ला खाँ की पदवी मिली और यह जवाहिर खाने का दारोगा नियत हुआ। इसके बाद इसे मीर तुज़ुक का पद मिला। १२वें वर्ष में जब दौलत खाँ का पौत्र और अलिफ खाँ महम्मद ताहिर का पुत्र दिलदार मुल्तफ़ित खाँ से वैमनस्य रखने के कारण, जिस समय बादशाह दरबार आम में बैठे हुए थे, उससे लड़ने लगा तब इसने चालाकी से एक लकड़ी उसके सिर पर मारी। इसके अनंतर किसी कारण से दंडित होने पर इसका मनसब छिन गया। २०वें वर्ष में मनसब बहाल होने पर यह बंगाल में नियत हुआ। कुछ दिन बाद उसी प्रांत में एक नौकर द्वारा जमधर से मारा गया।

तक़र्रुब ख़ाँ

यह हकीम इनायतउल्ला का पुत्र था और इसका नाम हकीम दाऊद था। इसका पिता हकीम मसीहुल्ज़माँ के पिता मिर्ज़ा महम्मद का योग्य शिष्य था। अपने पिता की मृत्यु पर इसने हकीमी में पूरी योग्यता तथा अनुभव प्राप्त किया और शाह अब्बास प्रथम की सेवा में सम्मान तथा मुसाहिबी पाकर यह शाही हकीमों का सरदार हो गया। उस शाह के मरने के अनंतर उन हकीमों के संकेत से, जो इससे वैमनस्य रखते थे, शाह सफ़ी द्वारा अनुचित व्यवहार होने पर तथा युवक शाह अब्बास द्वितीय की राजगद्दी के अनंतर उससे भी उचित वर्ताव न होने पर इसने ईरान में रहना ठीक नहीं समझा। प्रगट में हज्ज जाने का विचार कह कर और मन में शाहजहाँ की सेवा में जाने का निश्चय कर यह एराक़ से बसरा के मार्ग से रवाना हो गया और लाहरी बंदर में उतरा। १७वें वर्ष सन् १०५२ हि० में यह बादशाही दरबार में पहुँचा और एक हजारी मनसब और बीस हजार रुपया पुरस्कार पाकर सेवा में भरती हो गया।

दैवयोग से इसके आने के बीस दिन पहिले बेगमसाहेबा, जिससे शाहजहाँ को अपनी अन्य संतानों से अधिक प्रेम था, बादशाही सेवा के अनंतर अपने शयन-कक्ष की ओर जा रही थी कि एकाएक उसकी आँचल का कोना एक दीपक तक पहुँच गया, जो महल के मार्ग में बल रहा था। इसके कपड़े इसके

सम्मान के अनुकूल बहुत अच्छे थे और उन पर इत्र भी खूब लगा हुआ था, जिससे आग झट भड़क उठी और कुल कपड़े जलने लगे। यद्यपि चार सेविकाओं ने, जो साथ में थीं, इस आग को बुझाने में बहुत प्रयत्न किया पर जब उनके कपड़ों में भी आग लगने लगी तब वे कुछ न कर सकीं। दूसरों के इस बात को जानने और पानी के पहुँचने तक बेगम साहेबा की पीठ, दोनों बग़ल और दोनों हाथ जल गए। शाहजहाँ ने बहुत मन लगा कर इसका उपचार किया और आध्यात्मिक उपाय के विचार से पहिले ही दिन से तीसरे दिन तक प्रति दिन पाँच सहस्र मुहर और पाँच सहस्र रुपया निछावर कर दरिद्रों में बाँटता था। इसके अच्छे होने तक एक बहुत बड़ी रकम दान की गई। सात लाख रुपया उन लोगों को क्षमा कर दिया, जो उसी के लिए कैद थे। यह भी निश्चय हुआ कि इसके अनंतर सदा प्रति दिन एक सहस्र रुपया, जो एक वर्ष में तीन लाख साठ हज़ार रुपया होता है, उक्त बेगम साहेबा की निछावर में दिया जाया करे। इसके अनंतर शारीरिक औषधि की ओर ध्यान दिया गया और हर स्थान के हकीम तथा जर्राह उपस्थित होकर दवा करने लगे।

हकीम दाऊद, जो ऐसे समय में आकर इस कार्य में तत्पर हो गया था, कई रोगों को जैसे ज्वर, घबड़ाहट और आँखों के चारों ओर की सूजन को, जो औषध करने में हो गई थी, अच्छा करके प्रशंसा का पात्र हुआ। जहाँआरा बेगम के अच्छे होने पर जो जलसा हुआ था उसमें इसका मनसब एक हजारी २०० सवार बढ़ाया गया और कई प्रकार की शाही

कृपा होने से यह विश्वासपात्र हो गया। एक वर्ष तक प्रति शुक्रवार की भेंट का इसे मिलने का निश्चय हुआ। २० वें वर्ष इसे तक़र्रुब ख़ाँ की पदवी मिली। २३ वें वर्ष इसका मनसब तीन हजारी ८०० सवार का हो गया। २६ वें वर्ष में अकबराबादी महल की दवा करने में इसने बड़ी प्रवीणता दिखलाई, जिससे इसका मनसब पाँच सदी और बढ़ा तथा तीस सहस्र रुपये पुरस्कार में मिले। २७ वें वर्ष यह चार हजारी ३००० सवार का मनसबदार हो गया। ३१ वें वर्ष में जब शाहजहाँ को मूत्र-कृच्छता का कठिन रोग हो गया और इस कारण ठंढी तथा रेचक औषधियों के खाने से उसे पथरी तथा कोष्ठबद्धता हो गई तब अन्य प्रसिद्ध हकीमों में से किसी एक की भी दवा से लाभ नहीं हुआ। तक़र्रुब ख़ाँ के अनुभव से 'शेरखिश्त' दवा ने बद्धता को दूर करने में बहुत लाभ पहुँचाया। स्थान बदलने के विचार से सन् १०६८ हि० के मुहर्रम महीने में शाहजहाँ दिल्ली से आगरे आया और शोरबा तथा बलवर्द्धक शर्बतों के पीने से वह स्वस्थ हो गया। तकर्रुब ख़ाँ को ऊँचा मनसब पाँच हजारी मिला। इसके अनंतर जब औरंगजेब हिंदुस्तान का बादशाह हुआ और उसने शाहजहाँ को आगरा दुर्ग के एक कोने में अकेले बैठा दिया तब तक़र्रुब ख़ाँ को, जो शाहजहाँ की बराबर दवा करने के कारण उसकी प्रकृति से विशेष परिचित हो गया था, तीस सहस्र अशर्फी पुरस्कार में देकर उस पर बादशाही कृपा की और बचे हुए रोगों को अपने उपाय से अच्छा करने के लिए शाहजहाँ की सेवा में नियत कर दिया। इसके अनंतर कुछ कारणों से यह औरंगजेब द्वारा दंडनीय

होकर बादशाह की कृपादृष्टि से उतर गया और कुछ समय तक एकांतवास करता रहा। ५ वें वर्ष के आरंभ में तीव्र ज्वर आने से औरंगजेब बहुत निर्बल हो गया और इसी बहाने तक़र्रुब खाँ पर दूसरी बार कृपा हुई पर इसकी दवा नहीं हो पाई। इसलिए इसे लौटने की छुट्टी मिल गई। उसी वर्ष सन् १०७३ हि० (सन् १६६३ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र महम्मद अली खाँ को बादशाही कृपा से खिलअत मिला और मालिन्य का वस्त्र उतरवा दिया गया अर्थात् वह क्षमा किया गया। अपने पिता के दोषों के कारण इसका मनसब छिन गया था पर इस समय इसे डेढ़ हजारी २०० सवार का मनसब मिला। यह बादशाही दरबार में सम्मान पाने के कारण अच्छे लोगों की ईर्ष्या का पात्र हुआ और इसने प्रसिद्धि प्राप्त की, इसलिए इसका जीवन-वृत्तांत अलग दिया गया है।

तरख़ान मौलाना नूरुद्दीन

इसका जन्मस्थान जाम था और यह मशहद का रहने-वाला था। यह रिज़वी था। इसका पिता सुलतानअली उपनाम सुलतानी हिरात में धार्मिक काम से रहता था। मौलाना अपनी योग्यता, गुण, वीरता तथा उदारता में प्रसिद्ध था और सामुद्रिक, हिंदुसा तथा रमल में इसका अच्छा गम था। यह काज़ी बुर्हान ख़्वाफी के साथ बाबर की सेवा में पहुँचा और हुमायूँ के साथ मित्रता रखते हुए यह उसके दरबार के ज्योतिषियों और दरबारियों में परिगणित हो गया। इराक़ जाते समय यह भी बादशाह के साथ था। इसने कुल बीस वर्ष बादशाह की सेवा में व्यतीत किया था। कभी बादशाह इससे विद्याओं के बारे में पूछते और कभी यह गणित, विशेष कर ज्योतिष, के विषय में हुमायूँ बादशाह से पूछ-ताछ करता था, जो इस विषय का अच्छा ज्ञाता था। यह कवि था और इसने एक दीवान तैयार किया है। उसके एक शैर का उर्दू रूपांतर इस प्रकार है—

पहुँचा न हाथ वस्ल के दामन तलक तेरे।
हो नामुराद बैठा हूँ दामाँ तले तेरे॥

इसका उपनाम नूरी था और इसको नूरी सफ़ेदूनी कहते थे। सफ़ेदून दिल्ली के अंतर्गत एक क़सबा है, जो बहुत समय

तक इसकी जागीर में था और इसी कारण यह सफ़ेदूनी अल्ल से प्रसिद्ध हुआ।

अकबर ने अपने राज्य-काल में इसकी पुरानी सेवा तथा योग्यता के कारण इस पर कृपा कर पहिले ख़ाँ की पदवी और उसके अनंतर तरखान की पदवी देकर डंका और झंडा प्रदान किया तथा इसकी जागीर सामाना का प्रबंध इसकी ओर से मीर सैयद मुहम्मद को सौंप दिया। १०वें वर्ष शेर महम्मद दीवाना, जो वास्तव में ख़्वाजा मुअज़्ज़म का सेवक था और उसके बाद बैराम ख़ाँ के पास पहुँच कर अपने सौंदर्य के कारण उसका पार्श्ववर्ती होकर विश्वासपात्र बन बैठा था, उन घटनाओं के समय इधर-उधर मारा फिरता था और बादशाही सेवा में न लिए जाने के कारण कुछ दिन से उसी कसबे में रहने लगा था, एक दिन मौलाना के प्रतिनिधि को अपने घर निमंत्रित किया। इसी सत्संग में तीर की नोक को रेती पर तेज़ करने लगा। एकाएक तीर को धनुष पर रखकर उस निर्दोष की छाती में मार दिया, जिससे उसका काम तत्काल समाप्त हो गया। जो कुछ उसका सामान और सम्पत्ति थी, उसे लेकर इसने कुछ बदमाशों को इकट्ठा कर लिया और उसके सूबे के आसपास लूटमार करने लगा। मौलाना ने इस उपद्रव को शांत करने के लिये साहस किया। जब दोनों का सामना हो गया तब उस घमंडी ने मौलाना की सेना पर धावा किया। धावे में उसका घोड़ा एक वृक्ष के तने तक पहुँच कर गिर पड़ा। कुछ पैदल सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया और मौलाना ने उसे तुरंत मरवा डाला। मौलाना

नूरुद्दीन मुहम्मद ख़ाँ को तरखान की पदवी मिली थी और तरखान का अर्थ नहीं रखता था। इस पर उसने यह किता कहा है। शेर—

यहाँ पाँच शेर दिए हैं। अर्थ की आवश्यकता नहीं।

अपनी अंतिम अवस्था में यह हुमायूँ के मकबरे का मुतवल्ली नियत हुआ और वहीं उसकी मृत्यु हुई।

तरदी खाँ

यह क़िया खाँ गंग[1] का पुत्र था। इसके पिता की मृत्यु पर अकबर बादशाह ने कृपा करके इसे योग्य मनसब दिया। इसके बाद शाहज़ादा सुलतान दानियाल के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नियत होकर इसने अच्छी सेवा की। इसके अनंतर कुछ असावधानी का काम करने से यह कृपादृष्टि से गिर गया पर पुनः ४९वें वर्ष में कृपापात्र होने पर इसका मनसब बढ़कर दो हज़ारी ५०० सवार का हो गया और पाँच लाख दाम इसे पुरस्कार में मिला।

तरदीबेग ख़ाँ तुर्किस्तानी

यह हुमायूँ बादशाह की सेवा में नियत था। गुजरात के विजय के अनंतर यह चाँपानेर के शासन पर नियत हुआ। जब मिर्जा असकरी, जो गुजरात का सूबेदार था, सुलतान बहादुर से परास्त होकर उपद्रव के विचार से आगरे की ओर चला गया और सुलतान बहादुर महीन्द्री नदी पारकर चाँपानेर आया तब यह दुर्ग की दृढ़ता और दुर्ग-रक्षा के सामान की अधिकता होते हुए भी साहस छोड़ कर मांडू में हुमायूँ के पास चला आया। यह इतना विश्वासपात्र और मित्र होते हुए भी वास्तव में शील और विश्वास से बिलकुल खाली था, जिनसे बढ़ कर सेवा-कार्य के लिए संसार में कोई अन्य वस्तु नहीं हैं। उस उपद्रव-काल में, जिसे कुछ तत्त्वज्ञानी लोग स्वामि-भक्ति समझते हैं और जिसे सभी साधारण लोग स्वामि-भक्ति के नियमों के विरुद्ध मानते हैं, इसने स्वार्थ, कंजूसी और द्रोह से सब कुछ किया। एक दिन राव मालदेव के राज्य में यात्रा करते हुए बादशाह की सवारी के लिये कोई खास घोड़ा नहीं रह गया था इसलिये इससे घोड़ा माँगा गया पर इसने नहीं दिया। तब नदीम कोका ने अपनी माँ की सवारी का घोड़ा दे दिया और उस बूढ़ी को ऊँट पर सवार कराया। जब बादशाही सेना अमरकोट पहुँची और वहाँ सामान की बहुत कमी हो गई तब जो सामान तथा संपत्ति इसने बादशाही सेवा में इकट्ठी की थी उसे

माँगने पर भी नहीं दिया। बादशाह ने वहाँ के शासक राय प्रसाद की सम्मति से इसको कुछ दूसरों के साथ, जो संपत्ति-वान थे, क़ैद करा दिया और न्याय के विचार से अधिकतर सामान उनको लौटा कर तथा कुछ आवश्यक सामान लेकर अन्य सेवकों में बाँट दिया। एराक़ जाते समय तरदीबेग खाँ बहुत से सेवकों के साथ अकारण कंधार के पास से अलग होकर मिर्ज़ा असकरी के यहाँ चला गया। मिर्ज़ा हर एक को सम्पतिवान होने की आशंका से अपने नौकरों को सौंप कर कंधार लिवा लाया। बहुतों को शिकंजे में कस कर मार डाला और तरदी बेग खाँ से बहुत सा धन ले लिया।

जब हुमायूँ एराक़ से लौटा तब यह बड़ी लज्जा और नम्रता के साथ सेवा में उपस्थित होकर उसी सरदारी के पद पर बहाल हो गया। बादशाह ने सन् ९५५ हि० में मिर्ज़ा सुलतान के पुत्र मिर्ज़ा उलुग़ बेग के स्थान पर इसको ज़मींदावर की जागीर देकर वहाँ का प्रबंध ठीक करने भेज दिया। हिंदुस्तान की चढ़ाई में इसने बहुत प्रयत्न किया था, इस लिये मेवात जागीर में पाकर इसका विश्वास और सनमान बढ़ा। सन् ९६३ हि० में ७ रबीउल् अव्वल को जब हुमायूँ बादशाह राजधानी दिल्ली में मसजिद की छत पर से उतरते समय फिसल कर गिर पड़ा और मर गया तथा जिसकी मृत्यु तिथि 'हुमायूँ बादशाह अज़-बाम उफ़्ताद' (हुमायूँ बादशाह छत से गिर पड़ा) से निक-लती है, तब तरदी बेग खाँ ने, जो अमीरुल्उमरा होने का विचार रखता था, अकबर बादशाह के नाम खुतबा पढ़वाया और राजचिह्न के सब सामान मिर्ज़ा कामराँ के पुत्र मिर्ज़ा

अब्दुल् कासिम के साथ अकबर के पास भेज दिया, जो पंजाब प्रांत में प्रबंध कर रहा था। इस अच्छी सेवा के उपलक्ष में यह पाँच हजारी मनसब पाकर सम्मानित हुआ और दिल्ली के सरदारों की सम्मति से उसी प्रांत में प्रबंध करने ठहर गया। शेरशाह का एक योग्य दास हाजी ख़ाँ नारनौल के पास विद्रोह कर चारों ओर की भूमि पर अधिकार कर रहा था। इसने उस पर चढ़ाई कर उस प्रांत को उससे ले लिया और मेवात तक उसका पीछा कर बहुत से विद्रोहियों को दंड दिया तथा वहाँ से लौट कर दिल्ली में शांति स्थापित करता रहा।

इसी समय हेमू बक्काल, जिसके वंश आदि का पता नहीं है और जो पहिले रेवाड़ी कस्बा में बड़ी गरीबी में गलियों में घूम-कर निमक बेचा करता था, कपट से सलीमशाह के बक्कालों में भरती हो गया और अपनी बातचीत तथा चुगलखोरी से उसका परिचित हो गया था। मुबारिज़ ख़ाँ अदली के गद्दी पर बैठने पर वकील, सेनापति और पूर्ण अधिकारी होकर इसने अपने साहस और उदारता से कई बड़े बड़े काम किए। इसने पहिले अपना नाम बसंत राय और फिर राजा विक्रमाजीत रखा। यह घोड़े पर सवारी करना नहीं जानता था, इसलिये हाथी ही पर बैठता था और बहुत से हाथी इसने एकट्ठा कर लिए थे। पाँच सौ मस्त लड़ाकू हाथी इसके पास हो गए थे। हुमायूँ की मृत्यु का समाचार सुन कर यह पचास सहस्र सवार, एक हजार हाथी, इक्यावन तोप और पाँच सौ पथरनाल लेकर दिल्ली पहुँचा और तुग़लकाबाद के पास पड़ाव डाला। इसके उपद्रव के कारण आसपास के सभी सरदारगण तर्दीबेग के पास इकट्ठे हो गए

थे और सब की राय यही थी कि दुर्ग के बुर्ज आदि को दृढ़ करके बादशाह के लौटने की प्रतीक्षा की जाय परंतु तरदीबेग ख़ाँ ने इन सब को बढ़ावा और साहस दिला कर युद्ध के लिये तैयार किया। २ ज़ीहिज्जा को उक्त वर्ष में युद्ध हुआ और बड़ी बहादुरी से लड़ कर इसने शत्रु की सेना को हटा दिया। बहुत से भाग कर निकल गए और कुछ मारे गए। तरदीबेग ख़ाँ कुछ लोगों के साथ खड़ा हुआ तमाशा देख रहा था कि एकाएक हेमू ने एक ओर से निकल कर इस पर धावा कर दिया। अफ़ज़ल ख़ाँ ख्वाजा सुलतान अली और अशरफ ख़ाँ मीरमुंशी कादरता से तथा मुल्ला पीरमुहम्मद शरवानी, जो बैराम ख़ाँ का अनुयायी था और तरदी बेग ख़ाँ के पराजय पर सेनापति होना चाहता था, साथ ही भाग गए। तरदी बेग ख़ाँ भी जीवन को नाम से अच्छा समझ कर लज्जा छोड़ भाग गया। ऐसा काम करके भी यह सरहिंद में बादशाही सेना में जा मिला, जो हेमू को दमन करने के लिये रवाना हो चुकी थी। बैराम ख़ाँ इसको अपने समकक्ष पहुँचा हुआ समझ कर इसकी ओर से सशंकित रहा करता था और यह भी अपने को बादशाह का सेनापति समझ कर बैराम ख़ाँ को उखाड़ने का बराबर प्रयत्न किया करता था तथा धार्मिक कट्टरपन भी एक कारण था। इसलिये ऐसे समय जब तरदी बेग ख़ाँ पराजय के कारण लज्जित और असम्मानित होकर आया तब बैराम ख़ाँ ने मित्रता की चाल पर इसे अपने यहाँ बुलवाया। इसको अपने खेमे में छोड़ कर शौच के बहाने जब वह बाहर चला गया तब उसके नौकरों ने इसे आकर मार डाला। शैर—

किसी को युद्ध के बाद देखे तो यदि शत्रु हो तो मार डाल, जो युद्ध में भी न मारा गया हो ।

उस दिन अकबर सरहिंद के जंगलों में बाशे का शिकार खेल रहा था, इसलिये उसके लौटने पर वैराम ख़ाँ ने कहला भेजा कि इस साहसिक कार्य का कारण स्वामिभक्ति को छोड़ कर और कुछ न था। तरदी वेग ख़ाँ इस युद्ध से जान बूझ कर भागा था। उसकी उद्दंडता और विद्रोह हमें ज्ञात है और यदि इस प्रकार के दोषों पर ध्यान न दिया जाय तो राज्य के काम पूरे न पड़ेंगे और आदेश न लेने के कारण मैं स्वयं लज्जित हूँ पर जानता हूँ कि श्रीमान् अपनी कृपा के कारण क्षुब्ध न होंगे। अकबर ने अवसर समझ कर खानखानाँ की बात स्वीकार कर ली पर यह पुराना अच्छा सरदार था इसलिये बादशाह को बुरा अवश्य मालूम हुआ और चग़त्ताई सरदार भी वैराम ख़ाँ से मन में द्वेष रख कर शंका में रहने लगे।

तर्बियत ख़ाँ अब्दुर्रहीम

यह अकबर के एक सरदार शुजाअत खाँ के पुत्र मुक़ीम ख़ाँ के पुत्र क़ायम खाँ का लड़का था। मुक़ीम खाँ अपने पिता की मृत्यु पर योग्य मनसब पाकर अकबर के राज्य-काल के अंत में सात सदी तक पहुँचा था। इसके अनंतर जब जहाँगीर ने राजगद्दी के ३रे वर्ष कायम ख़ाँ की पुत्री सालिहाबानू को विवाह कर उसे बादशाह महल की पदवी दी तब इनका काम जल्दी बढ़ने लगा। अब्दुर्रहीम उक्त वर्ष अच्छा मनसब और तर्बियत ख़ाँ की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। बाद को सात सदी ४०० सवार का मनसब पाया। ५वें वर्ष आलोर परगने का फौजदार नियत हुआ। ९वें वर्ष इसके मनसब में पाँच सदी ५०० सवार बढ़ाए गए। इसके पुत्र मियाँजू ने, जिसे बादशाह महल ने अपना संतान मान लिया था, उस वर्ष[1] इसको परलोक भेज दिया, जिस वर्ष महाबत ख़ाँ ने झेलम नदी के किनारे बादशाह के साथ बड़ी उद्दंडता की थी।

---

१. सन् १६२६ ई० में महाबत खाँ ने जहाँगीर को अपनी रक्षा में ले लिया था।

तर्बियत खाँ फखरुद्दीन अहमद बख़्शी

यह जहाँगीर के राज्य-काल में तूरान से हिंदुस्तान आकर तथा बादशाही सेवा में मनसब पाकर सम्मानित हुआ और मनसब के कम होने पर भी शाही परिचय प्राप्त कर लेने से यह अपने बराबर वालों से अधिक प्रसिद्ध हो गया। शहरयार के झगड़े में आसफ़ खाँ यमीनुद्दौला के साथ अच्छी सेवा करने पर बादशाह की इस पर उचित कृपा हुई। शाहजहाँ की राजगद्दी पर इसे तर्बियत खाँ की पदवी मिली। ६ठे वर्ष इसको तूरान के लिये अपना राजदूत नियत कर वहाँ के शासक नज़र मुहम्मद ख़ाँ के राजदूत रक्कास हाजी के साथ उस प्रांत को भेजा और ख़ाँ के पत्र का उत्तर तथा हिंदुस्तान की सौग़ात, जो एक लाख रुपए के मूल्य की थी, उक्त खाँ के हाथ भेजा। ८वें वर्ष में राजदूत का कार्य बड़ी योग्यता से पूरा कर यह लौट आया और ४५ घोड़े और उतने ही ऊँट तथा ऊँटनी तथा अन्य वस्तुएँ भेंट कीं। इनमें एक कुरान था, जो अमीर तैमूर साहिबक़िराँ के पुत्र जहाँगीर मिर्ज़ा और इसके पुत्र सुलतान महम्मद मिर्ज़ा की पुत्री शाहमलिक खानम् की लिखी हुई थी। यह रैहान लिपि में बहुत ही सुंदरता से लिखी हुई थी और पुष्पिका में उसने अपना नाम तथा वंश रिक़ाअ लिपि में लिखा था। उक्त खाँ ने इसको बल्ख़ में प्राप्त किया था। शाहजहाँ ने इसे अपने पूर्वजों का स्मारक समझ कर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की।

कहते हैं कि जब तर्बियत खाँ उस प्रांत की ओर गया तब हिंदुस्तान का पहिरावा यहाँ लौटने तक छोड़ कर वहाँ का पहिरावा पहिरता था, इसलिये उसी उजबकी पगड़ी को पहिरे हुए यह सेवा में उपस्थित हुआ, जिसे देख कर शाहजहाँ बहुत प्रसन्न हुआ। इसी समय इसका मनसब बढ़ कर डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया और यह आख़ता बेगी पद पर नियत हुआ। ९वें वर्ष में दक्षिण से लौटते समय जब बादशाही पड़ाव मांडू में हुआ तब तर्बियत खाँ सेना के साथ जैतपुर के ज़मींदार को दमन करने पर नियत हुआ, जो विद्रोही हो गया था। उक्त खाँ उसको परास्त कर अपने साथ दरबार लिवा लाया। १०वें वर्ष पाँच सदी जात मनसब में बढ़ा और मोतमिद खाँ के स्थान पर यह द्वितीय बख़्शी नियत हुआ। १४वें वर्ष में शाह कुली खाँ के स्थान पर यह कश्मीर का सूबेदार नियुक्त हुआ। १५वें वर्ष में जब बहुत अधिक वर्षा के कारण उस प्रांत में झेलम नदी में बाढ़ आई और उस उपद्रवी बाढ़ से बहुत से मौज़ों की खरीफ फसल नष्ट हो गई तथा इससे उस प्रांत के खेतिहरों का बहुत खराब हाल था तब उक्त खाँ जैसी कि गरीबों और पीड़ितों की सहायता करनी चाहिए थी और जैसी कि ऐसे समय करना उचित था नहीं कर सका। उस देश के बाढ़-पीड़ितों ने इसके सलूक की बहुत शिकायत की और अपनी अप्रसन्नता हर प्रकार से प्रगट की थी, इस कारण यह उक्त पद से हटाए जाने पर दरबार आया।

जख़ीरतुल् ख़वानीन का लेखक लिखता है कि जब शाहजहाँ ने बल्ख़ और बदख़्शाँ पर अधिकार करने का विचार

किया तब तर्बियत ख़ाँ से इस बारे में पूछा। उस सच्चे आदमी ने, जो उस प्रांत के वृत्तांत से नया-नया अवगत हो चुका था, बेधड़क प्रार्थना की कि उस देश की आप कभी इच्छा न करें, क्योंकि वहाँ घोड़े और आदमी चींटी और पिस्सू से बढ़कर हैं तथा हिंदुस्तान के आदमी वहाँ के बर्फ और जाड़े को किसी प्रकार सहन नहीं कर सकेंगे तथा चढ़ाई में विजय न होगी। दैवात् एक दिन मुल्ला फाज़िल काबुली से भी, जो अपने समय का अच्छा विद्वान् था, अपने पैतृक देश को चंगेज़ी सुलतानों के हाथ से, जो विना स्वत्व के उस पर अधिकृत थे, ले लेने पर बातचीत की। उसने कहा कि वहाँ के आदमियों से अकारण युद्ध करना, जो सभी धार्मिक मुसलमान हैं, शरअ के अनुसार उचित नहीं है। बादशाह ने विचलित होकर कहा कि ऐसे समय में भी तुम ऐसा फ़तवा देते हो और यह सरकारी बख़्शी होकर सेना को बर्फ और जाड़े से डराता है, तब किस प्रकार यह चढ़ाई सफल होगी। इसके अनंतर मुल्ला को काबा भेज दिया और तर्बियत ख़ाँ को बख़्शी के पद से हटा दिया। उक्त ख़ाँ इसी समय क्षुब्ध होकर मर गया। पर यह बात उसके वृत्तांत के अनुकूल नहीं है क्योंकि बख़्शी होने के बाद यह कश्मीर का सूबेदार हुआ था तथा १९ वें वर्ष में बल्ख की चढ़ाई हुई थी और उस समय यह स्यात् जीवित था। यद्यपि इसकी मृत्यु की मिती नहीं मिलती पर यह कहा जा सकता है कि यह दूसरी बार बख़्शी हुआ होगा या बल्ख के विजय का विचार बादशाह के मन में बहुत पहिले हुआ होगा और काम में न लाया गया होगा। संक्षेप में जो कुछ तर्बियत ख़ाँ ने आशंका

की थी वही दिखलाई पड़ी कि हिंदुस्तान की सेना उस ठंढे देश में न ठहर सकी और उस पर अधिकार करके भी उसे छोड़ देना पड़ा। शाहजहाँ ने यह हालत देखकर तर्बियत ख़ाँ की सम्मति की प्रशंसा की और उसके पुत्रों पर कृपा की। तर्बियत ख़ाँ की ओर से बादशाह के मन में जो मालिन्य आ गया था उसे दूर कर इसके बड़े पुत्र मिर्ज़ा महम्मद अफ़ज़ल पर कृपा की, जो घुड़सवारी तथा तीर चलाने में अद्वितीय था। कहते हैं कि इसका पिता पुत्र को ऐसे घोड़े पर सवार कराता था, जो बहुत बदमाश था। लोग कहते कि आज या कल इस लड़के का हाथ या पैर टूटेगा। यह उत्तर देता कि यह मरेगा या शह सवार होगा। यह लिखने और सभा चातुरी में कुशल था और अमीरी तथा स्वच्छता के साथ रहता था। दक्षिण का सूबेदार खानदौराँ पिता की मित्रता के विचार से इसे साथ रखता था और इसलाम ख़ाँ की मृत्यु पर इसको अपनी मित्रता के योग्य समझ कर दक्षिण लिवा गया और पाथरी का फौजदार नियत किया। उसके अनंतर जब शाहनवाज़ ख़ाँ दक्षिण आया तब इसको धूँदापुर के पास फौजदारी दी। इसका मनसब पाँच सदी ५०० सवार का था। २५ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हुई। दूसरा पुत्र फकीरुल्ला सैफ़ ख़ाँ था, जिसका वृत्तांत अलग दिया है।

तर्बियत ख़ाँ बर्लास

इसका नाम सफीउल्ला था और यह विलायत का पैदा था। शाहजहाँ के राज्यकाल में यह शाही सेवकों में भर्ती हो गया और बादशाह के परिचय प्राप्ति का सम्मान पाकर मीर तुज़ुक पद पर नियत''हुआ। १९ वें वर्ष में यह राजधानी लाहौर के दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ और इसे एक हज़ारी मनसब मिला। २० वें वर्ष में पुनः मीर तुज़ुक होकर इस कार्य पर नियत हुआ कि ग़ोरबन्द तक जाकर बल्ख़ के हर एक सहायक की, जो'शाहज़ादा महम्मद औरंगजेब के यहाँ नहीं पहुँच चुका था, सज़ावली कर शीघ्र भेज दे। शाहज़ादा उस प्रांत का प्रबंध करने के लिये भेजा गया था। २२ वें वर्ष में काबुल लौट कर यह शाही सेवा में पहुँचा और मनसब में पाँच सदी उन्नति पाकर अपने पद का काम करने लगा। २३वें वर्ष में सादुल्ला खाँ के साथ कंधार की चढ़ाई पर से लौटकर दरबार आया और तर्बियत ख़ाँ की पदवी पाकर संमानित हुआ। २४ वें वर्ष में मुर्शिद कुली ख़ाँ के स्थान पर आख़्ताबेगी नियत हुआ। २६ वें वर्ष में मीर तुज़ुकी के साथ तोपख़ाने का दारोगा नियत हुआ। २९ वें वर्ष में झंडा और दो हजारी १५०० सवार का मनसब पाकर यह शाहज़ादा महम्मद शुजाअ के प्रतिनिधि रूप में उड़ीसा प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। ३१ वें

---

* विलायत से यहां तात्पर्य भारत के बाहर के मुसलमानी देश से है।

वर्ष में इसके मनसव में कुछ सवार वढ़ाए गए, डंका मिला और अवध का सूवेदार नियुक्त हुआ। साम्राज्य के विप्लव-काल में यह दरबार में था पर दाराशिकोह के परास्त होनेपर नूर-मंजिल बाग़ में औरंगजेब की सेवा में पहुँचा। दाराशिकोह का पीछा करने के लिये आगरे से आलमगीरी सेना के रवाना होने के पहिले इसका मनसब डेढ़ हजारी २००० सवार वढ़ने से चार हजारी ३००० सवार का हो गया और यह अजमेर का शासक नियत हुआ। इसके अनंतर जब दाराशिकोह घूमता फिरता हुआ गुजरात पहुँचा और नया प्रबंध कर नई सेना के साथ अजमेर की ओर रवाना हुआ तब तर्वियत ख़ाँ उसके पहुँचने के पहिले दुर्ग से निकल कर औरंगजेब की सेना में आगे वढ़कर जा मिला, जो युद्ध के लिए अजमेर की ओर आ रही थी। औरंगजेब की विजय होने के बाद अजमेर का पहिले की तरह यह शासक नियत हुआ। औरंगजेब के ३रे वर्ष लशकर ख़ाँ के स्थान पर दारुल् अमान का शासक नियत हुआ।

जब ईरान के राजा शाह अब्बास द्वितीय ने कलंदर सुल-तान चोला तफ़ंगची आक़ासी के पुत्र आक़ावेग को, जो उस राज्य का एक अच्छा सरदार था, अपना राजदूत नियत कर बादशाह औरंगजेब के यहाँ उसकी राजगद्दी की वधाई का पत्र लेकर भेजा तब उक्त आक़ावेग दरबार में उपस्थित हुआ और उसे उसी वर्ष लौटने की छुट्टी मिल गई। ऐसे पत्रों का उत्तर भेजना साधारणतः तथा विशेष कर बड़े-बड़े बादशाहों के बीच में उचित तथा नियमित है और ऐसे पत्र-व्यवहार से बहुत कुछ लाभ होता है, इस कारण तर्वियत ख़ाँ को, जो एक अच्छा तथा

सम्पत्तिवान सरदार था, १००० सवार की उन्नति देकर ६ठे वर्ष ईरान का राजदूत नियत कर वहाँ भेजा। इसके साथ हिंदुस्तान की अलभ्य तथा बहुमूल्य वस्तुएँ, जो सात लाख रुपए से अधिक की थीं, भेंट में भेजी गईं॥ उक्त खाँ ने इस्फहान में, जो ईरान की उस समय राजधानी थी, शाह से भेंट की। इसकी अयोग्यता से यह मिलन ठीक नहीं बैठा। तर्बियत खाँ, जो गंभीर तथा अनुभवी नहीं था, ओछापन करने लगा। शाह भी, जो यौवन की मस्ती और बादशाही के घमंड से भरा हुआ था और जिसका मस्तिष्क, जो बुद्धिरूपी गृह का दीपक है, क्षुब्ध हो जाने से उन्माद तथा पागलपन से खाली न था, अपना ऐश्वर्य तथा उच्चता प्रगट करने लगा, जो बड़े लोगों को शोभा नहीं देता। अस्तु, जो बातें हुईं और जनसाधारण की जिह्वा पर थीं, वे यहाँ लिखने योग्य नहीं हैं।

अंत में तर्बियत खाँ बहुत कुछ अप्रतिष्ठा उठाने के बाद एक वर्ष के अनंतर फर्रुखाबाद से लौटने की आज्ञा पाकर हिंदुस्तान की ओर रवाना हुआ। जहाँगीर तथा शाहजहाँ के समय के राजदूतों के विरुद्ध, जैसे खान आलम दोलदी और सफ़दर खाँ आक़ासी, जिन्होंने इस बड़े काम को बड़ी योग्यता से पूरा किया था, लाभ तथा मित्रता का बाधक बन गया, जो बड़े बड़े नरेशों के बीच में मेल की नींव और परिचय के स्तंभ होते हैं और जिनसे संसार तथा संसारियों को आराम मिलता है। संक्षेप में यही हुआ कि इतने दिनों की मित्रता के स्थान पर शत्रुता ने मन में जगह कर लिया और दोनों पक्ष से चढ़ाइयाँ हुईं। तर्बियत ख़ाँ के लौटने

के अनंतर शाह ने भारी सेना खुरासन पर भेजी और स्वयं भी युद्ध की तैयारी की। जब उक्त ख़ाँ का लिखा हुआ यह वृत्तांत; जो साम्राज्य की सीमा के भीतर आ चुका था, औरंगजेब को मिला तब उसने शाहज़ादा मुहम्मद मुअज़्ज़म को ९वें वर्ष में बीस सहस्र सवारों के साथ काबुल भेजा। दैवयोग से प्रथम रबीउल् अव्वल सन् १०७७ हि० को गले की बीमारी से शाह मर गया और तर्बियत ख़ाँ का उभाड़ा हुआ यह उपद्रव शांत हो गया। उक्त ख़ाँ ईरान से आगरे के पास पहुँचा और बादशाह द्वारा दंडनीय होकर उसे सेवा में उपस्थित होने से मना कर दिया गया। १०वें वर्ष फिर कृपा होने से यह चार हजारी ३००० सवार का मनसब पाकर ख़ानदौराँ के स्थान पर उड़ीसा का सूबेदार नियत हुआ। १३वें वर्ष में फिदाई ख़ाँ की ज़गह अवध का शासक हुआ। यहाँ से दरबार जाकर जिलौ के मनसबदारों का दारोगा हुआ। १९वें वर्ष में अमीर ख़ाँ के स्थान पर बिहार का सूबेदार हुआ। जब २०वें वर्ष में यह प्रांत शाहज़ादा महम्मद आज़म को जागीर में मिला तब उक्त ख़ाँ तिरहुत और दरभंगा का फौजदार नियत हुआ। २४वें वर्ष में यह जौनपुर का फौजदार नियत हुआ और वहीं २८वें वर्ष सन् १०९६ हि० (सन् १६८५ ई०) में मर गया। इसके पुत्र हिदायतुल्ला को दरबार में पहुँचने पर शोक का ख़िलअत मिला। एक कहानी तर्बियत ख़ाँ के नाम से सुनी जाती है, जो इसी तर्बियत ख़ाँ की ज्ञात होती है। कहते हैं कि एक दिन शाहजहाँ प्रातःकाल यमुना नदी के किनारे जल-कुक्कुटों का अहेर खेल रहा था। ठंढी भाप धुएँ के समान, जो नदियों के

किनारे तथा तालाबों से उठती रहती है तथा जिसे हिंदी में कोहरा कहते हैं, हवा में भर उठी थी। बादशाह ने प्रसन्नता से कहा कि अवसर के अनुकूल किसी का शैर पढ़ो। तर्बियत ख़ाँ ने अर्ज किया। शैर—

अशुभ व बुरे पैर, यदि नदी तक जायँ तो धुँआ निकले॥

तर्बियत खाँ मीर आतिश

इसका नाम मीर महम्मद खलील था और यह दाराब खाँ का बड़ा पुत्र था, जो मुख्तार के पुत्रों में से था। यह औरंगज़ेब के राज्य-काल के अंत में सेवा में आकर अपने साहस और वीरता से थोड़े ही समय में बहुत प्रसिद्ध हो गया। ४०वें वर्ष में दो हज़ारी १२०० सवार का मनसब पाकर यह ब्रह्मपुरी से, जहाँ उस समय बादशाही पड़ाव पड़ा हुआ था, महादेव पर्वत के विद्रोहियों को दमन करने पर नियत हुआ। उक्त खाँ के प्रस्ताव पर दूँदीराव, जो उक्त खाँ के ही द्वारा लाया हुआ था, डेढ़ हज़ारी मनसब पाकर उस पर्वत का थानेदार नियत हुआ। इसके अनंतर यह मीर आतिश नियत होकर ४२वें वर्ष में शत्रु की छावनी हटाने के लिए भेजा गया और इसके मनसब में पाँच सदी बढ़ाया गया। यह इसके बाद बराबर दक्षिण के दुष्टों को दंड देते हुए सुरक्षित लौट आया और मरहठों के दुर्गों पर मोरचाबंदी करने तथा दमदमा बाँधने में इसने बहुत अच्छा काम किया। जब ४३ वें वर्ष में ५ जमादि उल् अव्वल सन् ११११ हि० को बादशाह औरंगज़ेब इसलाम पुरी में चार वर्ष तक ठहरने के अनंतर शिवाजी भोसला के दुर्गों को धार्मिक कट्टरता के कारण विजय करने के विचार से वहाँ से बाहर निकला और मुर्तज़ाबाद मिर्च से आगे बढ़कर मैसूरी थाना में पड़ाव डाला तब तर्बियत खाँ मीर आतिश आज्ञा के अनुसार बसंतगढ़ के

मोर्चों का निरीक्षक नियत हुआ, जो दुर्ग मैसूरी थाना से तीन कोस पर था। इसने अपनी योग्यता तथा तत्परता से दो दिन में दो वर्ष का काम कर तोपख़ाने के आदमियों को दुर्ग की दीवाल के नीचे पहुँचा दिया। दुर्गवाले गोले बरसाने से रुक नहीं रहे थे इसलिए बादशाही पेश ख़ेमा कृष्णा नदी के किनारे खड़ा किया गया, जो दुर्ग की दीवार से एक कोस की दूरी पर बहती थी। उसी दिन दुर्गवाले जान बचा लेना उचित समझ कर गढ़ से बाहर निकल गए और दुर्ग विजय हो गया। मीर अब्दुल् जलील बिलग्रामी ने 'कोहे कुफ़् शिकस्त' (कुफ़् का पहाड़ टूटा) में तारीख़ निकाली। उसके अनंतर बादशाही सेना सितारा दुर्ग विजय करने चली, जो बहुत ऊँचे पहाड़ पर स्थित है और शिवाजी के दुर्गों में सबसे बड़ा और दृढ़ था तथा जिसमें अब उसके पौत्र राजा साहू रहते थे। २५ जमादिउल् आख़िर को दुर्ग से आध कोस पर बादशाही सेना पहुँची और तर्बियत ख़ाँ मीर आतिश ने दुर्ग तोड़ने तथा शत्रु को दमन करने के लिए मोरचे बाँधना आरंभ किया। इसी समय एक विचित्र घटना हुई। उक्त ख़ाँ ने दुर्ग की दीवार से तेरह जिरअ की दूरी से २४ गज चौड़ा दमदमा एक बुर्ज के सामने बनवाया। इस कार्य में बहुत धन व्यय हुआ और जब देखा कि दुर्ग तोड़ने में वह लाभदायक नहीं है तब उसीके नीचे से सीढ़ियाँ बनाना आरंभ किया। इसमें भी बहुत सामान लगा। अंत में खान दुर्ग के नीचे पहुँची। इसके ऊपर लकड़ी की सीढ़ियाँ लगाईं। दुर्ग की यह दीवार पर्वत के समान तीस गज मोटी थी, जिसका मुंडेर ऊपर छ गज चौड़ा पत्थर से बना

हुआ था। इसलिये ऐसी हालत में उस पर आक्रमण नहीं हो सकता था। इस पर बादशाह ने फतहउल्ला खाँ को रूहुल्ला खाँ के साथ नियत किया कि दूसरा मोरचा बनावें। तर्बियत खाँ नहीं चाहता था कि दूसरे उसके सामने उससे बढ़कर काम करें। अपने विचारों के समर्थन में, जो उसने सीढ़ियाँ बनाने में लगाई थीं, एक ठीक उपाय सोचकर दुर्ग के पत्थरों में एक आला खोदकर एक ओर से १४ गज और दूसरी ओर से १० गज लंबा चौड़ा खाली करा दिया। दुर्गवालों तथा उन बहादुरों में, जो उस आले की चौकी दे रहे थे, अधिक परदा नहीं रह गया था परंतु दोनों पक्ष का कोई आदमी उस एक जिरअ जमीन को पार करने का साहस नहीं कर सकता था। तब यह निश्चय हुआ कि उस सब गढ़े को बारूद से भरकर उड़ा दें, जिसमें धावे के लिये मार्ग खुल जाय। ५ जीकदः को, जब घेरे को चार महीने और कुछ दिन बीत चुके थे, एक फतीले में आग लगा दिया, जिससे दीवाल दुर्ग के भीतर की ओर गिरी और बहुत से दुर्गवाले दब गए। जब दूसरे फतीले में आग लगाया तब यह समझ कर कि इस बार भी दीवाल भीतर ही की ओर गिरेगी धावे करने की प्रतीक्षा में मोरचे के सैनिकों के सिवा मुखलिस खाँ और हमीदुद्दीन खाँ भी कई सहस्र सवारों के साथ वहीं तैयार खड़े थे। दैवयोग से इस बार दीवार इसी ओर गिरी। बक्सरी, करनाटकी और मावली सैनिकों के सिवा दो सहस्र वीर लड़ाके बहादुर मारे गए। ऐसे भयंकर उपद्रव के समय कुछ पैदल सिपाही दीवाल के ऊपर चढ़ गए और वहाँ से चिल्लाने लगे कि चले आओ, यहाँ कोई नहीं है। सैनिकों पर

इतना भय छा गया था कि कोई भी वहाँ तक जाने का साहस नहीं कर सका। यहाँ तक कि इधर इस चिल्लाने से दुर्गवाले सतर्क होकर उन सब पर आ टूटे और उन सब बेचारों को तलवार से मार डाला।

इस सबसे विचित्र बात यह हुई कि जब दमदमा भी गिर पड़ा और सारा अमला भहरा पड़ा तथा मजदूरों ने काम से हाथ हटा लिया तब पैदल भील सिपाहियों ने, जो अपने भाइयों, पुत्रों तथा मित्रों के दब जाने से घबड़ा उठे थे और मीर आतिश से जलन रखते थे, जब देखा कि इन मुर्दों को पत्थर और मिट्टी के नीचे से निकालना कठिन है और जला देना उनके धर्म में अच्छा है, तब कुल अमले में जो बिलकुल लकड़ी का बना हुआ था, उसी रात्रि आग लगा दिया, जो सात दिन रात बलती रही। यद्यपि मीर आतिश ने दुर्ग विजय करने में बहुत प्रयत्न किए, जो ध्यान में नहीं आ सकते, पर अंत में बादशाही सौभाग्य से इस घटना के नौ दिन के अनंतर १३ ज़ीक़द: को उक्त ४४ वें वर्ष में कुल चार महीने अठारह दिन के घेरे पर दुर्ग विजय हो गया। इसका विवरण दूसरे जगह लिखा जा चुका है। परनाला और पवनगढ़ की मोरचाबंदी में, जो पास-पास ही हैं, जैसा काम हुआ था उसे देखकर दर्शक-गण आश्चर्य में पड़ गए थे। कुछ जरीब जमीन को खोखला कर एक मार्ग निकाला था, जिसमें से तीन जवान साथ-साथ जा सकते थे। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर एक-एक कोठरी सा बनाया था, जिसमें बीस आदमी बैठ सकते थे और जिसमें हर ओर वायु और सूर्य का प्रकाश आने के लिए खिड़कियाँ बनी हुई

थीं। इन कोठरियों में तोपखाने के आदमियों को बैठा दिया था कि दुर्गवालों को गोली चलाकर दीवाल के ऊपर सिर न निकालने दें। इस कूचे को बुर्ज के नीचे पहुँचाकर, जो तोप की मार में थी, उसकी जड़ इतनी खाली कर दी कि उसमें बहुत से आदमी वहाँ चौकी दे सकते थे और शत्रु की गोली गोले उन तक नहीं पहुँच सकते थे। अंत में इस कूचे को फसील की दीवार के नीचे ले जाकर दुर्ग के भीतर पहुँचा दिया। यद्यपि महम्मद मुराद खाँ ने दुर्ग लेने में सहायता की थी पर दूसरे सरदारों ने मीर आतिश के विचार से, जिसने इस काम के पूरा करने का झंडा उठाया था, कुछ प्रयत्न नहीं किया। यह वृत्तांत महम्मद मुराद की जीवनी में दिया गया है। अभी मीर आतिश के सब कार्य पूरे नहीं हुए थे कि दुर्ग-वालों ने शरण में आकर दुर्ग सौंप दिया। ४६ वें वर्ष खेलना दुर्ग विजय होने पर इसका मनसब पाँच सदी बढ़ा। ४७ वें वर्ष इसकी वीरता से कोनदाना दुर्ग विजय हुआ, जिसका नाम बख्शिंदा बख्श रखा गया। ४८ वें वर्ष में राजगढ़ दुर्ग लेने के पुरस्कार में इसका मनसब पाँच सदी २०० सवार बढ़ने से साढ़े तीन हजारी १८०० सवार का हो गया। ४९ वें वर्ष में मंसूर खाँ के स्थान पर यह दक्षिण के तोपखाने के दारोगा के पद पर मीर आतिशी पद के साथ नियत हुआ। उक्त खाँ बनी शाहगढ़ और मुहियाबाद का भीमरा नदी तक जिलेदार नियत था, इसलिए उसका पुत्र महम्मद इसहाक इसका प्रतिनिधि होकर तोपखाने का काम देखता था। इसके अनंतर बहादुर की पदवी पाकर वाकिनकेरा दुर्ग विजय करने पर इसके

मनसब में २०० सवार बढ़ाए गए और डंका पाकर यह सम्मानित हुआ। ५० वें वर्ष में रहमानबख्श की ओर के विद्रोहियों को दंड देने के लिये यह भेजा गया। औरंगज़ेब की मृत्यु पर महम्मद आज़मशाह ने तोपखाने का प्रबंध इसके पद से हटा दिया। कहते हैं कि युद्ध के दिन जब बहादुरशाह की ओर से इसने धावे का जोर देखा तब वहाँ से हाथी को आगे बढ़ाकर बंदूक की निशानेबाजी में अद्वितीय होने के कारण महम्मद अज़ीमुश्शान की ओर दो बार अपनी बन्दूक खाली की पर जब दोनों बार चूक गया तब बन्दूक को पटक दिया'। इसी समय एक गोली इसकी छाती में लगी, जिससे यह मर गया। इसका पुत्र महम्मद इसहाक़ अपने पिता के जीवन-काल ही में योग्यता दिखला चुका था, इसलिये इसके बाद तर्बियत ख़ाँ की पदवी पाकर खुसरू-ज़माँ के राज्य में मीर तुज़ुक प्रथम हुआ। नादिरशाह की लूट में इसका सब धन व सामान नशक़चियों के हाथ लुट गया। लिखते समय वह जीवित था।

तरसून महम्मद खाँ

यह शाह महम्मद सैफ़ुल्मुल्क का भांजा था, जो खुरासान के अंतर्गत गुरजिस्तान देश में रहता था। सन् ९४० हि० में शाह तहमास्प सफवी ने हिरात नगर में पहुँच कर एक सेना नियुक्त की कि इसको दमन करके उस प्रांत पर फिर से अधिकार कर ले। तरसून महम्मद खाँ आरंभ में महम्मद बैराम खाँ का सेवक होकर अपने विश्वास और कार्य से अपने कुल बराबर वालों का सरदार हो गया। जब अकबर का मन बैराम खाँ से फिर गया और वह शिकार के बहाने दिल्ली की ओर रवानः हो गया तब भी बैराम खाँ इतनी बुद्धि और योग्यता रखते हुए इस कार्य से असावधान रह कर कि इच्छा के चिह्न तथा व्यापार के विचार को पासे ने दूसरी तरफ कर दिया, सुचित्त बैठा रहा और यदि वह इस प्रकार की बातें सुनता भी था तो विश्वास नहीं करता था। परंतु जब सरदारों को बुलाने के लिए आज्ञापत्र भेजे गए तब उसे विश्वास हुआ कि इस बार दूसरी ही चाल है। उसने तरसून महम्मद खाँ को अन्य विश्वासपात्रों के साथ बादशाह के यहाँ भेज कर अपनी निर्दोषिता तथा नम्रता प्रगट करते हुए प्रार्थना कराई। तरसून महम्मद खाँ जब बादशाह के सामने गया तब उत्तर में मीठी बातें सुन कर यह कुछ न बोला और इसको लौटने की आज्ञा भी नहीं मिली। जब बैराम खाँ ने, जिसने पहिले यह मार्ग

पकड़ा था, इसे बंद पाया तब चाहा कि स्वयं रोते गाते हुए बादशाह के पास पहुँचे। इसके शत्रुओं ने यह समाचार पाकर अकबर को अच्छी प्रकार समझा दिया कि उसका आना जिस किसी प्रकार से भी हो कपट और उपद्रव से भरा है। इस पर तरसून महम्मद ख़ाँ को अमीर हबीबुल्ला ख़ाँ के साथ विदा कर दिया कि उसको आने से रोक दें और उसका साथ न छोड़ें कि वह मित्रता के बाने में दरबार आवे। बैराम ख़ाँ के जीवन-वृत्तांत में यह सब थोड़ा लिखा जा चुका है और उन सब घटनाओं के अनंतर उसे हज्ज जाने की आज्ञा मिल गई। तरसून महम्मद ख़ाँ को हाजी महम्मद ख़ाँ सीस्तानी के साथ बैराम ख़ाँ के संग भेजा कि वे साम्राज्य की सीमा नागौर तक उसे पहुँचा कर लौट आवें। इसके अनंतर तरसून महम्मद ख़ाँ बादशाही सेवा में नियुक्त होकर सरदारी में बराबर उन्नति करते हुए पाँच हजारी मनसब तक पहुँच गया। कुछ समय तक यह भक्कर का शासक और कुछ समय तक पत्तन-गुजरात का हाकिम नियत रहा। २३वें वर्ष में वहाँ से स्थानांतरित होकर दूसरे वर्ष जौनपुर का फौजदार नियुक्त हुआ और मुल्ला महम्मद यज़्दी को, जो अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान था, उस प्रांत का सदर बना कर साथ कर दिया। जब बंगाल और बिहार के कुछ जागीरदारों ने विद्रोह कर बहुत उपद्रव मचाया तब तरसून महम्मद ख़ाँ ने स्वयं कुछ अन्य विश्वसनीय सरदारों के साथ बिहार प्रांत में पहुँच कर बहादुर ख़ाँ बदख़्शी और अरब ख़ाँ को दंड देने में बहुत प्रयत्न किया, जो उन विद्रोहियों के झुंड में से थे। जब मासूम ख़ाँ फरनख़ूदी

स्वामिद्रोही होकर उपद्रव करने लगा तब तरसून महम्मद खाँ ने शहबाज़ खाँ के साथ उससे युद्ध की तैयारी की। जब २७ वें वर्ष में मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका बंगाल को इन स्वामिद्रोही सरदारों के हाथ से छुटकारा दिलाने को नियत हुआ तब तरसून महम्मद खाँ भी उसके साथ नियुक्त हुआ और उस प्रांत के युद्धों में इसने बड़ी वीरता दिखलाई।

इसके अनंतर जब क़ाक़शाल सरदारगण मासूम खाँ काबुली से अलग होकर, जो विद्रोहियों का सरदार था, बादशाही सेना में पहुँच गए तब मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका ने तरसून महम्मद खाँ को घोड़ाघाट की ओर भेजा, जो क़ाक़शालों का निवासस्थान था, जिसमें कहीं वह शत्रु द्वारा लूट न लिया जाय। तरसून महम्मद खाँ वहाँ का प्रबंध ठीक कर ताजपुर में ठहर गया। इतने में मासूम खाँ आसी विद्रोहियों की भारी सेना एकत्र कर भाटी प्रांत से आ पहुँचा और बादशाही देश को टाँडा से सात कोस तक खूब लूटा तथा कुछ सेना को ताजपूर के आसपास लूटने भेज दिया। तरसून महम्मद खाँ दुर्ग में बैठ रहा। शहबाज़ खाँ कंबू साहस के साथ विद्रोहियों को दंड देने के लिए पटने से रवाना हुआ। बंगाल के सरदारगण और तरसून महम्मद खाँ ने उसके पास पहुँच कर शत्रु से युद्ध आरंभ कर दिया और थोडे ही समय में विजयी हो गए। विद्रोही मासूम खाँ आसी फिर भाटी प्रांत में भाग गया। शहबाज़ खाँ इस विचार से उस प्रांत को ओर चला कि वहाँ का शासक ईसा, जो पहुँचने पर अधीनता की बातें कहता है, यदि इस समय मासूम खाँ को सौंप दे तो हर प्रकार से उसकी बात

सच्ची समझी जायगी और नहीं तो वह झूठा समझा जायगा। जब यह गंगा नदी के किनारे खिजिरपुर के पास ससैन्य पहुँचा, जो उस प्रांत में जाने का उतार है तब कई लड़ाइयाँ हुईं। सोनार गाँव पर अधिकार हो गया और उन उपद्रवियों का निवासस्थान बक्त्रापुर लूट लिया गया। थोड़े ही युद्ध में मासूम ख़ाँ साहस छोड़ कर करीब था कि पकड़ा जावे कि इसी बीच उक्त ईसा, जो अपने प्रांत से रवाना हो चुका था, भारी सेना और बहुत से सामान के साथ आ पहुँचा। बादशाही सरदारगण ब्रह्मपुत्र के किनारे, जो एक बहुत बड़ी नदी है और खत्ता से आती है, दृढ़ता से डट गए और दुर्ग की नींव डाली। दोनों ओर से जल और स्थल पर युद्ध होता रहा। तरसून महम्मद ख़ाँ को सबने भेजा कि सेना का प्रबंध कर दूसरी ओर से आवे और शत्रु को दुचित्ता कर दे। दैवयोग से आते समय यह मारा गया क्योंकि शत्रु पास थे। मासूम खाँ ने यह समाचार पाकर कुछ सेना के साथ बड़ी फुर्ती की थी। शहबाज़ ख़ाँ ने मुहिब्ब अली खाँ को कुछ बहादुरों के साथ सहायता के लिये नियत किया था और फुर्ती करने वालों को दौड़ाया था कि शत्रु के पहुँचने तक इसे सुरक्षित स्थान में लिवा लावें परंतु इसे विश्वास नहीं हुआ और इसने कहा कि कपटी लोगों ने इसी बहाने सरदार से एक झुंड को अलग कर दिया है। अंत में साथियों के बहुत प्रयत्न करने पर, जिन्होंने सावधानी के लाभ और बेपरवाही की बुराईयाँ बतलाईं, इसने लाचार हो पहिले एक दृढ़ स्थान पर अधिकार कर लिया पर इस बात को किसी प्रकार ठीक न समझ कर पड़ाव की ओर चला। इसी बीच एक सेना

दिखलाई पड़ी और दूरदर्शिता छोड़कर इसने उसे सहायक सेना समझ लिया और उसके आतिथ्य का सामान करने लगा। यह कुछ कदम आगे बढ़ा था कि शत्रु के आक्रमण ने इसकी शांति को मिटा दिया। इसके हितैषियों ने इसको बहुत कुछ समझाया कि पड़ाव तथा सहायक सेना के पहुँचने तक जल्दी न कर उसी दृढ़ स्थान में लौट चले पर इसने स्वीकार नहीं किया और साहस कर युद्ध की तैयारी की। बहुत से साथियों ने यह कह कर साथ छोड़ दिया कि युद्ध का सामान नहीं है। यहाँ तक कि पंद्रह आदमियों से अधिक इसके साथ न रह गए। इसने युद्ध की तैयारी की और ईश्वरी आज्ञा से घायल होकर पकड़ा गया। मासूम खाँ ने मित्रता प्रगट करके इसको मिलाना चाहा पर इसने सुविचार से उसको बुरा-भला कहा और बहुत कुछ उपदेश दिया। इसपर उस ओछे आदमी ने क्रुद्ध होकर इस राजभक्त सरदार को मार डाला। यह घटना सन् ९९२ हि० (सन् १५८३ ई०) में २९वें वर्ष में हुई।

तहौवर खाँ मिर्ज़ा महमूद

यह मशहद के सैयद सरदारों में से था। यह अकबर के समय में हिंदुस्तान आकर भाग्य की सहायता से उस उच्च-पदस्थ बादशाह की सेवा में भर्ती हो गया और इसने पाँच सदी मनसब पाया। इसके अनंतर जब जहाँगीर बादशाह हुआ तब एक दिन दैवयोग से एक शेर को गोली मार कर दरबार लाए। इसी विषय को लेकर दरबार में यह बात चली कि शेर के सिर के पीछे का बाल बहुत कड़ा होता है और तलवार की एक चोट से नहीं कट सकता। बादशाह के संकेत से बलवान तथा लड़ाके जवानों ने उस पर पूरी शक्ति से तलवारें चलाई पर निशान के सिवा और कुछ प्रगट नहीं हुआ। मिर्ज़ा भी वहाँ खड़ा था। इसने भी प्रार्थना की कि यदि आज्ञा हो तो मैं भी अपने तलवार की परीक्षा करूँ। यह छोटे कद का था पर बादशाह ने आज्ञा दे दी कि बिस्मिल्लाह करो, हम भी देखें। मिर्ज़ा ने इस पर ऐसी सफाई से शेर का सिर अलग कर दिया कि चारों ओर से प्रशंसा होने लगी। मिर्ज़ा महमूद और शेर के दो टुकड़े जन-साधारण की जिह्वा पर हो गए। कड़ी कमान के लिए यह अद्वितीय और प्रसिद्ध था। हाथों के ज़ोर के लिए भी यह बेजोड़ था और कोई भी इस कार्य में इससे बराबरी का विवाद नहीं करता था। इसके समय के पहलवानगण इससे

परास्त हो चुके थे और इससे भिड़ने के लिए कोई नहीं मिलता था।

कहते हैं कि मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका का पुत्र मिर्जा शम्सी जहाँगीर कुली ख़ाँ गुजरात से एक बहुत कड़ी कमान लाया था, जिसे बलवान आदमी भी खींचना चाहते थे पर उसकी दोनों कोटि से डोरी को ऊपर नहीं उठा सकते थे। मिर्ज़ा महमूद ने ज्योंही डोरी पर हाथ लगाया त्योंही उसे इस प्रकार खींच लिया कि नजदीक था कि कमान की पीठ फट जाय। उसी दिन बादशाह ने उसको शेख़ कमान की पदवी दी। तीर चलाने की उसकी कई कहानियाँ सुनी जाती हैं। जहाँगीर ने स्वलिखित जहाँगीरनामे में इन्हें लिखा है। लिखते समय ये कहानियाँ मन में न थीं। जब बादशाह की कृपा प्रतिदिन बढ़ते हुए इसका सम्मान बहुत बढ़ गया तब पंजाब की सीमा की एक फौजदारी पर नियत हो कर एक युद्ध में बड़ी वीरता दिखला कर विजयी हुआ और इसके उपलक्ष में तहौवर ख़ाँ की पदवी पाई। शाहजहाँ के राज्य में इसके मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हो जाने से यह पागल हो गया। इसके पुत्र इसे कैद में रखकर इसकी रक्षा करते थे। इसी हालत में यह लाहौर में मर गया। यह नसतालीक़ लिपि बहुत अच्छी लिखता था। क़िता लिखने में भी 'यदे बैज़ा' (हज़रत मूसा का हाथ) के समान प्रकाशमान था। इसकी गूढ़ बातें इसीके समान थीं तथा इसके बारे में बहुत सी विचित्र बातें सुनी जाती हैं। कहते हैं कि एक दिन इसने मजलिस सजाई और आदमियों को निमंत्रण दिया। उस मजलिस में आक़ा रशीदा भी उपस्थित था, जो मीर एमाद का

भांजा मशहूर था और नसतालीक लिपि का उस्ताद था। ये दोनों बातचीत कर रहे थे। ख़ाँ एकाएक एक कोठरी में जाकर थोड़ी देर में एक नंगी तलवार लिए हुए आक़ा के सिर पर पहुँचा और कहा कि सुना है कि तू मेरा शिष्यत्व अस्वीकार करता है। आक़ा पर पूरा रोब छा गया और उसने नम्रता से कहा कि मेरे ख़ाँ, आख़िर क्या कहते हो। इसने कहा कि इन लोगों के सामने तथा साक्ष्य में एक पत्र शिष्यता का लिखो। आक़ा ने निरुपाय होकर उसके कहने के अनुसार पत्र लिख दिया और इस योग्य आदमी के अत्याचार से छुट्टी पाई।

तातार ख़ाँ ख़ुरासानी

यह अकबर का एक सरदार था और एक हज़ारी मनसब तक पहुँचा था। इसका नाम ख्वाजा ताहिर मुहम्मद था। बहुत दिनों तक यह मंत्रियों में से एक था। ८ वें वर्ष में शाह विदाग़ ख़ाँ के साथ शाह अबुल् मआली का पीछा करने पर नियत हुआ, जो हिसार फ़ीरोज़ा से काबुल की ओर जा रहा था। इसके अनंतर बहुत दिनों तक दिल्ली का अध्यक्ष रहा। सन् ९८६ हि० (सन् १५७८ ई०) में यह मर गया।

ताशबेग ताज ख़ाँ

यह मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम का एक सरदार था। मिर्ज़ा की मृत्यु के अनंतर ३० वें वर्ष में अकबर बादशाह की सेवा में मन लगा कर उसका कृपापात्र हुआ और पंजाब प्रांत में वेतन में जागीर पाकर सम्मानित हुआ। ३१ वें वर्ष में राजा बीरबल के साथ जैन ख़ाँ कोका की सहायता को और ३२ वें वर्ष में अब्दुल् मतलब ख़ाँ के साथ तारीकियों की चढ़ाई पर नियत हुआ। ४० वें वर्ष में यह स्वयं ईसा खेलवालों को दंड देने पर नियत हुआ। यद्यपि इसने बहुत हाथ पैर मारा पर बीमारी के कारण इससे कोई काम न हो सका। ४२ वें वर्ष में मऊ दुर्ग के घेरे में, जो पंजाब प्रांत के उत्तरी पर्वतमाला के ज़मींदारों का एक भारी दुर्ग था, आसफ ख़ाँ के साथ नियुक्त होकर इसने बहुत प्रयत्न किया और इसके उपलक्ष में ताज ख़ाँ की पदवी पाई। ४७ वें वर्ष में जब उक्त पहाड़ के ज़मींदार बासू ने फिर पंजाब प्रांत में विद्रोह किया और ख्वाजा सुलेमान उस प्रांत का बख्शी नियत किया जाकर भेजा गया कि वहाँ के सूबेदार कुलीज ख़ाँ की और उस ओर के दूसरे जागीरदारों, जैसे हसन-बेग शेख उमरी, ताज ख़ाँ, अहमद बेग ख़ाँ काबुली की सेनाएँ एकत्र कर उस विद्रोही को दमन करने में सज़ावली करे तब यह दूसरों की प्रतीक्षा न कर बराबर कूच करते हुए पठानकोट पहुँच कर उन सबके थानों पर गया। दैवात् जिस समय उसके

आदमी खेमा गाड़ने में लगे हुए थे उस समय उस विद्रोही की सेना दिखलाई पड़ी। इसके पुत्र जमील बेग ने बेधड़क उस पर धावा कर दिया और घोर युद्ध के अनंतर वह अपने पिता के पचास सेवकों के साथ मारा गया। जहाँगीर के राज-गद्दी पर बैठने पर इसका मनसब तीन हजारी हो गया। २ रे वर्ष जब बादशाह काबुल से हिंदुस्तान को लौटे और उस प्रांत का शासन शाह बेग खाँ खानदौराँ को मिला, जो कंधार से हटाए जाने पर लौट रहा था, तब ताज खाँ को आज्ञा हुई कि उक्त खाँ के आने तक काबुल से खबरदार रहे। इसके अनंतर मनसब बढ़ाए जाने पर यह ठट्टा का अध्यक्ष नियत हुआ। ९ वें वर्ष सन् १०३३ हि० (सन् १६२४ ई०) में यह वहीं मर गया।

ताहिर ख़ाँ

इसका नाम ताहिर शेख़ था। शाहजहाँ के राज्य के २०वें वर्ष में बल्ख़ से आकर बादशाही सेवा में भर्ती हो गया। इसे खिलअत, जड़ाऊ खंजर तथा दस हजार रुपया नगद मिला और इसके अनंतर तलवार, जिसकी मूठ सोने तथा मीनाकारी की थी, और आठ सदी ४०० सवार का मनसब मिला। इसके अनंतर जड़ाऊ जीगा मिला, मनसब बढ़कर हजारी ५०० सवार का हो गया तथा खाँ की पदवी और चाँदी की ज़ीन सहित घोड़ा पाकर यह सम्मानित हुआ। यह शाहज़ादा महम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ बल्ख़ गया। २१वें वर्ष में इसके मनसब में पाँच सदी १०० सवार बढ़ाए गए और वहाँ से लौटने पर यह दरबार में उपस्थित हुआ। २२ वें वर्ष में इसका मनसब बढ़ कर दो हजारी ७०० सवार का हो गया और यह शाहज़ादा महम्मद औरंगजेब के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियत हुआ तथा वहाँ पहुँचने पर कुलीज खाँ के साथ बुस्त प्रांत की ओर गया। सीस्तान प्रांत की सीमा पर स्थित खनसी दुर्ग पर धावा कर यह बहुत लूट लाया और क़ज़िलबाशों के युद्ध में इसने बहुत प्रयत्न किया। २३ वें वर्ष में इसके उपलक्ष में इसका मनसब बढ़कर ढाई हजारी १००० सवार का हो गया। इसके बाद दरबार आने पर बयूतात के कर्मचारियों को आज्ञा मिली

कि एक वर्ष तक बुद्धवार की भेंट उक्त खाँ को दे दिया करें। २५ वें वर्ष में दूसरी बार यह शाहजादा औरंगजेब के साथ कंधार की चढ़ाई पर गया। २६ वें वर्ष में शाहजादा दाराशिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर फिर गया और शाहजादा के पहिले रुस्तम खाँ के साथ कंधार पहुँच गया। वहाँ से उक्त खाँ और यह बुस्त की ओर गए। २८ वें वर्ष में मनसब में ५०० सवार बढ़ने पर यह जुम्लतुल्मुल्क सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड़ दुर्ग पर गया। सामूगढ़ के युद्ध में यह दाराशिकोह की ओर था। उसके भागने पर जब आलमगीर की सेना आगरे के पास पहुँची तब यह सेवा में पहुँच कर खिलअत पा संमानित हुआ। इसके अनंतर खलीलुल्ला खाँ के साथ दाराशिकोह का पीछा करने पर नियत हुआ। दाराशिकोह के साथ के द्वितीय युद्ध में तरकस पुरस्कार में पाकर इसने सेना की क़रावली में वीरता दिखलाई। इसके अनंतर कहा जाता है कि यह मुलतान का शासक नियत हुआ क्योंकि मआसिरे आलमगीरी के लेखक ने ११वें वर्ष में मुलतान की सूबेदारी से इसके लौटने का उल्लेख किया है। २२ वें वर्ष महाराज जसवंतसिंह की मृत्यु पर जब उनके राज्य पर अधिकार करना निश्चय हुआ तब यह जोधपुर का फौजदार नियत हुआ। जब उक्त राजा के सेवकगण उसके पुत्रों के साथ काबुल के पास से रवाने होकर राजधानी पहुँचे और बादशाही आज्ञा का विरोध कर उन सबने विद्रोह आरंभ कर दिया और उस सेना के साथ, जो उन पर भेजी गई थी, युद्ध करते हुए अपने देश की ओर भाग गए तब ताहिर खाँ इन भागनेवालों को रोकने में दृढ़ता न दिखला सका, इसलिए

इसी वर्ष अपने पद से हटा दिया गया और इसकी खाँ की पदवी छीन ली गई। यह इस प्रकार दंडित हुआ और समय आने पर मर गया। इसके पुत्र मोगल खाँ अरब शेख की जीवनी अलग दी गई है।

तुख़्ता बेग सरदार ख़ाँ

यह मिर्ज़ा हकीम का एक सरदार था। एक युद्ध में, जो मिर्ज़ा और अकबर की सेनाओं के बीच में हुआ था, इसने बड़ी वीरता दिखलाकर प्रसिद्धि प्राप्त की। मिर्ज़ा की मृत्यु के अनंतर उसके पुत्रों के साथ अकबर के जलूस के ३० वें वर्ष में सेवा में पहुँच कर यह अनेक प्रकार के पुरस्कार पाकर बादशाही कृपा का पात्र हुआ। इसके अनंतर काबुल प्रांत में नियत होकर कुँअर मानसिंह और जैन ख़ाँ कोका के साथ इसने यूसुफज़ई और तारीकियों के झुंडों को दमन करने में बहुत प्रयत्न किया। ३९ वें वर्ष में शाहज़ादा सुलतान सलीम के साथ नियुक्त होने पर लाहौर में इसे जागीर मिली। इसके अनंतर पेशावर का थानेदार नियत होकर इसने कई बार तारीकियों के झुंडों को दंड दिया। इसकी अच्छी सेवाओं पर प्रसन्न होकर ४९ वें वर्ष में इसे ख़ाँ की पदवी मिली। जहाँगीर की राजगद्दी होने के अनंतर जब हिरात के अध्यक्ष हुसेन शामलू के भारी सेना के साथ आने और दुर्ग कंधार घेरने का समाचार बादशाह को मिला तब इसको दो हजारी मनसब और सरदार ख़ाँ की पदवी देकर मिर्ज़ा ग़ाज़ी बेग के साथ कंधार के अध्यक्ष शाहबेग ख़ाँ की सहायता को भेजा। इन लोगों के पहुँचते वक्त क़ज़िलबाश सेना दुर्ग का घेरा उठाकर अपने देश

लौट गई थी, इसलिये यह शाहबेग ख़ाँ के स्थान पर कंधार का अध्यक्ष नियत हुआ। थोड़े ही समय बाद ३रे वर्ष सन् १०१६ हि० (सन् १६०८ ई०) में वहीं मर गया। इसके पुत्र हयात ख़ाँ और हिदायत ख़ाँ छोटे मनसबों पर नियत थे।

तुर्कताज खाँ

इसके पूर्वजगण तूरान के रहनेवाले थे। इसका पिता औरंगजेब के राज्य-काल में हिंदुस्तान आकर बादशाही सेवा में भर्ती हो गया और योग्य मनसब तथा यकताज खाँ की पदवी पाकर मराठों को दमन करने पर नियत हुआ। इसका चाचा ख्वाजा खाँ, जो सियादत खाँ सैयद ओग़लाँ का दामाद था, ५१ वें वर्ष जलूस में उन्नति पाने पर डेढ़ हजारी मनसबदार था। यह दक्षिण में पैदा हुआ था इसलिए मराठों की चाल पर रहता था, पहिरावे और खानपान में उनका कभी विरोध नहीं करता था और युद्ध में भी उन्हीं के समान डाकूपन की चाल पकड़ी थी, जिसे दक्षिणवाले बर्गीगिरी कहते हैं। यह दक्षिण में नियुक्त मनसबदारों के साथ सम्मिलित था। यद्यपि यह आलम अली खाँ के युद्ध में उसीके साथ था पर एक देश के होने के कारण आसफजाह के विचार से इसने कुछ प्रयत्न नहीं किया। आसफजाह ने विजय प्राप्त करने के बाद पुराने परिचय को नया कर उसे दूना कर दिया और यह जबतक जीवित रहा इसने सन्मान के साथ जीवन व्यतीत किया। सन् ११४९ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। इसे तीन पुत्र थे। सबसे बड़ा ख़्वाजा महम्मद था, जिसे आसफजाह के समय में खाँ की पदवी मिली। नासिरजंग के समय पिता की पदवी और सलाबत जंग के राज्य-काल में क़वीजंग की पदवी मिली। यह पाँच हजारी

मनसब तक पहुँचा था। बहुत दिनों तक यह अहमदनगर का दुर्गाध्यक्ष रहा। किसी कारण से इसने वह दुर्ग मराठों को सौंप दिया। सन् ११८७ हि० में बीमार होकर मर गया। यह बहुत मिलनसार, सुशील और मित्र-वत्सल था। यह सुंदर लिपि लिखने से प्रेम रखता था। इस ग्रंथ के लेखक से अंत तक मित्रता निबाही। अन्य दो पुत्र ख़्वाजा हमीद ख़ाँ और ख़्वाजा शरीफ़ ख़ाँ थे, जो अपने बड़े भाई के सामने ही मर गए और दोनों ने मनसब तथा जागीर पाकर अपने दिन सुख से व्यतीत किए।

तेग़ बेग खाँ मिर्ज़ा गुल

यह और इसके दो बड़े भाई मिर्ज़ा फ़क़ीरुल्ला व मिर्ज़ा गदा तीनों बेगलर ख़ाँ मिर्ज़ा अहमद के भांजे थे, जो सुलतान बेदार बख़्त का दीवान था और महम्मदशाह के समय में सूरत बंदर का क़िलेदार था। इन सब का पिता छोटे पद का मनसबदार था, जिसकी मृत्यु पर ख़्वाजा अब्दुर्रहीम ख़ाँ के द्वितीय पुत्र मीर नोमानख़ाँ ने इनके पालन का प्रबंध किया था। जब उक्त ख़ाँ मर गया तब ये सब अपने मामा की संरक्षा में रहने लगे। मिर्ज़ा फ़क़ीरुल्ला जवानी ही में मर गया। मिर्ज़ा गदा ने पहिले गदा बेग ख़ाँ की पदवी पाई और जब उक्त बेगलर ख़ाँ मर गया तब उसके दामाद होने के संबंध से बेगलर ख़ाँ की पदवी पाकर तथा सूरत बंदर का क़िलेदार नियत होकर यह सम्मानित हुआ। इसके बाद मिर्ज़ा गुल सौभाग्य से महम्मदशाह के समय तेग़ बेग ख़ाँ की पदवी पाकर उक्त बंदर का मुत्सद्दी नियत हुआ और बहुत दिनों तक वहाँ का काम करता रहा। उक्त ख़ाँ उदारता तथा साहस के लिए प्रसिद्ध था। जब सन् ११५९ हि० (सन् १७४६ ई०) में यह मर गया तब वहाँ की मुत्सद्दी-गिरी उक्त ख़्वाजा अब्दुर्रहीम ख़ाँ के संबंधी शाहमक्खन के पुत्र मुईनुद्दीन ख़ाँ बहादुर उर्फ़ मियाँ अच्छन को बेगलर ख़ाँ बड़े को दामादी के संबंध से मिली। यह लिखते समय यद्यपि उक्त बंदर

टोप वाले अंग्रेजों के अधिकार में चला गया था पर मुईनुद्दीन ख़ाँ का पुत्र, जिसे क़ायमुद्दौला की पदवी मिली थी, नाम मात्र को अधिकृत था। तेग़ बेग ख़ाँ की मृत्यु की तारीख 'गुल बख़ाक उफ़ताद' (फूल मिट्टी में गिर गया) से निकलती है।

तैयब ख़्वाजा जुयेबारी

यह कलाँ ख़्वाजा के पुत्र अब्दुर्रहीम ख़्वाजा के बड़े भाई हसन ख़्वाजा का पुत्र था, जिससे दीनमहम्मद खाँ की बहिन और नज़र महम्मद खाँ की बूआ ब्याही थी। अब्दुर्रहीम ख़्वाजा जहाँगीर के राज्य-काल में इमामक़ुली खाँ की ओर से दूत होकर हिंदुस्तान आया और इसकी प्रतिष्ठा यहाँ तक बढ़ी कि यह जहाँगीर के दरबार में बैठता था। शाहजहाँ के राज्य के प्रथम वर्ष में इसकी मृत्यु हुई। अफ़ज़ल खाँ शाही आज्ञा के अनुसार उक्त ख़्वाजा के पुत्र सिद्दीक ख़्वाजा के पास शोक मनाने गया और उसे दरबार में लिवा लाया। उसका पिता हसन ख़्वाजा उस महामारी में मर गया, जो बल्ख़ की चढ़ाई के पहिले वहाँ फैली हुई थी। उसका दूसरा चाचा यूसुफ ख़्वाजा अपने देश में पूर्वजों का स्थानापन्न हुआ। तैयब ख़्वाजा की अब्दुर्रहीम ख़्वाजा की लड़की से शादी हुई थी। शाहजहाँ के राज्य के २०वें वर्ष में बल्ख़ के विजय के बाद यह दरबार आया। जब यह पास पहुँचा तब क़ाज़ी महम्मद असलम और ख़्वाजा अबुल् और मीर अद्ल इसका स्वागत कर इसे बादशाह की सेवा में लिवा लाए। इसने अठारह घोड़े और पंद्रह ऊँट भेंट किए। इसको ख़िलअत और एक हजार मुहर पुरस्कार में मिला। बाद को एक जड़ाऊ खंजर पाकर यह सम्मानित हुआ। इसके अनंतर इसे पाँच सौ दहन, जो डेढ़ सौ अशर्फी होता है, मिला। दहन

वह सिक्का था, जो सोने के मेल का होता था और अकबर बादशाह के समय में चलता था। २१वें वर्ष में एक घोड़ा और पाँच सहस्र रुपया पाकर यह सम्मानित हुआ। जब इसी वर्ष बादशाह काबुल से हिंदुस्तान लौटे तब यह आज्ञा के अनुसार अपने पुत्रों के पहुँचने तक, जिन्हें बल्ख़ से बुलवाया था, काबुल में ठहरा रहा। इसके अनंतर अपने पुत्रों ख़्वाजा मूसा और ख़्वाजा ईसा के साथ, जो अब्दुर्रहीम ख़्वाजा के नाती थे, सेवा में उपस्थित हुआ। २२वें वर्ष में सोनहले ज़ीन सहित एक घोड़ा इसको और दो घोड़े इसके दोनों पुत्रों को मिले। कुछ दिन बाद पुत्रों सहित इसको पाँच हजार रुपया पुरस्कार मिला। २६वें वर्ष में एक हजार अशर्फ़ी इसे तुलादान के धन में से प्रदान की गई। इसके बाद जब इसका बड़ा भाई यूसुफ़ ख़्वाजा, जो बड़ों का स्थानापन्न था, मर गया और इसके सिवा कोई दूसरा उसका उत्तराधिकारी नहीं रह गया तब यह उसी वर्ष विदा होकर अपने देश चला गया। बादशाहनामा के भाग दो के अंत में लिखा हुआ है कि इसका मनसब चार हजारी ४०० सवार का था।

तोलक ख़ाँ कूर्ची

यह बाबर का एक सरदार था और उसके बाद हुमायूँ की सेवा में आया। जब हुमायूँ ने ईरान से लौट कर काबुल पर अधिकार कर लिया और मिर्जा कामराँ सेवा करने के बहाने कपट से काबुल के पास पहुँचा और झगड़ालू सरदारगण उसके पास चले गए तब उसने निरुपाय होकर .जुहाक और बामियान की ओर लौटने का विचार किया, जिस प्रांत में अधिकतर लोग स्वामिभक्त थे। हुमायूँ ने तोलक .ख़ाँ को कुछ अन्य लोगों के साथ काबुल की रक्षा के लिए उधर भेजा था पर सिवा इसके और कोई नहीं लौटा। इसकी सेवा बादशाह को बहुत पसंद आई और इसको क़ोरबेगी की पदवी दी। हिंदुस्तान की चढ़ाई में भी यह बादशाह के साथ था और इसने अच्छी सेवा की थी। हुमायूँ की मृत्यु पर जब शाह अबुल् मआली कुराह चलने लगा तब अकबरी राज्य के हितैषियों ने उसे कैद करने के विचार से एक दिन भोज के बहाने उसे बुलवाया। उसने जब हाथ धोने को बढ़ाए तब तोलक .ख़ाँ ने, जो फुर्ती के लिये प्रसिद्ध था, पीछे से आकर उसके दोनों हाथ पकड़ लिए। दूसरों ने भी सहायता कर इस काम को पूरा कर दिया। इसके अनंतर यह बहुत दिनों तक काबुल में नियत रहा। अकबर के जलूस के ८वें वर्ष में मुनइम बेग खानखानाँ का पुत्र ग़नी ख़ाँ, जो काबुल में कुल कार्यों की देखभाल करता था और जिसके

स्वभाव में ओछापन और हठ अधिक था, यौवन तथा प्रभुत्व की उन्मत्तता में एक दिन विना किसी विचार के तोलक ख़ाँ को, जो बादशाह का परिचित और विश्वासपात्र था, उसके कुछ संबधियों के साथ कैद कर दिया। यह कुछ भले आदमियों के प्रयत्न से छुटकारा पा गया। इसके अनंतर यह वाग़ाख़ातून मौज़े में, जो इसे जागीर में मिला था, चला गया और बदला लेने का अवसर ढूँढ़ता रहा। एक दिन ग़नी ख़ाँ बल्ख़ के काफिले को दमन करने को काबुल से बाहर निकला और ख़्वाजा सियाराँ स्थान में, जो आकर्षक जगह है, शराबखोरी की मजलिस जमाई। तोलक ख़ाँ ने अपने कुछ संबंधियों और नौकरों के साथ उस पर पहुँच कर उसको वेहोशी की हालत में कराच: के पुत्र शगून के साथ कैद कर लिया और उसको कड़ी बातें कह कर अपने दुखी हृदय का क्रोध प्रगट कर दिया। इसके अनंतर काबुल लेने के विचार से वहाँ के प्रभावशाली आदमियों से मित्रता कर ख़्वाजा अवाश मौजा में, जो उक्त नगर से दो कोस पर है, पड़ाव डाला। जब मुनइम ख़ाँ का भाई फ़ज़ील बेग और उसका पुत्र अबुल्फ़त्ह युद्ध को तैयार हुए तब इसने कुछ महालों पर अधिकार करने की संधि कर ग़नी ख़ाँ को छोड़ दिया। वह छूटते ही सेना एकत्र कर तोलक ख़ाँ पर रवाना हुआ। तोलक ख़ाँ वहाँ अपना ठहरना अनुचित समझ कर हिंदुस्तान की ओर चल दिया। ग़ोरबंद नदी के पास काबुल की सेना इसपर आ पहुँची और युद्ध होने लगा। बाबा कूचीं और इसके कुछ अन्य नौकर मारे गए। यह अपने पुत्र असफंदियार और संबधियों तथा सेवकों के साथ

हादुरी से निकल कर उसी वर्ष में बादशाह अकबर की सेवा
में पहुँच गया। मालवा प्रांत में जागीर पाकर आराम से वहीं
रहने लगा। २८ वें वर्ष में जब मालवा की सेना मिर्ज़ा ख़ाँ
ख़ानख़ानाँ की सहायता को नियत हुई तब यह भी वहाँ पहुँच
कर ख़ानख़ानाँ के आदेश से सैयद दौलत पर भेजा गया, जो
खंभात में विद्रोह कर रहा था। उसको दंड देकर यह विजयी
होकर लौट आया। इसके अनंतर बादशाही सेना में मिल कर
सुलतान मुजफ्फर गुजराती के युद्ध में दाएँ भाग में नियुक्त
होकर लड़ाइयों में प्रयत्न करता रहा। इसके बाद क़ुलीज ख़ाँ
के साथ भड़ोच विजय करने गया। ३०वें वर्ष में जब मालवा
की सेना दक्षिण विजय करने में खान आज़म की सहायता पर
नियत हुई तब यह भी उस प्रांत में गया। ख़ान आज़म और
शहाबुद्दीन अहमद ख़ाँ के वैमनस्य काल में इधर उधर की बात
करने के कारण दोषी होकर यह कैद हो गया। यह छूटने के
अनंतर बंगाल और बिहार के सहायकों में नियत हुआ और ३७
वें वर्ष में कतलू के पुत्रों के युद्ध में राजा मानसिंह के साथ सेना
के बाएँ भाग में नियत था। यह ४१ वें वर्ष के आरंभ में सन्
१००४ हि० (सन् १५९६ ई०) में मर गया।

—

दरबार खाँ

इसका नाम इनाअत था और यह तकलू खाँ[1] कहानी कहने वाले का पुत्र था, जो शाह तहमास्प सफ़वी की सेवा में कहानी कहने पर नियत था तथा शाही कृपा का पात्र था। जब इसका पुत्र हिन्दुस्तान में आया तब अपने पैतृक कार्य पर अकबर के यहाँ नौकर हो गया और उसका दरबारी बन गया। इसे ७०० का मनसब तथा दरबार खाँ चिहर: शादकामी[2] की पदवी मिली। १४ वें वर्ष में रणथंभौर के विजय के अनन्तर जब बादशाह अजमेर में मुईनुद्दीन चिश्ती के रौजा के दर्शन को गए, तब यह बीमारी की अधिकता के कारण छुट्टी लेकर राजधानी आगरा लौट आया और यहाँ पहुँचने पर इस असार संसार को छोड़ कर चल दिया[3]। अकबर को, जो उस पर अधिक ध्यान रखते थे, इसकी मृत्यु से दुख हुआ। दरबार खाँ ने स्वामि-भक्ति तथा श्रद्धा के कारण मृत्यु के समय यह वसीयत किया था कि वह बादशाही कुत्ते के पाँव के पास, जिसके ऊपर पहिले ही गुंबद बना हुआ था, गाड़ा जाय। पहिले एक कुत्ता अपनी स्वामि-भक्ति के कारण अकबर के पास रहता था।

---

१. आईन अकबरी तथा उसके ब्लॉकमैन कृत अनुवाद में तकलत् खाँ है।

२. प्रसन्न मुखवाला।

३. इलि० डाउ० जि० ५ पृ० ३३२ पर लिखा है कि अकबर इसके शोक की जेवनार में गया था।

बादशाह भी कभी-कभी उसका हाल-चाल पूछा करते थे। जब वह कुत्ता मर गया तब बादशाह ने उसके लिये शोक किया। दरबार खाँ ने उसके शव पर इमारत बनवा कर उस कुत्ते को उस गुंबद में गाड़ा[1] और आप भी अपनी इच्छानुसार उसी में गाड़ा गया।

ईश्वर की इच्छा! सांसारिकता का कैसा ऊँचा पद है? इसमें कितने प्रकार के प्रयत्न और चापलूसी हैं? जिस समय ईश्वर के ध्यान में लिप्त होना और उसका स्मरण करना चाहिए था उस समय बादशाही कुत्ते के और सांसारिक विचार में पड़ा हुआ था! अगर ऐसा बाहरी दिखावट मात्र था तो शोक कि प्रलय के दिन उसका कुत्ते का साथ हुआ और यदि सच्चे हृदय से ऐसा किया तो ईश्वर ही रक्षा करे! इसे हम यहीं समाप्त करते हैं। ईश्वर की दया बहुत बड़ी है।

यद्यपि अकबर पढ़े लिखे नहीं थे पर शेर कहते थे और इतिहास भी जानते थे। विशेषतः इन्हें हिन्दुस्तान का इतिहास बहुत मालूम था। अमीर हमजा का किस्सा भी उन्हें बहुत पसन्द था, जिसमें तीन सौ साठ दास्तान थे। यहाँ तक कि स्वयं महल में उसे सुनाते थे और उसकी घटनाओं तथा वर्णनों के आरंभ से अंत तक के चित्र खिचवा कर १२ जिल्दों में बँधवाए थे। हर जिल्द में १०० पृष्ठ थे और प्रत्येक पृष्ठ एक हाथ लंबा था। हर एक पृष्ठ में दो चित्र रहते थे और प्रत्येक के ऊपर उन चित्रों के सम्बन्ध की घटनाओं का वर्णन ख्वाजा

---

१. इससे ज्ञात होता है कि दरबार खाँ ने इसे स्वयं बनवाया था।

अताउल्ला कज़्वीनी द्वारा अच्छी लिपि में लिखा गया था। ये चित्र ५० कुशल[1] चित्रकारों द्वारा पहिले नादिरुलमुल्क हुमायूँशाही मीर सय्यद अली खिदामी[1] तबरेज़ी के और बाद में ख्वाजा अब्दुस्समद शीराजी की तत्वावधानता में बनाए गए थे। वास्तव में पुस्तक अकबर के कामों का नमूना है, जिसके समान किसी वस्तु को किसीने न देखा होगा और जिसका जोड़ किसी राजा के सामान में न मिलेगा। इस समय यह बादशाही पुस्तकालय में है।

---

१. इसका पाटांतर जुदाई ठीक है।

दरिया ख़ाँ रुहेला

यह दाऊदज़ई खेल का था। यह पहिले मुर्तजा ख़ाँ शेख फ़रीद का नौकर था। शाहजहाँ की शाहज़ादगी के समय सेवा में आकर इसने प्रतिष्ठा पाई। सुलतान शहरयार के नौकर शरीफ़ुल्मुल्क के साथ धौलपुर के युद्ध में बड़ी वीरता दिखला-कर यह अधिक विश्वासपात्र हुआ। बंगाल के सूबेदार इब्राहीम ख़ाँ फ़तेहजंग ने शाहज़ादा का सामना किया पर अकबर नगर (राजमहल) से एक कोस पर वह अपने पुत्र के मकबरा में घिर गया। परंतु सब नावों का बेड़ा इसी के पास था और गंगा नदी बिना नाव के पार नहीं की जा सकती थी। दरिया ख़ाँ ५०० अफ़गान सैनिक लेकर तेलिया राजा के दिखलाए उतार से दरिया उतरने लगा। अभी केवल दस बारह सवार पार हो पाए थे कि इब्राहीम की सेना आ पहुँची। दरिया ख़ाँ दृढ़ता से युद्ध करने लगा। अब्दुल्ला ख़ाँ उसी राह से पार उतरना चाहता था, पर यह हाल देख कर दूसरे स्थान से उतरने का विचार कर हट गया। इब्राहीम ख़ाँ ने अहमद बेग ख़ाँ को और आदमी देकर अपनी सेना की सहायता को भेजा। शाहज़ादा ने यह वृत्तांत सुनकर राजा भीम को भेजा कि अब्दुल्ला ख़ाँ को साथ लेकर दरिया ख़ाँ की सहायता को जाय पर इसके पहुँचने के पहिले दरिया ख़ाँ ने दो बार प्रयत्न कर शत्रु को परास्त कर दिया पर पैदल होने के कारण पीछा नहीं कर सका।

इब्राहीम ख़ाँ ने जब अहमद बेग खाँ के परास्त होने और अब्दुल्ला खाँ तथा राजा भीम के पहुँचने का समाचार सुना तब कुल सेना तैयार कर युद्ध के लिये आ पहुँचा। पर जब उसकी सेना वीर शत्रुओं के आक्रमण से घबड़ा कर भागी तब वह कुछ सेना के साथ मारा गया।[1] शाहज़ादा ने दरिया खाँ को पुरस्कार में एक लाख रुपया और कई हाथी बंगाल की लूट से दिए। जब बंगाल से आगे बढ़ कर बिहार पर भी शाहज़ादे का अधिकार हो गया तब अब्दुल्ला खाँ दरिया खाँ के साथ आगे इलाहाबाद गया। पहिले सेना सजाकर दुर्ग लेने का प्रबंध किया पर बाद को मानिकपुर में गंगा के किनारे पड़ाव डाला। अब्दुल्ला खाँ ने दरिया खाँ को सहायता के लिये बुलाया पर उसने ढिलाई की। दोनों ओर से मनमुटाव हो गया। इसी बीच महाबत खाँ और सुलतान पर्वेज़ गंगा के किनारे आ पहुँचे। दरिया खाँ ने नाव का बेड़ा और तोपखाना अब्दुल्ला खाँ से माँगा कि उतारों को दृढ़ कर शाही सेना को उतरने न दे। अब्दुल्ला खाँ ने भी अब बहाने किए और इस आपस के वैमनस्य में दोनों ने स्वामी का काम बिगाड़ा। दरिया खाँ ने पहले के विजयों तथा स्वभावतः घमंड के कारण युद्ध-नीति और बुद्धिमानी के नियमों का उल्लंघन कर उतारों का उचित प्रबन्ध नहीं किया। महाबत खाँ नाव एकत्र कर दूसरे उतार से पार उतर आया तब लाचार होकर दरिया खाँ अब्दुल्ला खाँ और राजा भीम से, जो जौनपुर में इकट्ठे हुए थे, जा मिला

---

१. मुगल दरबार या मआसिरुल्उमरा हिंदी भाग २ पृ० ४६२-३।

और वहाँ से सब बनारस में शाहज़ादे के पास पहुँचे। यह ठीक हुआ कि कंकोरा[1] में, जो दृढ़ता से खाली न था, टोंस[2] नाला को आगे रख-कर युद्ध की तैयारी की जाय। जब युद्ध में बादशाही सेना के विजय के लक्षण दिखलाई पड़ने लगे तब दरिया खाँ के नए सैनिक, जो उसके व्यवहार से दुःखित थे, बिना लड़े ही भाग गए। दरिया खाँ हरावल के दाहिने भाग का सर्दार था पर सेना के भागने पर वह स्वयं भी हट गया। वह जुनेर में शाहज़ादा की नौकरी छोड़ कर दक्षिण के सूबेदार खानजहाँ लोदी के यहाँ चला गया। इस स्वामिद्रोह से संतुष्ट न होकर इसी सिलसिले में इसके मन में और भी कुविचार उठे। जुलूस के समय दर्बार में क्षमायाचना के साथ उपस्थित होकर इसने चार हज़ारी ३००० सवार का मंसब पाया और इसे बंगाल प्रान्त में जागीर मिली। प्रांताध्यक्ष क़ासिम खाँ के साथ यह वहाँ नियत हुआ। इसके बाद इसे खानदेश प्रांत के अंतर्गत मनादर आदि परगने जागीर में मिले और यह दक्षिण में नियुक्त हुआ।

जब खानदेश का सूबेदार खानज़माँ सय्यद कमाल निज़ामशाही के अधीनस्थ दुर्ग बीड़ को लेने चला गया था तब निज़ामशाह के संकेत से साहू भोसला खानदेश के आसपास उपद्रव मचाने लगा। यह सुन कर दरिया खाँ ने अपनी जागीर से

---

१. 'सरजमीन कंकोरा' लिखा है पर वास्तव में यह कंतित है, जो मिर्ज़ापुर ज़िले में है।

२. टोंस नाला से टम टोंस नदी से तात्पर्य है, जो गंगा की सहायिका है। यमुना की सहायिका टोंस या तमसा दूसरी नदी है।

बिजली के समान पहुँच कर साहू को परास्त कर दिया और उसे उस प्रांत से निकाल दिया। जब तीसरे वर्ष खानजहाँ लोदी को दंड देने के लिए शाहजहाँ बुर्हानपुर में आकर ठहरा तब दरिया खाँ भी जागीर से आकर दरबार में उपस्थित हुआ। उसी झगड़े में मैत्री तथा स्वजाति का होने के कारण भाग कर यह खानजहाँ के पास जा पहुँचा।[1] जब खानजहाँ दक्खिन के सूबेदार आजम खाँ से परास्त होकर दौलताबाद से भागा तब दरिया खाँ ने चालीस गाँव घाटी से खानदेश में पहुँच कर वहाँ लूट-पाट मचा दी। अब्दुल्ला खाँ के इसको दण्ड देने पर नियत होने पर यह दौलताबाद लौट आया। उसी समय खान-जहाँ के साथ विद्रोह की इच्छा से यह हिन्दुस्तान की ओर खानदेश होता हुआ मालवा में पहुँचा। बादशाही सेना के पीछा करने से यह ठहरने का साहस न कर सका और जब आगे बढ़ कर बुंदेलों के राज्य में पहुँचा तब जुझारसिंह के पुत्र राजा विक्रमा-जीत ने दरिया खाँ तक स्वयं पहुँच कर, जो चंदावल में था, धावा कर दिया। इसकी मृत्यु आ पहुँची थी, इसलिये बिना समझे युद्ध करने लगा। लड़ाई में एक तीर लगने से इसकी मृत्यु हो गई। इसका एक पुत्र चार सौ अफगानों के साथ मारा गया। सन् १०४० हि० चौथे वर्ष में इसका सिर बुर्हानपुर में बादशाह के पास भेजा गया।

---

१. इसी भाग में पृ० १४६-९ पर खानजहाँ लोदी की जीवनी देखिए।

दस्तम खाँ

दस्तम खाँ रुस्तम तुर्किस्तानी का पुत्र था और अकबर के समय तीन हजारी मंसबदार था। माहम अनगः के संबंध की बीबी बख्तिया बेगी इसकी माँ थी जिससे यह शाही महल में जाता आता था। अकबर की सेवा में यह पालित हुआ और नवें वर्ष में यह मीर मुइज्जुलमुल्क के साथ अब्दुल्ला खाँ उज़बेक का पीछा करने पर नियत हुआ। १७ वें वर्ष में खान आज़म कोका की अधीनता में गुजरात में नियत होकर मिर्ज़ा मुहम्मद हुसेन के साथ के युद्ध में बहुत प्रयत्न करके इसने प्रसिद्धि पाई। इसके अनंतर वहाँ से आज्ञानुसार खान आज़म के साथ बादशाह की सेवा में आकर इसने सम्मान पाया। २२ वें वर्ष में सरकार रणथंभौर इसे जागीर में मिला और यह अजमेर प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। थोड़े दिनों के बाद इसने विद्रोहियों का दमन कर और अधीनों पर दया दिखला कर अपने शासन-कार्य में सफलता प्राप्त की। २५ वें वर्ष में बलभद्र का पुत्र अचला तथा भारामल के भ्रातृ-पुत्र मोहन, सूरदास और तिलोकसी राजा की आज्ञा के बिना पंजाब से कस्बः लूनी में, जो उनका देश था, पहुँच कर उपद्रव मचाने लगे। दस्तम खाँ ने कछवाहों की मैत्री के कारण उनके चाल-चलन की पूछ ताछ की और उन विरोधियों को सीधे चाल से रहने को लिखा। इस नम्रता से उन उपद्रवियों का विद्रोह और भी बढ़ गया।

इसी समय बादशाही आज्ञापत्र आया कि उन दुष्टों को भय या आशा से शान्त करो नहीं तो दंड दो। खाँ युद्ध नीति के नियमों को भूलकर विना सेना के एकत्र हुए उन पर चढ़ाई करने चला गया। तीनों भतीजे मारे गए पर अचला, जो विद्रोहियों का सर्दार था, ज्वार के खेत में छिप कर अवसर देखता रहा। रुस्तम खाँ युद्ध से लौट कर आया था कि उसने निकल कर उसे बर्छे से घायल कर दिया। पर ऐसा चोट खाने पर भी इसने तलवार से उसे मार डाला। यह बेहोश हो ज़मीन पर गिर पड़ा पर आदमियों के सहारे घोड़े पर सवार होकर सैनिकों को उत्साह देता रहा। अंत में शत्रु भाग गए और उनके गृह लूट लिए गए। दूसरे दिन ९८८ हि० (सन् १५८० ई०) में इसकी मृत्यु हो गई। इसके कार्य, इसकी निस्पृहता आदि गुणों के कारण अकबर को इसकी मृत्यु पर बड़ा दुःख हुआ। उसने इसकी माँ को सान्त्वना देते समय कहा था कि 'वह अपने सारे जीवन में केवल हमसे तीन वर्ष अलग रहा पर तुमसे वह बहुत दिनों तक अलग रहा, इससे उसकी जुदाई हमारे लिए अधिक कठोर है।'

दाऊद खाँ क़ुरेशी

यह भीखन खाँ का पुत्र था, जो हिसार फीरोजः के शेखजादों में से था। यह खानजहाँ लोदी का विश्वासपात्र तथा अच्छा सेवक था और धौलपुर के युद्ध में, जिसमें उक्त खाँ को बादशाही सेना से युद्ध करना पड़ा था, इसने वीरता और पौरुष दिखला कर प्राण छोड़ा। शेख दाऊद ने शाहजादः दारा शिकोह का नौकर होकर अपनी वीरता, शील और सचाई के कारण उन्नति की। ३० वें में वर्ष मथुरा, महावन, जलेसर तथा अन्य महालों का फ़ौजदार नियत हुआ, जो सादुल्ला की मृत्यु पर शाहजादः के जागीर में मिल गया था। यह दो सहस्र सवारों के साथ आगरा और दिल्ली के बीच के मार्ग का रक्षक भी नियत हुआ। उसी वर्ष शाहजादा की प्रार्थना से इसे खाँ की पदवी मिली। दारा शिकोह के प्रथम युद्ध में यह राव शत्रुसाल हाड़ा के साथ हरावल में नियत था। इसका भाई शेख जान मुहम्मद युद्ध में मारा गया। इसके अनंतर जब दारा औरंगजेब के सामने से भागा तब इसको सतलज के उस पार तलवन उतार पर छोड़ा, जो उस नदी का मुख्य उतार था। इसके बाद इसने व्यास नदी के दूसरे किनारे को जाकर दृढ़ किया, जिसमें पीछा करने वालों को रोका जाय पर अंत में दारा साहस छोड़ कर लाहौर से मुलतान भागा। दाऊद खाँ ने आज्ञानुसार नावों को जला कर डुबो दिया तथा स्वयं उसके

पास पहुँचा। सर्वत्र दारा का साथ देते हुए भी यह भक्कर के पास से अलग हो जैसलमेर होता अपने देश हिसार फ़ीरोज़ा चला गया। इसकी योग्यता और स्वामि-भक्ति प्रसिद्ध थी, इसलिए इसी समय औरंगजेब के यहाँ से इसे खिलअत मिला। बादशाही सेना के मुलतान से राजधानी की ओर लौटने पर यह दरबार में गया और अपने कामों के कारण इसने चार हजारी ३००० सवार का मंसब पाया। शुजाअ के साथ के युद्ध में औरंगज़ेब की सेना के दाहिनी भाग का यह अध्यक्ष नियत हुआ। शुजाअ के परास्त होने पर मुअज्ज़म खाँ मीर जुमला के साथ बंगाल की ओर उसका पीछा करने गया। पटना पहुँचने पर शाही फरमान के अनुसार यह वहाँ का सूबःदार नियत होकर वहीं ठहर गया और इसके मंसब में एक सहस्र सवार दो अस्पा सेह अस्पा बढ़ाए गए। जब मुअज्ज़म खाँ शुजाअ के पीछे मखसूसाबाद (मुर्शिदाबाद) से अकबरनगर (राजमहल) गया, तब इसे भी आज्ञा मिली कि अपनी तथा प्रांत की सेना के साथ गंगा उतर कर टाँडा पहुँचे और शत्रु को दमन करे, क्योंकि वह शत्रुओं का निवास-स्थान था और जिसमें वे दोनों ओर से घिर जायँ। दाऊद खाँ अपने भतीजे को अपना प्रतिनिधिस्वरूप पटने में छोड़ कर कुल सेना के साथ स्वयं वहाँ गया और मुअज्ज़म खाँ की सेना से मिल कर उस कार्य को पूरा किया। शुजाअ के बादशाही राज्य से निकल जाने पर दाऊद खाँ लौट कर पटना चला आया और यहाँ के विद्रोहियों को दण्ड देने पर कमर बाँधा। पलाऊँ (पलामुँ) पटना से ४० कोस दक्षिण स्थित है और जिसकी सीमा से नगर २५ कोस पर

है, वहाँ का जमींदार बराबर ही विद्रोही रहा। वह उस प्रांत के दुर्भेद्य दुर्गों, दुर्गम मार्गों तथा घने जंगलों और पहाड़ों के कारण अहंकार से विद्रोह करता रहा। इन सब कठिनाइयों पर विश्वास कर वह इसी समय नये सिरे से बलवा कर कर देने में बहाना करने लगा। दाऊद खाँ ने शाही आज्ञानुसार उस पर चढ़ाई की। पहिले इसने सीमा पर स्थित दुर्गों को, जिन पर विश्वास कर वे बादशाही सीमा के भीतर पहुँच कर सरकारी महालों को लूटते थे, बड़े प्रयत्न से विजय किया। उस प्रांत के शासक ने परास्त होने पर बहुत कुछ प्रार्थना की कि राजकर निश्चित कर दिया जाय तथा उसका अपराध क्षमा हो, पर दाऊद ने उसकी बात कुछ नहीं सुनी। ४थे वर्ष सुसज्जित सेना लेकर यह उस प्रांत पर गया। दुर्ग पलाऊँ के पास मोर्चे लगाए गए और घोर युद्ध होने लगा। उसे स्वधर्म छोड़ कर मुसलमान बन जाने की शर्त पर क्षमा करने और उस प्रांत का राज्य दिए जाने की आज्ञा बादशाह ने भेज दी पर उसने इस बात को अर्थात् सनातन धर्म को छोड़ कर म्लेच्छ धर्म ग्रहण करना नहीं माना। दाऊद खाँ बराबर युद्ध करता हुआ दुर्ग की दीवाल तक पहुँच गया तथा बड़े धैर्य के साथ युद्ध होता रहा। रहस्यमय सहायता हुई और बहुत से वीर घुड़सवार भी दुर्ग की दीवाल के पास पहुँच कर लड़ने लगे और दुर्ग वाले बहुत तंग हुए, जिससे रात्रि में जमींदार भाग गया। इस विजय के अनंतर दाऊद खाँ उस प्रांत के प्रबंध, दुर्ग आदि की रक्षा और अन्य विद्रोहियों के दमन करने के लिए कुछ दिन वहीं ठहरा रहा। वह मंकली खाँ को, जिसे बादशाह ने पलाऊँ की फौजदारी पर नियत

किया था, वहाँ छोड़ कर पटने लौट गया[1]। वहाँ से बादशाह के पास गया और मिर्ज़ाराजा जयसिंह के साथ शिवाजी भोंसला को परास्त करने पर नियुक्त हुआ। इसका मंसब बढ़ कर पाँच हजारी चार हज़ार सवार तीन हजार सवार दो अस्पः सेह अस्पः का हो गया। उसी समय यह ख़ानदेश का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ और इसे आज्ञा हुई कि वह अपना प्रतिनिधि कुछ सेना के साथ बुर्हानपुर में छोड़कर स्वयं युद्ध में जाय। दुर्ग रूरमाल के विजय के उपरांत दुर्ग पुरंधर के घेरे के समय सात सहस्र घुड़सवारों के साथ यह वीर ख़ाँ शिवाजी के राज्य को लूटने के लिये मिर्ज़ाराजा से आदेश पाकर उधर गया तथा राजगढ़ और कोंडाना के आस पास के ग्रामों को लूट पाट नष्ट कर विजयी सेना सहित लौट आया। मिर्ज़ाराजा की सेना के दाएँ भाग का अध्यक्ष होकर इसने बीजापुर राज्य को लूटा और आदिलशाही सेनाओं के साथ कई युद्ध किए। ८वें वर्ष में ख़ानदेश की सूबेदारी से बदले जाने पर यह दरबार लौट गया। १० वें वर्ष में यह बरार का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। वहाँ से फिर बुर्हानपुर में नियत हुआ। १४ वें वर्ष में बादशाह के यहाँ पहुँच कर इलाहाबाद का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। इसकी मृत्यु का समय नहीं ज्ञात हुआ। इसके पुत्र हमीद ख़ाँ ने वीरता के लिए नाम कमाया और बराबर शाही काम करता रहा। २५ वें वर्ष आलमगीरी में इसकी मृत्यु हुई।

---

१. पलामूँ की चढ़ाई का पूरा विवरण आलमगीर नामा, मआसिरे-आलमगीरी, ख़फ़ी ख़ाँ आदि में दिया है। २३ अप्रैल सन् १६६० ई० को चढ़ाई हुई और उसी वर्ष के अंत में पलामूँ पर अधिकार हुआ।

दाऊद खाँ पन्नी

दाऊद खाँ, वहादुर खाँ और सुलेमान खाँ खिज्रखाँ पन्नी के पुत्र थे। खिज्र खाँ पहिले व्यापार से कालयापन करता था। इसके पश्चात् यह बीजापुर की एक सर्कार में नौकर हुआ और वहलोल खाँ अब्दुल् करीम मिआनः के प्रयत्न से सर्दार हो गया। खवास खाँ हब्शी के पकड़ने में इसने वहलोल खाँ का साथ दिया था। फिर यहाँ से पूर्वोक्त खाँ ने इसको प्रकट में शेख मिन्हाज की सहायता को भेजा, जो दक्खिनियों के साथ शिवाजी को दंड देने गया था, पर वास्तव में यह उस शेख को मारने के लिये नियत किया गया था। खिज्र खाँ ने उससे मिलने के अनंतर एक दिन शेख को निमंत्रण देकर अपने यहाँ बुलाया। जब पूर्वोक्त शेख खेमा के पास पहुँचा तब खिज्र खाँ स्वागत को बाहर आया। शेख उसके भेद को जानता था, इसलिये पहिले ही फुर्ती से उसका काम तमाम कर वह स्वयं अपनी सेना में जा पहुँचा। वहलोल खाँ इस समाचार को सुनकर सेना के साथ दक्खिनियों पर चढ़ आया और घोर युद्ध किया। अंत में दक्खिनियों ने हैदराबाद के सुलतान से संधि कर लिया और उस ओर चले गए। दाऊद खाँ उस समय नलदुर्ग में था। दक्खिन के नाज़िम खानजहाँ कोका ने इसके साथ शोक मना कर औरंगजेब के जुलूसी १८ वें वर्ष में इसे शाही नौकरी में ले लिया और इसे चार हजारी मंसब तथा खाँ की पदवी दिला दी। इसके भाइयों और संबंधियों को भी उचित मंसब

मिले और नलदुर्ग के साम्राज्य में ले लिए जाने पर इसको बरार प्रांत में जफ़र नगर रहने के लिये मिला।

२६वें वर्ष में बादशाह के दक्खिन आने पर यह अपने भाई सुलेमान ख़ाँ और चाचा रणमस्त ख़ाँ के साथ, जिसका नाम अली था और जो औरंगज़ेब के सातवें वर्ष में शाही नौकरी तथा डेढ़ हजारी मंसब पाकर क्रमशः पाँच हजारी मंसब तक पहुँचा था तथा जिसे रणमस्त ख़ाँ की पदवी मिली थी, शाही दर्बार में गया। इन दोनों के साथ दाऊद ख़ाँ सुलतान मुईज्जुद्दीन की सेना में नियुक्त होकर उपद्रवी मराठों को दंड देने के लिए भेजा गया। रणमस्त ख़ाँ को बहादुर ख़ाँ की पदवी मिली और वह रूहुल्ला ख़ाँ के साथ दुर्ग वाकिनकीरः के घेरे पर नियत हुआ। ३४वें वर्ष में मोर्चाल में दुर्ग से आई हुई बन्दूक की गोली लगने से यह मर गया। इसका पुत्र उमर ख़ाँ अंत में रणमस्त ख़ाँ पदवी पाकर प्रसिद्ध हुआ। यह औरंगाबाद के रणमस्तपुरा में रहता था, जिसकी मृत्यु के समय इसके कई पुत्र थे पर लिखने के समय कोई नहीं बचे।

दाऊद ख़ाँ ने जुल्फ़िक़ार ख़ाँ के साथ नियत होने पर ख्याति पाई। दुर्ग जिंजी (चिंचि) लेने और शत्रु से युद्ध करने में इसने बहुत प्रयत्न किया। ४३वें वर्ष में जुल्फ़िक़ार ख़ाँ के प्रतिनिधिस्वरूप यह कर्णाटक हैदराबाद में नायब फौजदार नियत हुआ। ४५वें वर्ष में उस पद के साथ कर्णाटक-बीजापुर की फौजदारी भी इसको मिली। ४८वें वर्ष में हैदराबाद के सूबेदार सुलतान मुहम्मद कामबख्श का यह वहाँ नायब नियुक्त हुआ। ४९वें वर्ष में जब बादशाह स्वयं दुर्ग

वाकिनकीरा पर आया तब इसने बुलाए जाने पर जिंजी से आकर दुर्ग लेने में अच्छा काम किया और साहस दिखला कर प्रतिष्ठा पाई। औरंगज़ेब की मृत्यु पर कामबख़्श के विरुद्ध युद्ध में ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ के साथ रहकर इसने बड़ी वीरता दिखलाई। बहादुर शाह के ३रे जुलूसी वर्ष में उक्त ख़ाँ का प्रतिनिधि होकर यह ख़ानदेश, बरार तथा पाईंघाट छोड़कर समग्र दक्षिण का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। ख़ानख़ानाँ की मृत्यु पर यह बुर्हानपुर और बरार पाईंघाट का सूबेदार भी नियत हुआ। बुर्हानपुर में इसका भांजा बायज़ीद ख़ाँ नायब था और हीरामन बकसरिया प्रबंध करता था। बरार में इसका दूसरा भांजा अलावल ख़ाँ नायबी पर नियत था।

जब फर्रुख़सियर बादशाह हुआ तब १ले वर्ष में दाऊद ख़ाँ गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। जब दक्खिन की सूबेदारी हुसेन अली ख़ाँ अमीरुलउमरा को मिली तब वह उस प्रांत को जाने को तैयार हुआ। इसी समय दाऊद ख़ाँ शाही आज्ञा से गुजरात से बुर्हानपुर पहुँचा। नर्मदा पार करने पर अमीरुल्-उमरा ने इसको बहुत समझाया पर कुछ भी फल न निकला। बुर्हानपुर के बाहर तीसरे वर्ष में थोड़ी सेना के साथ दाऊद ख़ाँ ने उसका सामना किया और रुस्तम के समान साहस दिखला कर तथा अपना हाथी दौड़ाकर शत्रु-सेना का व्यूह तोड़ डाला। इसी युद्ध में सन् ११२७ हि० (१७१५ ई०) में बन्दूक की गोली लगने से यह मारा गया। इसे पुत्र न थे। बहादुर ख़ाँ और सुलेमान ख़ाँ इसके सगे भाई भी बड़े भाई के साथ शाही कार्यों में लगे हुए थे। दूसरे भाई ने ५१वें वर्ष में

दो हज़ारी मंसब पाकर औरंगज़ेब की मृत्यु पर मुहम्मद आज़म शाह का साथ दिया। इसके अनंतर जब बहादुर शाह गद्दी पर बैठा तब पहिले वर्ष में यह बुर्हानपुर का सूबेदार नियत हुआ। दूसरे वर्ष बादशाह के वहाँ पहुँचने पर जब प्रजा ने इसके अत्याचार की फ़र्याद की तब यह उस पद से हटा दिया गया। बहादुरशाह की मृत्यु पर इसने अज़ीमुश्शान का साथ दिया तथा दूसरे शाहज़ादों के साथ के युद्ध में सन् ११२३ हि० (सन् १७११ ई०) में यह मारा गया। इसको दौहित्रों के सिवा पुत्र नहीं थे। इनमें सबसे बड़े का नाम इब्राहीम ख़ाँ था और अपने मामा की मृत्यु पर इसने बहादुर ख़ाँ की पदवी पाई। इसने ४९ वें वर्ष में अच्छा मंसब और डंका पाया। जब औरंगज़ेब के राज्यकाल में दाऊद ख़ाँ दक्खिन का नायब सूबेदार हुआ तब यह हैदराबाद का नायब था। फ़र्रुख़सियर के समय जब हैदर अली ख़ाँ दक्खिन का दीवान हुआ तब इसको क़मर नगर (कर्नौल) की फौजदारी मिली। मुहम्मदशाह के राज्य के आरंभिक काल में आज्ञानुसार मुबारिज़ ख़ाँ के साथ आकर यह सन् ११३६ हि० (सन् १७७४ ई०) में निज़ामुल्मुल्क आसफजाह से युद्ध कर मारा गया। इसके पुत्र अलिफ़ ख़ाँ और रणदूलह ख़ाँ थे। पहिला क़मर नगर की फौजदारी पर नियत हुआ और दूसरा जागीर पाकर आसफ़जाह के साथ रहा। दोनों के मरने पर कर्नौल की फौजदारी अलिफ़ ख़ाँ के पुत्र बहादुर ख़ाँ को मिली। यह वहाँ बहुत दिनों तक रहा। जब शहीद नासिरजंग की सेना पर फुलझरी (पौंडीचेरी) के टोपीवालों ने रात को

छापा मारा और सेना का व्यूह टूट गया तब उक्त शहीद इसको अपना समझ कर इसकी सेना की ओर, जो बायाँ भाग था, आया। वहादुर खाँ शत्रु से लगाव रखता था इसलिये इसने जानबूझ कर सन् ११६४ हि० (सन् १७५० ई०) में उसको गोली से मार डाला। इसके बाद हिदायत मुहीउद्दीन खाँ (आसफजाह का दौहित्र मुज़फ्फरजंग) से मेल करके विजयी के समान उससे सलूक किया। यद्यपि सर्दार ने उस समय दूरदर्शिता से कुछ नहीं कहा पर सेना के कड़प्पा के पास रायचूर पहुँचने पर उसका धैर्य छूट गया और झगड़ा हो गया। अंत में युद्ध हुआ, जिसमें सर्दार तीर से घायल हुआ और वहादुर खाँ गोली से मारा गया। शैर का अर्थ—

संसार में जो कोई काम. मिलता है, वह जब नीचे को जाता है तो खराब होता है। कोई भी अभिलाषा सदा पूर्णता को नहीं पहुँचती, जैसे पृष्ठ पूरा होने पर उलट दिया जाता है।

लिखने के समय वहादुर खाँ का सौतेला भाई रणमस्त खाँ उर्फ मुनौअर खाँ कर्नोल की फौजदारी से कालयापन करता था और ग्रंथकर्ता से उसकी मैत्री थी।



दानिश मन्द खाँ

यह यज्द का मुल्ला शाफेई था। बहुत दिनों तक ईरान में यह विद्याध्ययन करता रहा। अनेक विज्ञान तथा प्रचलित गुण आदि सीखने के बाद प्रतिष्ठा के साथ जीविका की खोज में ईरानी सौदागरों से कुछ ऋण लेकर हिन्दुस्तान आया, जो आशा रखनेवाले तथा इच्छा करनेवाले के लिये लाभ का घर है। थोड़े दिनों तक यह शाही कंप में रहा और आगरा राजधानी से लाहौर होता हुआ काबुल तक साथ गया। वहाँ से बादशाह के लौटने पर यह घर लौटने की इच्छा से सूरत गया। पर इसके ग्रह अब जाग चुके थे और इसका भाग्य अब खुलने को था, इसलिये इसकी विद्वत्ता और गुण शाहजहाँ को मालूम हुए। दरबार से उस बंदर के अध्यक्ष को आज्ञा भेजी गई कि इसको दरबार भेज दो। भाग्य के मार्ग-प्रदर्शन से इसने शाही तख्त तक की यात्रा की और सूरत से २४ वें वर्ष में ९ जीहिज्जः (सन् १६५० ई०) को बादशाह के सामने पहुँचा।

जब इसकी योग्यता और गुणों को शाहजहाँ ने पहिचाना तब उस गुणग्राहक बादशाह ने इस पर कृपा-दृष्टि कर इसे एक हजारी १०० सवारों का मंसब दिया तथा आज्ञा दी कि रविवार की भेंट इसे एक वर्ष तक मिलती रहे। इसके बाद इसका मंसब बढ़ाया गया और २९वें वर्ष में लश्कर खाँ के स्थान पर यह द्वितीय बख्शी हुआ। साथ ही इसको दानिशमंद खाँ की

पदवी मिली तथा इसका मंसब बढ़ कर ढाई हजारी ६०० सवार का हो गया। ३१ वें वर्ष में इसका मंसब तीन हजारी ८०० सवार का हो गया और एतकाद खाँ के स्थान पर यह बख्शी नियत हुआ। इसी वर्ष यह नौकरी से त्याग-पत्र देकर राजधानी शाहजहानाबाद में एकान्तवास करने लगा। आलमगीरी जलूस के दूसरे वर्ष में फिर से इस पर शाही कृपा हुई और इसने चार हजारी २००० सवार का मंसब पाया। ७ वें वर्ष के आरंभ में पाँच हजारी का ऊँचा मंसब मिला। ८वें वर्ष में दुर्ग शाहजहानाबाद का सूबेदार तथा अध्यक्ष नियत हुआ। १०वें वर्ष में मुहम्मद अमीन खाँ के स्थान पर मीर बख्शी नियत होने पर इसे जड़ाऊ कलमदान मिला। जब १२ वें वर्ष में औरंगजेब आगरा गया तब इसे राजधानी दिल्ली की अध्यक्षता तथा बख्शीगिरी दोनों मिली। १३वें वर्ष में १० रबीउल् अव्वल सन् १०८१ हि० (१८ जुलाई सन् १६७० ई०) को इसकी मृत्यु हुई।

यह अमीर उस समय के अच्छे विद्वानों में से था तथा सच्चरित्रता और दूरदर्शिता के लिये प्रसिद्ध था। इसके बाद प्रायः अब तक ऐसा उच्चपदस्थ अमीर, जिसमें विद्वत्ता तथा अमीरी दोनों हो, नहीं हुआ। कहते हैं कि जब इसे शाही नौकरी मिली तब इसको मुल्ला अब्दुलहकीम सिआलकोटी से, जो बुद्धि और विद्या में बहुत बड़ा हुआ था और जिससे बढ़कर हिंदुस्तान में कोई दूसरा विद्वान नहीं था, जैसा कि अच्छे ग्रंथों पर की उसकी टीकाओं को मनन करने से ज्ञात होता है, तर्क और शास्त्रार्थ करने के लिये आज्ञा हुई थी। दोनों विद्वानों में इस

सूत्र के (मैं तेरी ही पूजा करता हूँ और तुझी से सहायता माँगता हूँ) संबंधवाचक वाव के बारे में बहुत समय तक तर्क होता रहा। अल्लामी सादुल्ला खाँ, जो विद्या का झंडा था, निर्णायक हुआ। दोनों ही अंत में बराबर रहे। उस दिन से इस पर शाही कृपा हुई और इसका सम्मान बढ़ा। यह भी कहते हैं कि उक्त खाँ अवस्था बढ़ने पर फ़िरंगी विद्या की ओर भी आकर्षित हुआ और बहुधा उनके तर्कों का उल्लेख करता[1] परंतु इसकी विद्या और बुद्धि देख कर यह ठीक नहीं ज्ञात होता।

---

१. बर्नियर ने अपने यात्रा-विवरण में इसका उल्लेख किया है।

दाराब खाँ, मिर्ज़ा

यह मिर्ज़ा अब्दुल् रहीम ख़ानख़ानाँ का द्वितीय पुत्र था। इसने पिता के साथ बराबर युद्ध और चढ़ाइयों में रहकर प्रसिद्धि पाई थी। खिरकी युद्ध में, जो संसार प्रसिद्ध है, अपने बड़े भाई शाहनवाज़ ख़ाँ के साथ इसने बहुत प्रयत्न किया था, जिससे इसका मंसब बढ़ा था। जब १४ वें वर्ष जहाँगीरी में शाहनवाज़ ख़ाँ मरा तब यह पाँच हज़ारी ५००० सवार का मंसब पाकर अपने भाई के स्थान पर बरार और अहमदनगर का सूबेदार नियुक्त हुआ। १५ वें वर्ष में जब मलिक अंबर हब्शी ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर शत्रुता आरंभ की और बादशाह के दूरस्थ काश्मीर पर अधिकार करने जाने को अच्छा अवसर समझ कर शाही सीमा पर चढ़ाई कर दी तब बहुत से स्थानों के सर्दारगण दाराब ख़ाँ के पास आकर एकत्र हो गए। अहमदनगर का अध्यक्ष खंजर ख़ाँ दुर्ग में जा बैठा। दाराब ख़ाँ अपनी सेना तैयार कर बालाघाट की ओर गया। अंबर के बर्गी घुड़सवार इससे कुछ दूर हटे हुए प्रति दिन चारों ओर घूमते रहते। युद्ध बराबर होता और हर बार वे परास्त होकर भागते तथा मारे जाते। एक दिन दाराब ख़ाँ अच्छे घुड़सवारों को साथ लेकर युद्ध को गया और घोर युद्ध पर विजयी हो बहुत सा लूट लेकर लौटा पर शत्रु ने कंप का मार्ग इसके बाद ऐसा बन्द कर दिया, जिससे गल्ला नहीं आने पाता था और महँगी

तथा कमी से बहुत कष्ट होने लगा। अंत में लाचार होकर इसने रोहनखीरा से कंप उठा दिया और बालापुर में आ जमाया। जब दक्खिनी लुटेरे यहाँ भी पहुँचे और यहाँ तक उनका साहस बढ़ा कि नर्मदा उतर कर वे मालवा में लूट पाट मचाने लगे तब शाहजहाँ दक्खिन की सूबेदारी पर पुनः नियुक्त होकर १६वें वर्ष में बुर्हानपुर आया। प्रबल सेना ने गोदावरी नदी तक निज़ामशाही राज्य को खूब लूटा और खिरकी को, जो अंबर के रहने का स्थान था तथा जहाँ से वह सेना पहुँचने के एक दिन पहले ही दुर्ग दौलताबाद में चला गया था, उजाड़ कर दिया। तब अंबर ने नम्रता से बादशाही साम्राज्य की सीमा के पास के इलाकों के लिये १४ करोड़ दाम और ५० लाख रुपया सिक्का वार्षिक कर देकर संधि कर ली। १७वें वर्ष में पिता की आज्ञा से शाहजहाँ कंधार की चढ़ाई के लिये खानखानाँ और दाराब ख़ाँ के साथ दक्खिन से रवानः हुआ।

पर भविष्य में कुछ और ही लिखा था, जिससे बादशाह और शाहजादा में यहाँ तक वैमनस्य हो गया कि युद्ध की तैयारी हुई। शाहज़ादा कर्तव्यज्ञान के कारण शाही सेना का सामना न कर हट गया पर राजा विक्रमाजीत को, जो अच्छा शाही सर्दार था, दाराब ख़ाँ के साथ बादशाही सेना का सामना करने को नियत किया। दैवात् युद्ध में किसी ओर की बंदूक की गोली लगने से राजा मारा गया, जिससे सेना का प्रबंध बिगड़ गया और दाराब ख़ाँ शाहज़ादे के पास भाग गया।

जब शाहजहाँ ने बुर्हानपुर से खानखानाँ को महाबत ख़ाँ के पास बाध्य होकर संधि के लिये भेजा और उस वृद्ध पुरुष ने

स्वामि-भक्ति तथा मैत्री को भूलकर शत्रु का साथ दिया तब दाराब ख़ाँ ख़ानख़ानाँ के अन्य पुत्र पौत्रादि के साथ कैद कर दिया गया। जब शाहजहाँ ने बंगाल पर अधिकार कर विहार को लेने का विचार किया तब दाराब ख़ाँ पर कृपा कर उसे बंगाल का शासक बनाया पर उसकी स्त्री, एक पुत्र, एक पुत्री और एक भतीजे की ज़मानत में अपने पास रख लिया। जब शाहज़ादा बनारस के पास टौंस युद्ध में परास्त होकर उसी मार्ग से दक्षिण को चला तब उसने दाराब ख़ाँ को लिखा कि जल्दी से गढ़ी तक, जो बंगाल का फाटक है, पहुँच कर वहाँ उपस्थित हो। इसने झुठाई से दूसरा हाल देख कर उत्तर में लिखा कि विद्रोही ज़मींदारों ने मिलकर उसे घेर लिया है, जिससे वह उपस्थित नहीं हो सकता। यद्यपि विद्रोह की बात ठीक थी पर तब भी साथ छोड़ कर उसने 'मित्रता नहीं निबाही और स्वामि-द्रोह किया। शाहज़ादा ने समय देखकर उससे अपनी रक्षा का हाथ उठा लिया और क्रोध से उसके युवा पुत्र तथा भतीजे को अब्दुल्ला ख़ाँ को सुपुर्द कर दिया। दीवाने को संकेत बहुत है और इससे उसके द्वारा वे दोनों निर्दोष मारे गए। सुलतान पर्वेज़ और महाबत ख़ाँ को जब यह बात मालूम हो गई तब उन्होंने ज़मींदारों को लिख भेजा कि लूट से हाथ खींच लें और उसे इधर भेज दें। जब १९वें वर्ष के अंत में दाराब ख़ाँ सुलतान पर्वेज़ के पास पहुँचा, तभी जहाँगीर की आज्ञा महाबत ख़ाँ को मिली कि उस अभागे को जीवित रखने में कुछ भी लाभ नहीं है इसलिये जल्द उसका सिर दरबार में भेज दो। महाबत ख़ाँ ने आज्ञा के अनुसार सिर कटवा कर भेजवा दिया।

यह सन् १०३४ हि० (सन् १६२५ ई०) में हुआ, जैसा 'शहीद पाक शुद दाराब मिस्कीन' (गरीब दाराब पवित्र शहीद हुआ) तारीख से निकलता है। महाबत ने पहिले उस सर को एक बर्तन में छिपाकर तर्बूज के नाम से खानखानाँ के पास भेजा, जो उसके कैद में था। खानखानाँ ने देख कर कहा कि 'तर्बूज़ शहीदी' है। दाराब गुणों से युक्त एक युवक वीर तथा योग्य सैनिक था। इसके समान दक्षिण में किसीने साहस नहीं दिखलाया था—पर उसकी जन्म कुंडली भाग्यहीन थी। शाहजहाँ का पक्ष छोड़ने पर तथा बादशाही पक्ष से निकाले जाने पर इसका अंत बुरा हुआ।

दाराब ख़ाँ

यह सब्जवार के मुख्तार ख़ाँ का पुत्र था और शम्सुद्दीन मुख्तार ख़ाँ का छोटा भाई था। जब शाहज़ादा औरंगज़ेब राज्य लेने और दारा को परास्त करने के लिये, जिसने शाहजहाँ के बीमार हो जाने से राज्य का कुल प्रबन्ध-कार्य अपने अधीन कर लिया था, दक्षिण से आगरे की ओर चला तब दाराब ख़ाँ दक्षिण के सहायकों में नियत किया जाकर लौटा दिया गया। जब शाहज़ादा विजयी हुआ, तब पहिले ही जलूस में यह ख़ाँ की पदवी पाकर अहमदनगर दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। दूसरे वर्ष के अंत में बदले जाने पर यह बादशाह के पास आया। ९वें वर्ष में फ़ैज़ुल्ला ख़ाँ के पद पर करावल बेगी का दारोगा हुआ और इसके बाद बंदूक खाना खास का अध्यक्ष हुआ। १६वें वर्ष में अब्दुल्ला ख़ाँ के स्थान पर गुस्लखाना का दारोगा हुआ और फिर रूहुल्ला ख़ाँ के स्थान पर आख्तावेगी का दारोगा हुआ। इसके अनन्तर अजमेर का शासक नियत हुआ। १९वें वर्ष में वहाँ से दरबार आया और मुलतफ़ात ख़ाँ की जगह पर मीर आतिश हुआ तथा मीर तुज़ुक प्रथम का भी काम योग्यता से किया। २२वें वर्ष में सज्जित सेना सहित यह खंडीला के राजपूतों को दमन करने और वहाँ के मंदिर तोड़ने गया। उक्त ख़ाँ ने, जब बादशाह अजमेर में थे, विद्रोहियों के उस निवासस्थान पर चढ़ाई कर खंडीला, सानौला आदि के मंदिरों को खोद कर नष्ट कर दिया। तीन सौ के ऊपर राजपूत

दृढ़ता से लड़कर मारे गए। इसी वर्ष २५ जमादिउल् अव्वल सन् १०९० हि० (२४ जून सन् १६९७ ई०) को यह मर गया। इसे तीन पुत्र और एक पुत्री थी। बड़े मुहम्मद खलील ने तरबिअत खाँ की पदवी पाई, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है।[1] दूसरा मुहम्मद तकी खाँ है, जिसका बहर:मंद खाँ बख्शी की पुत्री से विवाह हुआ। इसका पुत्र मुर्वी पिता की मृत्यु पर मुहम्मदतकी खाँ की पदवी से प्रसिद्ध हुआ। ४८ वें वर्ष में शायस्ता खाँ अमीरुल् उमरा के पुत्र शायस्ता खाँ की पुत्री से इसका विवाह हुआ। औरंगज़ेब इसे मित्र समझता था। बहादुरशाह के समय इसे माँ की ओर से नाना की बहर:मंद खाँ की पदवी मिली। जहाँदारशाह के समय जब ज़ुल्फ़िकार खाँ अमीरुल्उमरा वज़ीर हुआ और राज्य का अधिकार तथा प्रबंध भी इसी को मिला तब उक्त खाँ संबंध के कारण पाँच हजारी मंसबदार हो गया और वज़ीर का भी कुछ काम करता था। ईश्वर के इच्छानुसार जब जहाँदारशाह के साम्राज्य रूपी दूकान का अंत हो गया और दूसरे प्रकार की वस्तुयें काम आने लगीं तब उक्त खाँ का धन, मान, मंसब तथा जागीर सब छिन गईं। अमीरुल् उमरा हुसेन अली खाँ की सहायता से वह कष्ट के इन लहरों से बचकर दक्षिण के सुरक्षित तटपर पहुँचा। औरंगाबाद में अंबरी तालाब के पास सुलतान महमूद की हवेली में, जिसे औरंगज़ेब ने मृत बहर:मंद खाँ को दिया था, बहुत दिनों तक रहा।

---

१. इसी भाग का १०६ टा शीर्षक देखिए।

जब दक्खिन में आसफजाह का राज्य हुआ तब इस वंश का सम्मान सुनकर इसपर कृपा दिखलाई और दुर्ग अरक का अध्यक्ष नियत किया, जिसमें सिवाय एकान्तवास करने के आय कुछ नहीं थी । पंद्रह या सोलह वर्ष यहाँ इसने बिताए । इसका एक पुत्र इस समय उस दुर्ग में रहता है, जो प्रायः उजाड़ हो रहा है । उक्त ख़ाँ ऐसी अवस्था में खूब भोजन करता था । तीसरा पुत्र कामयाब ख़ाँ था, जो मतलब ख़ाँ की पुत्री से ब्याहा था । इसे एक पुत्री थी, जिसका फ़र्रुख़सियर के समय हुसेन अली ख़ाँ से निकाह हुआ था । परंतु दाराब ख़ाँ की पुत्री का निकाह मीर लश्करी से हुआ था, जो मीर हैदर सफवी के पौत्रों में से था । उसका बड़ा पुत्र असकर अली ख़ाँ बहुत दिनों तक दक्षिण में धरप का दुर्गाध्यक्ष रहा, जो अपनी दृढ़ता तथा दुर्भेद्यता के कारण द्वितीय दौलताबाद कहा जाता है । आसफजाह ने इसके वंश का विचार कर अपने पास ही रखकर इसे जागीर का मुत्सद्दी और अपना दीवान बनाया । इस समय यह कुछ सरकारी कार्य करता है । यह वृद्ध हो गया है । ईश्वर कृपा रखे ।

दियानत ख़ाँ हकीम जमाला काशी[1]

शाहजहाँ के जलूस के प्रथम वर्ष में यह मुमताज़ुज्ज़मानी की सर्कार का दीवान नियत हुआ। चौथे वर्ष में इसका मंसब बढ़कर एक हजारी २५० सवार का हो गया और यह मीर अब्दुल् करीम के स्थान पर पंजाब प्रांत का दीवान नियत हुआ। जब उसके कार्य में सचाई और सफाई मालूम हुई तब पाँचवें वर्ष में इसको दियानत ख़ाँ की पदवी मिली, मंसब में १५० सवार बढ़ाए गए और सर्कार सरहिंद की दीवानी, अमीनी तथा फौजदारी राय काशीदास के स्थान पर इसे मिली। ९ वें वर्ष में २०० सवार और बढ़े। ११वें वर्ष में दुर्ग कंधार के बादशाही अधिकार में चले आने पर और यह सुनकर कि शाह सफ़ी ईरानी उस पर चढ़ाई करनेवाला है, जब शाहज़ादा शुजाअ काबुल में उसकी सीमा पर नियुक्त हुआ, तब यह उसकी सेना को दीवानी के पद पर नियत हुआ। १२ वें वर्ष में आक़िल ख़ाँ इनायतुल्ला के स्थान पर मंसबदारों के 'दाग़ व तसदीक़' का काम इसको मिला। १४ वें वर्ष में ख़िलअत और घोड़ा मिला तथा औरंगाबाद, बरार का बालाघाट और तेलिंगाना का, जिस पर अधिकार हो चुका था, दीवान नियत हुआ। १७ वें वर्ष

---

१. काशी से बनारस से तात्पर्य नहीं है। यह काश का रहनेवाला था, जिससे काशी शब्द बना है।

में पाँच सदी जात मंसब में बढ़ा, जो मंसब १८ वें वर्ष में दो हज़ारी ७०० सवार का हो गया। २१वें वर्ष में जब उक्त प्रांतों पर रायरायान दीवान नियत हुआ तब यह दरबार लौट गया पर इसके बाद जब शाहज़ादा मुराद ने रायरायान के संबंध में अपनी अप्रसन्नता प्रकट की तब २२ वें वर्ष में उसके स्थान पर चारों सूबों की दीवानी पर यह नियत हुआ। २७ वें वर्ष में वहाँ से बादशाह के यहाँ आया और शाहज़ादा मुराद के सर्कार के दीवानी पद पर नियत हुआ। जब औरंगजेब के भला चाहने वालों की इच्छा पूर्ति का समय आया तब वह नौकरी में पहुँच कर शाही काम में जैसे दाग़ के दारोगा के पद पर नियत हुआ। ८ वें वर्ष आलमगीरी में बयूतात का दीवान नियत हुआ और ९वें वर्ष में उस कार्य से हटाया गया। १६ वें वर्ष सन् १०८३ हि० (सन् १६७२ ई०) में यह मर गया। इसके पुत्र देव अफ़गन, शेर-अफ़गन और रुस्तम को शोक के खिलअत मिले। २४ वें वर्ष में पहला 'दाग़ और तसदीक' का दारोगा हुआ और उसे मोतमिद खाँ की पदवी मिली। दूसरे दोनों को भी योग्य मंसब मिले।

दियानत खाँ

इसका नाम मुहम्मद हुसेन दश्तबयाज़ी [1] था। कोहिस्तान प्रांत के नौ भागों में से एक दश्तबयाज़ है। यह उस देश का एक सरदार था। इतिहास-ज्ञान में यह अपने समय का एक ही था। सौभाग्य से जुनेर में पहुँच कर शाहजहाँ की नौकरी में नियत हो विश्वास तथा मुसाहिबी में इसने प्रतिष्ठा पाई। शाहजहाँ की गद्दी के दिन दो हजारी ८०० सवार का मंसब और ८००० रुपए पुरस्कार में मिले। जब दक्खिन के सूबेदार खानजहाँ लोदी ने जहाँगीर की मृत्यु पर ऐसा काम किया, जो शाहजहाँ के प्रति स्वामि-भक्ति तथा हिताकांक्षा के विरुद्ध था, तब भी शाहजहाँ ने समय देख कर उसे उसकी सूबेदारी, मंसब और जागीर के बहाली का फर्मान भेज दिया पर साथ ही उसके कार्यों की जाँच भी की। खानजहाँ ने मालवा उसके अध्यक्ष मुजफ्फर खाँ से लेकर उस पर अधिकार कर लिया था, दक्षिण में नियुक्त कुल सरदारों और अफसरों को उसने अपने पक्ष में मिला लिया था तथा निजामशाह को बालाघाट सौंप कर उसे भी अपना साथी बना लिया था। विद्रोह की आशंका से शाहजहाँ ने पहिले वर्ष जुलूसी में दियानत ख़ाँ को, जो बुद्धिमानी और दूरदर्शिता के लिये विख्यात था दक्षिण के वाके-

---

१. दश्तबयाज़ का निवासी। यह खुरासान के पार्वत्य प्रांत में एक ज़िला है जिसका अर्थ श्वेत जंगल है।

आनवीसी पद पर नियत कर गुप्त आज्ञा दी कि खानजहाँ के भेदों और उसके षड्यंत्र के रहस्य को समझ कर वृत्तांत लिख भेजे। यह आज्ञा पाकर खाँ ने बड़ी बुद्धिमानी और समझदारी से बुर्हानपुर पहुँचने के बाद खानजहाँ की चाल और बात से वास्तविक भेद का पता लगाकर बादशाह को लिखा कि केवल शंका के कारण उस मनुष्य में विद्रोह और उपद्रव की इच्छा छिपी हुई है। वास्तव में उसका मन भय से फिरा हुआ है। विद्रोह का षड्यंत्र वह नहीं कर सकता। निश्शंक होकर आप उसे बुला लीजिए क्योंकि अभी तक इस प्रांत में कुछ भी गड़बड़ नहीं है। शाहजहाँ ने यह पत्र पाकर शंका मिटते ही खानजहाँ को दक्खिन की सूबेदारी से हटाकर मालवा का उसे प्रांताध्यक्ष बनाया और दियानत खाँ को अहमदनगर का दुर्गाध्यक्ष नियत किया। दूसरे वर्ष के आरंभ में ५०० जात ७०० सवार मंसब में बढ़ाए गए। जब तीसरे वर्ष में बुर्हानपुर में बादशाह रहने लगे तब खाँ का मंसब ढाई हजारी २००० सवार का हो गया। पर उसी वर्ष सन् १०४० हि० (सन् १६३०–१ ई०) में यह अहमदनगर में मर गया।

दियानत खाँ

इसका नाम मीर अब्दुल् क़ादिर था और अमानत ख़ाँ ख़्वाफ़ी का बड़ा पुत्र था। यह उच्चमनस्क और गंभीर पुरुष था, सत्यवादी तथा सच्चा और युद्ध एवं प्रबन्ध में कुशल था। अपने पिता के जीवन में औरंगज़ेब के राजत्व में शाही नौकरी में इसने ख्याति पाई और अच्छे काम करने तथा योग्यता दिख-लाने से इसने नाम कमाया। जिस समय इसका पिता दक्षिण की दीवानी के कार्यों के संपादन में लगा हुआ था, उस समय यह भी उसके साथ नगर औरंगाबाद में वहाँ की इमारत का अध्यक्ष होकर रहता था। जब आलमगीर वहाँ आया तब उसने नगर-दीवाल की, जो एक सहस्र गज अर्थात् दो शाही कोस लंबा है, मरम्मत करने की आज्ञा दी। विजयी सेना के कोत-वाल इह्‌तमाम ख़ाँ के निरीक्षण में यह कार्य पहिले होने लगा पर जब बादशाह इस काम की जल्दी करने लगे तब दियानत ख़ाँ ने चार महीने में इसे पूर्ण करने का वचन दिया और इसे तीन लाख रुपये व्यय कर उतने समय ही में बनवा दिया। इसके पिता की मृत्यु पर, जिस सत्यनिष्ठ की अच्छी सेवा बादशाह के ध्यान पर चढ़ी हुई थी और उस गुणग्राही बादशाह ने उस मृत के हर एक साथी संबंधी का विचार रखा था तथा दियानत ख़ाँ उसका सबसे बड़ा व योग्य पुत्र था, इसलिये उस पर विशेष कृपा हुई और इसको वृत्ति बढ़ाई गई। इसके छोटे

भाई मीर हुसेन को, जिस पर इससे भी बढ़कर शाही कृपा थी, पिता की पदवी मिली और इसे दियानत ख़ाँ की पदवी मिली। ३४ वें वर्ष में इसे मूसवी ख़ाँ मिर्ज़ा मुइज्ज़ की मृत्यु पर दक्खिन प्रांत की दीवानी मिली।

जब ४३ वें वर्ष में इसके भाई अमानत ख़ाँ द्वितीय की, जो सूरत वंदर का मुत्सद्दी था, मृत्यु हुई, तब यह उसी वंदर में उक्त पद पर नियत हुआ। इसका मंसब ५०० बढ़ कर दो हज़ारी हो गया। उस वंदर का कार्य अच्छी तरह न कर सकने पर बादशाह ने इसको दरबार में बुला लिया। इसके अनंतर दक्खिन की दीवानी पर नियत होकर यह फिर लौटा। औरंगजेब की मृत्यु के अनंतर मुहम्मद आज़म शाह ने इसको इसी काम पर अपनी ओर से औरंगाबाद में छोड़ा।

उस समय के दीवानों के अधिकार और विश्वास का क्या कहना था। वे ९९ सहस्र दाम तक अपने हस्ताक्षर से वेतन दे सकते थे। इस कारण जिसे वे अधिक देना चाहते थे, उसको कई बार करके इससे भी अधिक धन दे सकते थे। बादशाह या नाज़िम कुल् अर्थात् प्रधान मंत्री के हस्ताक्षर बिना किसी जागीर की स्वीकृति नहीं मिल सकती थी और सिवा ख़ाँ फ़ीरोज जंग के, जो बरार में रहता था, अन्य कोई इससे उच्चतर अमीर दक्खिन में नहीं था इसलिये आवश्यकता होने पर वेतनों की सूची स्वीकृति के लिये इसी के पास आती और यह उच्चपदस्थ सर्दार उस पर यह लिख कर कि यह एकाएक उपस्थित की गई है, हस्ताक्षर कर देता था। इसके बाद जब बहादुर शाह ग़ाज़ी बादशाह होकर दक्षिण आया तब यहाँ की दीवानी मुर्शिद कुली

ख़ाँ के नाम हुई और उसके बंगाल से वहाँ पहुँचने तक मूसवी ख़ाँ मिर्ज़ा महदी उसका प्रतिनिधि नियत हुआ। जब दियानत ख़ाँ बादशाह के पास आया तब उस पर कृपा हुई। जब बहादुरशाह कामबख्श को दमन करने के लिये हैदराबाद आया तब उक्त ख़ाँ को दुर्जय दुर्ग बीदर में उस महाल के कैदी असामियों की रक्षा के लिये छोड़ा और उसका अधिकार भी दिया। जब बहादुरशाह उस ओर से हिन्दुस्तान लौटा तब दियानत ख़ाँ को, जिसने औरंगाबाद को अपना घर बना लिया था, दुर्ग औरंगाबाद की अध्यक्षता मिली। वहाँ यह आराम से काल-यापन करने लगा। जब मुर्शिद कुली ख़ाँ बंगाल से दरबार में पहुँचा और इस कारण कि उसका मन उसी प्रांत में लगा था, वह यह काम लेना (दक्षिण की दीवानी) नहीं चाहता था तब उसने पुराने एहसानों के विचार से उक्त ख़ाँ के लिये बहुत प्रयत्न किया और इससे दियानत ख़ाँ को दूसरी बार दक्खिन की दीवानी की नियुक्ति प्राप्त हुई।

जब मुहम्मद फ़र्रुखसियर बादशाह हुआ तब दक्खिन की दीवानी हैदर अली ख़ाँ ख़ुरासानी को मिली। उसके पहुँचने के पहिले ही दियानत ख़ाँ की मृत्यु हो गई। यह विद्वत्ता तथा कई गुणों में निपुण था। इसके दरबार में मौलाना रूमी कृत मसनवी हक़ीक़ी आदि पुस्तकें अर्थ सहित पढ़ी जाती थीं। इसका पुत्र दियानत ख़ाँ दूसरा है, जिसका वृत्तांत अलग लिखा गया है।[1] दौहित्रों में बड़ी पुत्री के लड़के सय्यद अमानत ख़ाँ प्रसिद्ध

१ इसी भाग का १२८ वाँ शीर्षक देखिए।

नाम अर्जुमंद ख़ाँ पर इसका अत्यधिक स्नेह था। उसका पिता सय्यद अताई था, जिसका पिता मीर अहमद तूरान से आया था। वह बड़ा साहसी तथा बुद्धिमान और कविता प्रेमी था। थोड़े दिनों इसने नाना की नायबी की जिसके बाद हैदर अली ख़ाँ के साथ उसका परिचय हुआ और यह बोड़ का फौजदार नियत हुआ। गुजरात में उक्त ख़ाँ की ओर से यह पीतलद में नियुक्त था। थोड़े दिन पहिले आसफजाह के प्रस्ताव पर अंदौर का आमिल नियुक्त हुआ, जो बीदर प्रांत में एक प्रसिद्ध महाल है। इसी वर्ष अभाग्य से और आँखों के रोग से इसको घर बैठ रहना पड़ा, जिसमें बिना चश्मे के कुछ दिखाई पड़ना कठिन है। इसी बेकारी में इसको कीमियागरी का शौक हुआ और अच्छी किताबों से इस विज्ञान को सीखा। पर इसकी सफलता गुप्त कोष है, जो अत्तार की दूकान पर नहीं मिलती। यह केवल आशा मात्र है। जिस पर ईश्वर की कृपा होती है, उसे ही वह इसके लिये चुनता है।

दियानत ख़ाँ

इसका नाम मीर अली नक़ी था और अर्जुमंद ख़ाँ मीर अब्दुल् क़ादिर दियानत ख़ाँ का योग्य पुत्र था। सचाई तथा ईमानदारी में यह पिता के समान था। बादशाही सर्कार के प्रबंध में यह कभी न झूठ बोला और न कभी आलस्य किया। यौवन के आरंभ ही में अपने पूज्य पिता की नायबी में, जो दक्खिन की दीवानी पर नियत हो शाही छावनी में रहता था, इसको औरंगाबाद की दीवानी मिली। नगर की बयूताती अर्थात् सर्कारी इमारतों के निरीक्षक का भी पद इसे मिला। इसने जवानी में बुद्धिमानी और अनुभव से ईश्वर पर भक्ति बढ़ाई। सौभाग्य से खुदाई बातों के ज्ञाता तथा पहुँचे हुए साधु मियाँ शाह नूर का शिष्य हुआ, जो फकीरी के सामान आदि न रखता, एकांतवास करता और ध्यान में दिन व्यतीत करता। यह उसका सच्चा अनुवर्ती था। उसी अल्पावस्था में उस बुजुर्ग के सत्संग के फल से अपने को कुमार्ग में जाने से बचाया और इस संप्रदाय के पवित्र आचारों को अपनाया। जब यह पहुँचा हुआ पीर मर गया तब दियानत ख़ाँ ने उसका मकबरा मरम्मत कराने तथा बनवाने में बहुत धन व्यय किया और कुछ जमीन उसके लिए वक़्फ़ भी कर दिया, जिससे उसकी शोभा बढ़ गई। वर्तमान समय में, जब शहर उजड़ा हुआ है तब भी, ऐसा कोई दूसरा मज़ार आस-पास चारों ओर उस नगर में नहीं है, जहाँ इतने

लोग दर्शन को जाते हैं। इसके तथा इसके उत्तराधिकारियों के उर्स के सिवाय दूसरे दिनों में भी, जैसे सफर महीना के अंतिम बुधवार को बहुत भीड़ छोटे बड़ों की होती है। जब दरिद्र मनुष्य सेवा पूजा को आते थे तब वे हम्माम में स्नान कर आने के लिए दो पैसा पाते थे और इसी कारण यह शाह नूर हम्मामी कहे जाने लगे। कहते हैं कि इस फकीर ने अपने संबंधी, जाति तथा देश आदि का कुछ भी उल्लेख नहीं किया पर उसके शब्दों पर ध्यान करने से अनुमान किया गया है कि वह एक अमीर का लड़का था और पूर्व ओर के देश का निवासी था। उसके बहुत से शिष्य कहते हैं कि उसने साधारण से बहुत अधिक अवस्था पाई थी। अधिक आश्चर्य यह है कि उसने अपनी गुरु-परंपरा भी नहीं प्रकट की, प्रत्युत गुरु और शिष्य का शब्द भी कभी मुँह पर नहीं लाया। उसने मित्रों और अनुयायियों को उपदेश किया। उसकी मृत्यु पर उसकी शिष्य-परंपरा चली। ख़ाँ ने सत्यता की मूर्ति सय्यद शहाबुद्दीन को, जो बिहार प्रांत का था और बहुत दिनों से उस सिद्ध की सेवा शुश्रूषा करता था, उसका उत्तराधिकारी नियत किया। इसके अनन्तर उसका भांजा सय्यद सादुल्ला सिद्धासन पर बैठा। इस समय उसका पुत्र सय्यद क़ुतुबुद्दीन प्रसिद्ध नाम मियाँ मँझले साहब मज़ार का मालिक है। जवानी ही में वह विरक्त है और न विवाह करने को तैयार है। विद्या तथा गुणों से पूर्ण, शिष्यों के लाभ का इच्छुक तथा प्रसन्नचित्त रहता है। प्रधानतः यह नम्रता तथा अन्य गुणों से सुशोभित है।

औरंगजेब के राज्यकाल में उक्त ख़ाँ पहिले बीदर की

दीवानी और फिर बुर्हानपुर की दीवानी पर नियत हो मंसब बढ़ने और ख़ाँ की पदवी पाने से सम्मानित हुआ। इसी समय जब बहादुर शाह विजयी सेना के साथ शांति-स्थापन करने दक्खिन आया तब यह बादशाही दर्बार में उपस्थित होकर विशेष कृपापात्र हुआ। यह युवा तथा सशक्त पुरुष था, शीलवान तथा तीव्र बुद्धि के करण अत्यंत गुणवान और हर कार्यों में कुछ न कुछ नई बात ढूँढ़ निकालने वाला था, जिस कारण हर समय उसको साथ रहने की नौकरी पर नियत करने का प्रयत्न किया गया। ऐसी सेवा से उन्नति की विशेष आशा रहती है पर उक्त ख़ाँ देश-प्रेम के कारण उस पद का लोभ छोड़कर बादशाह के साथ नहीं गया। कुछ अदूरदर्शियों तथा अविश्वासियों ने इस पर कीमिया बनाने का दोष लगाया। यहाँ तक कि यह बात बादशाह से कह भी दी गई। वास्तव में बात यह थी कि इसके मस्तिष्क को पारा या गंधक का धुँआ नहीं लगा था और न गंधक या सीसा का गंध उसके नाक तक पहुँचा था पर कभी कभी खिलवाड़ से हाथ की सफाई दिखलाकर कागज की चीर में रुपया डालकर दूसरी ओर दिखलाता और रुपया निकल आता, जिससे सबको बड़ा आश्चर्य होता। यह बात क्रमशः प्रसिद्ध हो गई और यह उसके पकड़े जाने का कारण हुआ। बहादुरशाह दक्खिन से लौटते समय उसको बलात् उज्जैन तक लिवा गया। ईश्वरेच्छा से उसी समय मुर्शिद क़ुली ख़ाँ मिर्जा हादी, जो बंगाल से आकर दक्खिन की दीवानी पर नियुक्त हुआ था पर जिसका मन उसी प्रांत में लगा हुआ था, इस पद से त्याग-पत्र देकर अपने इच्छानुकूल पद पाने का प्रयास करने लगा।

ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ अमीरुल्उमरा ने अत्यंत कृपा से उस देश-प्रेमी के शरीर में नवीन प्राण फूँकते हुए दक्षिण की दीवानी को उक्त ख़ाँ के पिता के नाम कर दिया, जो दुर्ग औरंगाबाद का अध्यक्ष था और ख़ानख़ानाँ के बाधा देने पर भी, जिसके कारण ही उस पर दूसरे की नियुक्ति हो गई थी, इसको पिता की नायबी पर नियुक्त कर दिया, जिससे वह दर्बार से छुट्टी पाकर अपनी जन्मभूमि को लौट गया। फ़र्रुख़सियर के राज्यारंभ में यह दरबार में उपस्थित हुआ। हैदर अली ख़ाँ ख़ुरासानी, जो दक्खिन का दीवान नियत हुआ था और प्रभुत्व में अपना जोड़ नहीं रखता था, आगरे में इससे भेंट होने पर बादशाह के आज्ञानुसार इसको अपने साथ लिवा ले गया। इसके प्रति उसने अयोग्य शंका की थी। इसी समय इसका पिता मर गया। उस प्रांत के अध्यक्ष नवाब निज़ामुल्मुल्क फतेहजंग ने दुर्ग अरक (औरंगाबाद) की अध्यक्षता पर उक्त ख़ाँ को नियत करने के लिये बादशाह को लिखा, जिसकी स्वीकृति आने पर वह काम इसको दे दिया। इसके अनंतर जब अमीरुल्उमरा हुसेन अली ख़ाँ ने बुर्हानपुर को अपनी छावनी बनाया तब अपने बड़े भाई सय्यद अब्दुल्ला ख़ाँ की सम्मति से दक्खिन की दीवानी पर उक्त ख़ाँ को नियत कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने की कृपा दिखलाई तथा उसे दियानत ख़ाँ की पदवी दी।

जब उस उच्चपदस्थ सर्दार ने हिंदुस्तान जाने की इच्छा की तब इसको भी, जो अपने पद से हटाया जा चुका था, बलात् अपने साथ ले गया। फ़र्रुख़सियर के नष्ट होने के बाद इसे ख़िलअत, ख़ालसा की दीवानी तथा चार हज़ारी मंसब दिल-

चाया। दियानत .खाँ लड़कपन से औरंगाबाद में रहता आया था, जिसके बादशाही छावनी के अधिक पास होने के कारण कोई उच्चपदस्थ सर्दार वहाँ नहीं रहता था और इस कारण कि इसका पिता दरबार में रहता था, इसके साथ भी अच्छा सलूक किया जाता था, इसलिये आरंभ ही से यह स्वतंत्रता तथा स्वच्छंदता से दिन व्यतीत करता आया था और इसीसे इसमें नम्रता का व्यवहार और दूसरों की प्रसन्नता का विचार कम रहता था। यहाँ इसे उस सर्दार को, जिसके हाथ में प्रभुत्व था, प्रसन्न रखने को बाध्य होना पड़ा पर वह उसमें सफल न हो सका। राजा रतनचन्द, जो साम्राज्य के दोनों स्तंभों (सैयद-भ्राताओं) का विश्वास-पात्र था, हृदय से इससे बिगड़ गया और इसके काम में उसने दोष निकाला। अंत में उसके कारण ये दोनों सर्दार भी इससे बिगड़ गए। इसी बीच नवाब फतेहजंग निज़ामुल्मुल्क आलम अली .खाँ का कार्य समाप्त कर जब अमीरुल्उमरा के दल का सामना करने की तैयारी करने लगा तब उसने धन बटोरना और सेना एकत्र करना आरंभ किया। इस काम के लिये उसने नगर के धनिकों से बलात् धन लेना चाहा। कुछ भला चाहनेवाले मुसाहबों ने प्रजा को इस प्रकार कष्ट देने से यह कहकर रोका कि जन-साधारण को लाभ पहुँचाने के लिये कुछ विशिष्ट प्रजा को लूटना नीतियुक्त नहीं है और उसके बदले यह प्रस्ताव किया कि दियानत .खाँ की संपत्ति जब्त की जाय जिसके गृह में जन साधारण को बहुत दिनों से शंका है कि बहुत कोष और गड़ा हुआ धन संचित है। समय आ पड़ने पर उसका

बड़ा पुत्र नजरबन्द किया गया और तलाशी के दरवाज़े खोले गए। कुछ पता न चलने पर झूठे शत्रुओं ने खाली कुओं को खोदवाये, जिससे केवल लज्जा की धूल उन सबके सिर पर पड़ी। उसके घर के तथा उसके निजी संबंधियों के सोने चाँदी के गहनों और बर्तनों के सिवा, जो कुल ७० हजार रुपए के मूल्य के थे, कुछ नहीं मिला। केवल चुगलखोरों को बदनामी और लज्जा मिली। उस पर आश्चर्य यह कि जब अमीरुल्-उमरा को यह ज्ञात हुआ तब अपने क्रोध के कारण इस कार्य को उसने फतेहजंग और दियानत ख़ाँ का षड्यंत्र समझा।

उक्त ख़ाँ स्वयं कहता था कि जिस दिन आलम ख़ाँ के मारे जाने का समाचार आया, उस दिन मुझसे भी राय पूछी गई कि अब क्या करना चाहिए। मैंने अपनी सम्मति दी कि जब हाथ पत्थर के नीचे दबा हो तो उसको धीरे से खींच लेना चाहिये। यहाँ स्वयं नवाब का सिर दबा हुआ है अर्थात् उनकी सुख्याति दबी हुई है। अब पहिले दक्खिन की सूबेदारी का आज्ञापत्र निज़ामुल्मुल्क के नाम तुरंत भेजना चाहिए और बदला लेने का विचार अवसर मिलने तक छोड़ना चाहिए। नवाब सय्यद हुसेन अली राजा रतनचन्द की ओर एक बार देखकर क्रोध से हँसा और कहा कि धन मैंने पूरब भेजा है। यहाँ से दक्खिन तक सेना पर सेना की शृंखला रहेगी। केवल मशालची ही बारह हजार रहेंगे। थोड़ी देर के लिये भी मैं कहीं बीच में न ठहरूँगा और रात-दिन में कुछ भी भेद न समझूँगा। उक्त ख़ाँ ने कहा कि नवाब की शक्ति इससे भी बढ़कर है पर ऐसे धावे में कितनी सेना साथ पहुँच सकेगी

तथा घोड़े और सैनिकों में कितनी शक्ति बची रह जायेगी? उसने भौं सिकोड़ कर कहा कि सैनिकों का सर्वोत्तम गुण मरना है। जब सर्दार इतने साहस तथा दृढ़ता से ऐसी बुद्धिहीनता के शब्द कहता है, तब वह काम आशा रहित हो जाता है। ऐसा समझ कर उक्त ख़ाँ ने उत्तर दिया कि जब आपने दृढ़ इच्छा कर ली है तब खुदा पर भरोसा कीजिये।

सय्यदों की शक्ति टूटने पर एतमादुद्दौला (मुहम्मद अमीन ख़ाँ) की कृपा से अपनी पैतृक दीवानी पद पर नियत होकर यह दक्खिन गया। फतेहजंग की नौकरी पाने पर इस पर उस उच्च-पदस्थ सर्दार की बहुत कृपा हुई। जब वह बड़ा अमीर (निज़ामुल्मुल्क) मंत्रित्व पद पर नियत होकर बादशाह के पास चला तब इसको अपनी जागीर के प्रबंध का भार दिया। इस पर आगे से अधिक विश्वास कर इसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। ज़ब्त किया हुआ धन लौटा करके इसको प्रसन्न किया तथा जो कुछ हो चुका था उसके लिये क्षमा तक माँगी। ख़ाँ ने प्रार्थना की कि यह अवसर धन्यवाद देने का है, शिकायत करने का नहीं है। क्योंकि इस घटना से बहुत वर्षों से उस पर धन इकट्ठा कर रखने की जो शंका थी वह मिट गई, नहीं तो खुदा जानता है कि न मालूम किस अत्याचारी से काम पड़ता और वह कहाँ तक अत्याचार करता। इसके अनंतर स्वतंत्र तथा हठी स्वभाव के कारण इसने अज़ुद्दौला एवज़ ख़ाँ के साथ, जो दक्खिन का सहकारी प्रांताध्यक्ष था, व्यवहार नहीं रखा अर्थात् वही लोकोक्ति चरितार्थ हुई कि 'टेढ़े रखो पर गिरे नहीं।'

जब नवाब फतेहजंग हिंदुस्तान से लौटे तब मुबारिज़ ख़ाँ

से युद्ध करना निश्चय हुआ। उक्त ख़ाँ ने जो सच्ची और ठीक बात कहने में कभी रुकनेवाला नहीं था और सांसारिक मक्कारी की बातों से दूर था, एकदम अपने पक्ष पर कपट और झूठ का दोष लगाया तथा दूसरे पक्ष के स्वत्व का समर्थन किया। इस प्रकार के कपट और झूठ के दोषारोपण से इसकी शत्रु के साथ मित्रता पाई गई और वह विशेष कष्ट पानेवाला था पर दंड देने में उदारता और देर करने के स्वभाव के कारण विजय के बाद इसकी केवल जागीर और नौकरी छिन गई और यह बेकार होकर एक मुद्दत तक घर में एकांतवास करता रहा। दूसरी बार आसफ़जाह ने इस पर कृपा और दया करना चाहा कि इसे जागीर और नौकरी पर बहाल कर दें पर अज़ुद्दौला ने पुरानी शत्रुता के कारण इसमें टाँग अड़ाई और इस पर कृपा नहीं करने दिया। यद्यपि इसने इस बेपरवाही और स्वच्छंदता के कारण किसी की चापलूसी नहीं की और न किसी-से अपना दुखड़ा रोया पर बेकारी की चिंता से अंत में माँदा हो गया। सन् ११४१ हि० के रज्जब महीने (फ़रवरी सन् १७२९ ई०) में यह मर गया। यह कठोरता और तीव्र स्वभाव के लिये प्रसिद्ध था और शाही कामों में इसने कभी मित्रों पर भी कृपा नहीं दिखलाई और उदारता का द्वार साधारण मनुष्यों के लिए केवल प्रशंसा पाने को नहीं खोला पर सचाई तथा ईमानदारी के लिये यह अपने समय में एक ही था। अमीरों के लिये सन्मान या सुव्यवहार का ध्यान नहीं रखता था पर निराश्रयों तथा दरिद्रों को गुप्त दान देता था। यह प्रचलित ग्रंथों को कम जानता था पर क़ुरान के शरह आदि और विशेषकर

सूफ़ी आदि की उन पर टीकाएँ बहुत देखने से उन्हें खूब समझता था। निषेध की हुई वस्तुओं से सदा दूर रहा। आडंबर की बातों से यह सदा बचता था और कट्टर शेखों से विशेष सत्संग नहीं रखता था। यह प्रसिद्ध था कि यह बहुत खाता था पर इसका भोजन इतना अधिक नहीं था। मेवे और फल यह बहुत खाता था। शरीर का भारी और बलवान था। गोली और तीर चलाने में यह एक ही था। इसे अहेर, सैर, तीर चलाने और चौगान का बहुत शौक था। नगर से तीन कोस पर मौजा कंधेली में जैनुल्आबदीन ख़ाँ ख़वाफी का एक बाग प्रसिद्ध था। उसे क्रय कर इसने उसमें सुव्यवस्थित बाग लगाया और नारियल के पेड़ जमाए। समय ने उसकी सहायता नहीं की नहीं तो यह उस पर खूब धन खर्च करना चाहता था। इस समय उसमें खूब नारियल होता है।

इसका बड़ा पुत्र मीरक मुहम्मद तकी ख़ाँ छोटे हृदय का आदमी था और मित्रता के व्यवहार में सभी से कोई शिष्टाचार नहीं रखता था। बहुत दिनों तक औरंगाबाद नगर की बयूताती पद पर नियत रहा। पिता की मृत्यु पर नवाब आसफजाह की कृपा से दक्खिन की दीवानी, वज़ारत ख़ाँ की पदवी और दो हज़ार का मंसब पाने से इसकी प्रतिष्ठा बढ़ गई। १६वें वर्ष मुहम्मद शाही में एक रात एक अर्द्ध पागल मंसबदार ने, जो दरिद्र होने से दुर्बल होकर पागल हो गया था, इस पर एक तलवार मारा, जिससे इसकी नाक पर चोट आई परंतु घाव जल्दी अच्छा हो गया और उस दिन से इसके स्वभाव में तीव्रता तथा क्रोध का समावेश हो गया। इसने दुष्ट सैनिकों को

रखा और मन में अनेक प्रकार के कुविचार लाया. जिससे यह शीघ्र नष्ट हो गया।

यह बहुत बुद्धिमान और समझदार था, इस कारण इसको ऐसा अविवेकी नहीं होना चाहिये था पर भाग्य से किसका वस चला! स्वयं सेना की सर्दारी करता था। नवाब निज़ामुद्दौला बहादुर नासिरजंग का सेनापति नियत होकर धारवर और धारासेन को गया। इसने सुरक्षा के मार्ग से पाँव आगे बढ़ाया और स्वातंत्र्य, शक्ति तथा प्राबल्य के साधनों के न होते भी हर दुष्ट आदमी से मिल जाता और उन सब की नीचता को नहीं समझता था। इसी समय रेनापुर (जेवापुर) में इसने उक्त नवाब की नौकरी की, जो हैदराबाद का अधिकारी होना चाहता था। १६ ज़ीहिज्जा सन् ११५१ हि० (१६ मार्च सन् १७३९ ई०) को, जब नादिरशाह ने दिल्ली आकर क़त्ले आम किया था, तब दैव के मारे एक सैनिक ने काल आने से कड़ी बातें कहकर अपनी तलवार खींच ली पर इसके एक दरबारी ने फुर्ती कर उसी को मार डाला। इस पर थोड़े सैनिक, जो उसकी जाति के और संबंधी थे, लड़ने को तैयार हो गए। इनमें से थोड़े लुच्चे इसके ख़ेमे में घुस आये और एक पल में १०० तलवारों ने इसके टुकड़े टुकड़े कर दिए। यह असावधान था और इसे इसको तनिक भी शंका नहीं थी, जिससे हाथ तक न उठाया और मारा गया। इसके दो पोष्य पुत्र भी उसी उपद्रव में लड़कर मारे गए। उसके मित्रों, संबंधियों और नौकरों ने इसकी कुछ भी सहायता नहीं की। मुखियों और सर्दारों ने भी, जो सेना में इकट्ठे थे, सहायता नहीं की। ऐसा ज्ञात होता था

कि वे सभी यह चाहते थे और यह उनके इच्छानुसार ही हुआ था। यह कहा जाता है कि इसकी मृत्यु के समय इसके मित्रों के मन से एक साथ ही इसके संग साथ के आराम का ध्यान निकल गया। इसको (दियानत ख़ाँ मीर अली नक़ी, पिता) संतान बहुत थी। दूसरा पुत्र मृत मीर मुहम्मद मेहदी ख़ाँ था, जो शुद्ध मन का, भला चाहनेवाला, सच्चा और ईश्वर से डरनेवाला था। यह कार्य-कुशल तथा दानी था। जब दक्खिन की दीवानी इसके सगे भाई शहीद वज़ारत ख़ाँ को मिली थी तब इसको नगर की इमारतों की रक्षा सौंपी गई। मुहम्मद शाही जलूस के १५ वें वर्ष में ३७ वर्ष की अवस्था में यह मर गया, जिससे इसके मित्रों को बड़ा दुख हुआ। लिखते समय कोई दूसरा पुत्र मीर मुहम्मद हुसेन ख़ाँ आसफजाह का कृपा-पात्र था और पैतृक दीवानी तथा उस हाकिम के सर्कार की दीवानी पर नियत था। सचाई को, जो इसे रिक्थक्रम में मिली थी, इसने पूरी तरह निबाहा।

दियानत ख़ाँ

इसका नाम क़ासिम बेग था और जहाँगीर के समय एक सर्दार था। यह अपने कौशल तथा अध्यवसाय के कारण बादशाह का कृपा-पात्र हो गया था। एतमादुद्दौला की उन्नति के बाद दियानत ख़ाँ ने बादशाह के सामने एक दिन उसके विषय में कुछ अनुचित बातें कहीं, जिस पर यह ग्वालियर दुर्ग में कैद किए जाने के लिये आसफ़ ख़ाँ अबुल् हसन को सौंपा गया। कुछ समय बाद एतमादुद्दौला के कहने से वह छोड़ दिया गया। ८ वें वर्ष[1] में यह दरख्वास्तों को दुहराने के काम पर नियत किया गया। ११ वें वर्ष में इस काम से हटाया जाकर सुलतान खुर्रम के साथ दक्षिण भेजा गया। उसके बारे में और कुछ नहीं ज्ञात हुआ।

---

१. तुज़ुके जहाँगीरी से ज्ञात होता है कि १० वें वर्ष यह छूटा और इस कार्य पर नियत हुआ।

दिलावर ख़ाँ काकिर

इसका नाम इब्राहीम था। पहिले यह मिर्ज़ा यूसुफ ख़ाँ रिज़वी के साथ साथ व्यापार करता था। सौभाग्य से अखैराज और अभैराज के उपद्रव में जहाँगीर के सामने कठघरा ख़ास और आम में प्रयत्न करने में घायल हो गया[1]। इस कार्य से इसकी उन्नति होती गई और इसने मंसब पाया। जहाँगीर के जुलूस के आरंभ में यह लाहौर की सूबेदारी पर भेजा गया। पानीपत कस्बः तक यह पहुँचा था कि ख़ुसरू के विद्रोह का समाचार आया। अपने परिवार आदि को जमुना नदी के किनारे पर छोड़ कर यह स्वयं बड़ी फुर्ती से लाहौर चला और ख़ुसरू के पहिले वहाँ पहुँच कर दुर्ग के बुर्जों का प्रबंध कर दिया। जब ख़ुसरू उस नगर के पास पहुँचा तब फाटकों को बंद पाया। तब दुर्ग को उसने घेर लिया और सेना बटोरने लगा। बाहर भीतर दोनों ओर लड़ाई भिड़ाई होने लगी। शाही सेना पीछा कर ही रही थी और दुर्ग पर अधिकार होना कठिन हो गया, तब उसने घेरा उठा दिया। इस अच्छे काम और स्वामि-भक्ति के कारण दिलावर ख़ाँ पर बादशाह प्रसन्न हुए। ८ वें वर्ष में यह शाहजहाँ के साथ राणा की चढ़ाई पर नियत हुआ। १३ वें वर्ष

---

१. यह घटना सन् १६०५ ई० में घटित हुई। इसका विवरण तुज़ुके जहाँगीरी में दिया है और किश्तवार का वृत्तांत भी उक्त ग्रंथ से लिया गया है।

१०२७ हि० (सन् १६१८ ई०) में अहमद बेग काबुली के स्थान पर यह कश्मीर का सूबेदार नियत हुआ और शहर कश्मीर (श्री नगर) से साठ कोस की दूरी पर दक्षिण की ओर स्थित किश्तवार प्रांत के लेने में बड़ी बहादुरी दिखलाई।

इसका विवरण यों है कि १४ वें वर्ष में इसने दस सहस्र सवार और पैदल सेना के साथ उस देश को विजय करने का साहस किया। दर्रे तथा घाटियाँ बहुत दुर्गम और घोड़ों के जाने के योग्य नहीं थीं इसलिये सैनिकों के घोड़े कश्मीर लौटा दिए पर आवश्यकता पड़ जाने के विचार से कुछ घोड़ों को साथ रखा। सैनिक पैदल ही पहाड़ पर चढ़ते हुए युद्ध करते धीरे धीरे आगे बढ़े। बहुत से ऊँचे और नीचे स्थानों तथा दुर्गम पहाड़ों को पार करने पर नदी के किनारे युद्ध हुआ। उस प्रांत के शासक अली चक के मारे जाने पर, जो कश्मीर पर अपना स्वत्व दिखलाकर उसकी शरण में रहते हुए युद्ध करने की इच्छा रखता था, भागा और पुल से पार होकर भद्र कोट में, जो नदी के उस ओर था, ठहरा। बहादुरों ने बहुत प्रयत्न किए कि वे भी पुल पार कर लें पर शत्रु के कारण वैसा नहीं कर सके। कुछ दिन बीतने पर राजा ने धोखा देने को बहाने से संधि के लिए प्रस्ताव किया पर दिलावर ख़ाँ ने उस पर ध्यान नहीं दिया और नदी पार करने का प्रबंध करने लगा। अंत में एक दिन इसके बड़े पुत्र जमाल ख़ाँ ने सैनिकों को साथ लेकर उस बढ़ी हुई नदी को पार करके शत्रु से युद्ध आरंभ कर दिया। शत्रु पुल तोड़ कर भाग गए पर दिलावर ख़ाँ ने फिर पुल ठीक कर सेना उतारी और भद्रकोट में पड़ाव डाला। इस

नदी से चिनाब नदी दो तीर दूरी पर है, जो उन शत्रुओं का दृढ़ आड़ है और जिसके किनारे पर एक ऊँचा पहाड़ है, जिसको पार करना बड़ा ही कठिन है। पैदल आने जाने के लिए तीन तह रस्से लिए जाते थे। दो रस्सियों के बीच बीच एक एक हाथ की लकड़ियाँ एक के बाद एक दृढ़ता से बाँध दी जाती थीं और इसका एक सिरा पहाड़ की चोटी पर तथा दूसरा सिरा नदी के इस पार खूब मजबूती से बाँध दिए जाते थे। दूसरे दो रस्से इससे एक गज ऊँचे दोनों ओर दृढ़ता से बाँध दिए जाते थे, जिससे उन लकड़ियों पर पैर रखकर तथा दोनों हाथ से ऊपर के रस्सों को पकड़कर—ऊपर से नीचे या नीचे से ऊपर आते जाते थे और नदी पार करते थे। उस प्रांत के पहाड़ी लोग इसे सीढ़ी (जेबा, झँपा झूला) कहते हैं। उन सब ने इन उन स्थानों पर, जहाँ ऐसी सीढ़ियाँ बाँधी जा सकती थीं, धनुर्धारियों तथा बंदूकचियों को नियत कर सुरक्षित कर रखा था।

दिलावर खाँ ने तख्तों को बाँध कर उन पर से सेना को पार उतारना चाहा पर धारा बहुत प्रबल थी, इससे साठ आदमी डूब मरे। चार महीना दस दिन तक बराबर बहुत से उपाय पार उतरने के लिये किए गए पर कुछ भी सफलता नहीं मिली।

एक रात दिलावर खाँ का पुत्र जमाल खाँ उसी स्थान के एक ज़मींदार के वह मार्ग दिखलाने पर, जिस पर शत्रु का ध्यान नहीं था, सकुशल पार होकर राजा पर जा पहुँचा और विजय का डंका बजवाया। बहुत से तो मारे गए और बचे हुए भाग गए। एक सैनिक ने राजा तक पहुँच कर चाहा कि तलवार से उसे मार डाले परंतु उसके कहने पर कि वह राजा है, वह

पकड़ लिया गया। दिलावर खाँ नदी पार कर उस देश की राजधानी मंदिल में पहुँचा, जो वहाँ से तीन कोस पर है। राजा को साथ लेकर १५ वें वर्ष में यह बादशाह के सामने वारह-मूला पहुँचा, जो कश्मीर का द्वार कहलाता है। इसपर बड़ी कृपा हुई और चार हजारी ३५०० सवार का मंसब मिला तथा एक साल की विजित प्रांत की आय पुरस्कार में इसे मिली।

किश्तवार में खेती से कर लेने की प्रथा नहीं है। घर पीछे छ 'सस्ती' वार्षिक कर लिया जाता था। यह सस्ती कश्मीर के शासकों का सिक्का है और डेढ़ सस्ती एक रुपये के बराबर होता है। बादशाही दफ्तरों के हिसाब में १५ सस्ती अर्थात् १०) रु० का एक शाही मुहर माना जाता था। यहाँ का केशर कश्मीर से अच्छा होता है और एक मनी सेर पर, जो जहाँ-गीरी दो सेर होता है, चार रुपया क्रेताओं से लेते हैं। राजा की मुख्य आय दंड से होती थी, जो हर छोटे अपराध पर लगाया जाता था। प्रायः कुल आय एक लाख रुपये थी, जो एक हजारी मंसबदारों के वेतन के बराबर थी। वहाँ का राजा मर्यादायुक्त था इस कारण आज्ञा हुई कि वह अपने लड़कों को, जो युद्ध-काल में वहाँ के जमींदारों की रक्षा में थे, बुलवा ले, जिससे कैद से छुट्टी पाकर वह आराम से रहने लगे। राजा के अधीनता स्वीकार करने पर उस पर कृपा हुई।

इसके कुछ समय बाद दिलावर खाँ मर गया। इसका बड़ा पुत्र जमाल खाँ शाहजहाँ के समय महाबत खाँ के साथ दौलता-बाद के घेरे पर नियत हुआ। एक दिन सम्मति करते समय आपस में कठोर शब्दों का प्रयोग होने लगा, जिस पर महाबतखाँ

ने कहा कि जो शाही काम में ढिलाई करेगा, वह जूती खायेगा। इसपर जमाल खाँ ने झट तलवार खींच कर उसके सिर पर चला दिया पर मिर्ज़ा जाफ़र नज्मसानी ने, जो उसके पीछे बैठा था, कूद कर उसको बगल से पकड़ लिया। जमाल खाँ के लड़के ने, जो छोटा था, एक जमधर से मिर्ज़ा का काम तमाम कर दिया। खानखानाँ ने फुर्ती कर जमाल खाँ को एक वार से और दूसरी चोट से उसके पुत्र को मार डाला। कहते हैं कि महाबत खाँ बैठा ही रहा पर इतना कहा कि दोनों लड़कों[1] ने अच्छा काम किया। दिलावर खाँ का दूसरा पुत्र जमाल खाँ था, जिसका विवरण अलग दिया गया है।[2]

---

१. जमाल खाँ के लड़के तथा महावत खाँ के लड़के खानज़माँ से मतलब है।

२. इसी भाग का पृष्ठ २६२-३ देखिए।

दिलावर ख़ाँ बहादुर

इसका नाम मुहम्मद नईम था। यह मौलाना कमाल नैशापुरी के पुत्र मीर अब्दुल् रहीम के पुत्र मीर अब्दुल् हकीम के पुत्र दिलावर ख़ाँ अब्दुल अज़ीज़ का तृतीय पुत्र था। कमाल का भाई मौलाना जमाल इनायतुल्ला ख़ाँ का दादा था। ऐसा हुआ कि मौलाना कमाल अपनी जन्मभूमि छोड़ कर लाहौर आ बसा और यहीं सन् १०११हि० (सन् १६०२–३ ई०) में मरा, जिसकी कब्र उस नगर के बाहर हाजी सियाह की सराय में है। आरंभ में अब्दुलअज़ीज़ दाराशिकोह का नौकर था पर जब यह औरंगजेब के बादशाह होने पर उसका नौकर हुआ तब अपना नाम शेख़ अब्दुल् अज़ीज़ प्रकट किया। १७वें वर्ष में दिलावर ख़ाँ की पदवी पाकर और दो हज़ारी मंसब तक पहुँच कर मर गया। पूर्वोक्त इनायतुल्ला ख़ाँ से विवाह द्वारा संबंध हो जाने से पिता की पदवी पाकर यह (मुहम्मद नईम) फर्रुख़सियर के राज्यारंभ में दक्षिण के शासक निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह के साथ उस प्रांत में गया। हुसेन अली ख़ाँ अमीरुल्उमरा ने इसे रायचूर का फौजदार नियत किया। इसके बाद मुबारिज़ ख़ाँ के साथ, जो इसका साढ़ू था, इसने आसफ़जाह के साथ युद्ध करने पर कमर बाँधी। उसके मारे जाने पर यह पकड़ा गया और आसफ़जाह ने मैत्री का विचार कर इसे क्षमा करके काम दिया। इसको पाँच हजारी मंसब मिला और सन् ११३८

हि० (सन् १६२६-२७ ई०) में इसकी मृत्यु हुई। यह सहृदय कवि तथा बुद्धिमान था। इसका उपनाम 'नसरत' था। यह शैर उसी का है, जिसका यह अर्थ है—

"प्रेमपात्री की पलकें बन्द नहीं हैं और उसके मुख पर नक़ाब नहीं पड़ा है। सूर्य के गृह में कैसे कोई सो सकता है?"

इसका पुत्र मुहम्मद दिलावर ख़ाँ मुज़फ्फ़रुद्दौला बहादुर इंतज़ामजंग आसफ़जाह के राज्य में सिरा का फौजदार नियत हुआ। कुछ वर्षों बाद जब उक्त ताल्लुकः मराठों के अधिकार में चला गया तब आसफ़जाह के पास उपस्थित होकर यह दक्खिन प्रांत का बख़्शी नियत हुआ। यह ग्रंथकर्ता से मैत्री रखता था। इसका दूसरा पुत्र दिलदिलावर ख़ाँ सिरा के अंतर्गत बिसवा-पत्तन का फौजदार था, जो बाद को आसफ़जाह के सामने उपस्थित होने पर दक्खिन का मीर आतिश नियत हुआ। यह भी सन् ११६६ हि० (१७५३ ई०) में मर गया। इन दोनों को संतानें थीं।

दिलेर खाँ अब्दुर्रऊफ़ मियानः

यह बहलोल खाँ मियानः का प्रपौत्र था, जिसे जहाँगीर के समय अच्छे कार्य करने के कारण ढाई हज़ारी १००० सवार का मंसब मिला। शाहजहाँ के दूसरे वर्ष जलूसी में जब खान-जहाँ लोदी बलवा कर भागा तब इसने भी निज़ामुल्मुल्क दक्खिनी के यहाँ पहुँच कर उसकी नौकरी कर ली। कुछ दिनों तक यह बादशाही सेना से युद्ध करता रहा पर बाद को आदिल खाँ बीजापुरी की सेवा में चला गया। सातवें वर्ष में दौलताबाद के घेरा में इसने वीरता दिखलाई। इसकी मृत्यु के अनंतर इसका पुत्र अब्दुर्रहीम पिता के स्थान पर नियत हुआ, जिसकी मृत्यु पर उसके पुत्र अब्दुल्करीम को सर्दारी और बहलोल खाँ की पदवी मिली। बीजापुर का सुलतान अल्प वयस्क था, जिससे राज्य का कुल प्रबंध दूसरों के हाथ में था। इसने भी अपने जातिवालों को एकत्र किया और अपनी धाक जमा ली। औरंगजेब के जलूस के ९वें वर्ष में जब मिर्जाराजा जयसिंह बीजापुर विजय करने पर नियत हुए तब उनसे युद्ध करनेवाली सेना का यह भी एक सर्दार था और कई युद्धों में योग भी दिया था। १७वें वर्ष में जब दक्षिण का प्रांताध्यक्ष खानजहाँ बहादुर कोका था और खवास खाँ हब्शी सिकंदर आदिल खाँ का प्रधान था तब यह उसके साथ मिलकर भीमा के किनारे आया। इस ओर से बहादुर खाँ कोकल्ताश ने जाकर भेंट की। खवास खाँ की

पुत्री के साथ कोकलताश के पुत्र नसीरी ख़ाँ का निकाह पक्का हुआ और दोनों पक्ष अपने अपने स्थान पर लौट गए। बहलोल ख़ाँ ने खवास ख़ाँ से क्रुद्ध होकर उसे मार्ग ही में पकड़ना चाहा, पर वह यह बात जानकर रातों रात बीजापुर को चला गया। इसके बाद जब बहलोल ख़ाँ नगर के पास पहुँचा तब वह बड़प्पन की चाल न छोड़कर आगे अगवानी को आया पर इसने उसे कैद कर लिया। इसके अनंतर इसका प्रभाव आरंभ हुआ। दक्खिनियों और अफ़ग़ानों में वैमनस्य होकर मारकाट आरंभ हो गई। दक्खिनियों में बहुतों ने बादशाही और बहुतों ने हैदराबाद के सुलतान के यहाँ नौकरी कर ली। खवास ख़ाँ के कैद होने का समाचार सुनकर औरंगजेब के आज्ञानुसार बहादुर ख़ाँ कोकलताश सेना इकट्ठी कर बीजापुर के पास पहुँचा। इसके और बहलोल ख़ाँ अब्दुल्करीम के बीच में कई युद्ध हुए और होते रहे। २० वें वर्ष में जब कोकल्ताश दरबार लौट गया और दक्षिण का प्रबंध दिलेर ख़ाँ को मिला तब दोनों में एक जाति के होने के कारण आपस में पत्र-व्यवहार हुआ और दोनों ने मिलकर हैदराबाद पर चढ़ाई की। दक्खिनियों के साथ, जो सुलतान हैदराबाद की ओर से आए थे, कई भारी युद्ध हुए। इसी समय बहलोल ख़ाँ बीमार होकर मर गया। इसका पुत्र अब्दुर्रऊफ़ सर्दार हुआ। २९ वें वर्ष में औरंगजेब ने बीजापुर को जाकर घेर लिया तब सिकंदर आदिलशाह ने लाचार होकर नगर सौंप उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अब्दुर्रऊफ़ ने भी बादशाही नौकरी कर छः हजारी छः हजार सवार का मंसब और दिलेर ख़ाँ की पदवी पाई। बहुत दिनों तक ख़ाँ फीरोजजंग के

साथ बादशाही काम किया। ४८ वें वर्ष में इसका मंसब सात हजारी ७००० सवार का हो गया। औरंगज़ेब की मृत्यु पर प्रकट में कामबख़्श का पक्ष ग्रहण कर अपनी फौजदारी सानवर और बंकापुर में, जो बीजापुर प्रांत में एक सर्कार है, धीरे से चला गया। इसकी मृत्यु पर इसका भाई अब्दुल्ग़फ़्फ़ार ख़ाँ उस सरकार की फौजदारी व जागीरदारी पर नियत हुआ और उसके बाद उसका पुत्र अब्दुल्मजीद ख़ाँ नासिरजंग शहीद की सूबेदारी के समय सलूतजंग की पदवी से उस पैतृक ताल्लुक: का जागीरदार नियत हुआ। जब दक्षिण में मराठों का अधिकार हुआ तब उस ताल्लुके के कुछ परगने चौथ रूप में ले लिए गए और थोड़ा ही बच गया। इसका पुत्र अब्दुल्हकीम ख़ाँ इस ग्रंथ के लिखते समय उसी में कालयापन करता था। अब्दुर्रहीम ख़ाँ मीआन: का दूसरा पुत्र अब्दुन्नबी ख़ाँ है, जिसे हैदराबाद प्रांत में कड़प्पा आदि महाल जागीर और फौजदारी में मिले थे। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र अब्दुन्नबी ख़ाँ अंधा उस पर नियत हुआ। इसके बाद इसका भाई अब्दुल्मुहसिन ख़ाँ उर्फ़ मूछामियाँ, जिसे अंत में पैतृक पदवी मिली, उसी पर नियत होकर कई वर्ष काम करता रहा। अब्दुन्नबी ख़ाँ अंधा के पुत्र अब्दुलमजीद ख़ाँ ने उसको कैद कर लिया और स्वयं मालिक बन बैठा। यह मराठों से युद्ध कर मारा गया। इसका पुत्र अब्दुल्हलीम ख़ाँ पिता के स्थान पर नियत हुआ परंतु विजयी मराठों ने आधा भाग चौथ के बदले छीन लिया। लिखते समय सन् ११९३ हि० (१७७९ ई०) में हैदर अली ख़ाँ ने वहाँ जाकर इसको कैद कर लिया और इसके कुल ताल्लुक: और इसकी सम्पत्ति पर अधिकार कर

लिया। बहलोल ख़ाँ बड़े के पुत्र अब्दुल्क़ादिर का पुत्र इखलास खाँ अबुल् मुहम्मद बहलोल ख़ाँ अब्दुल्करीम का चचेरा भाई था। औरंगज़ेब के जलूसी सातवें वर्ष में इसने बादशाही सेना की नौकरी कर ली तथा पाँच हजारी मंसब और इख़लास ख़ाँ की पदवी पाई। ११वें वर्ष में जब दाऊद ख़ाँ कुरेशी ने शिवाजी का पीछा करने का साहस किया तब यह हरावली में नियत हो शत्रु से युद्ध करने पहुँचा और घायल हो भूमि पर गिर पड़ा। मआसिरे-अलमगीरी से ज्ञात होता है कि यह २१वें वर्ष तक जीवित था।[1]



१. मआसिरे-आलमगीरी से ज्ञात होता है कि २२वें वर्ष में यह अवध का फौजदार नियत हुआ था और ३६वें वर्ष में भी इसका उल्लेख है।

दिलेर ख़ाँ दाऊदज़ई

इसका नाम जलाल ख़ाँ था और यह बहादुर ख़ाँ रुहेला का छोटा भाई था। २१ वें वर्ष में बहादुर ख़ाँ के बलख़ और बदख़्शाँ की चढ़ाई में किए हुए अच्छे कामों तथा सफलताओं पर भी जब शाहजहाँ इस कारण उससे असंतुष्ट हो गया कि उसने नज़्र मुहम्मद ख़ाँ का पीछा करने में बहुत ढिलाई की और उज़बेगों के साथ सईद ख़ाँ के सात दिन की लड़ाई में उसकी कुछ भी सहायता नहीं की, तब उसने इसको जागीर में से कन्नौज तथा काल्पी सरकारों को, जो बराबर साल भर उपजाऊ रहते हैं, ले लिया। शाहजहाँ ने इन दोनों सरकारों को बाकी सरकारी हिसाब के बदले में ले लिया जो लगभग ३० लाख रुपये के था और इनकी फौजदारी जलाल ख़ाँ को दी। इसका मंसब एक हजारी १००० सवार का था और इसको दिलेर ख़ाँ की पदवी तथा एक हाथी पुरस्कार मिला था। यह क्रमशः उन्नति करता रहा और ३० वें वर्ष में मुअज़्ज़म ख़ाँ मीर जुमला के साथ दक्षिण में नियत हुआ, कि औरंगज़ेब की अधीनता में रहकर आदिल शाही राज्य को लूटे।

कल्याण दुर्ग के घेरे के समय एक दिन शाहज़ादा ने सेना ठीक कर शत्रु से युद्ध करने के लिए कूच किया। शत्रु-सेना के हरावल में नियुक्त बहलोल ख़ाँ मियानः के लड़कों ने शाही हरावल से युद्ध आरंभ कर दिया। दिलेर ख़ाँ शाही हरावल का सेनानायक था और युद्ध में यद्यपि उसने

तलवार के कई चोट खाए पर जिरह वख्तर पहिरे रहने के कारण वह घायल नहीं हुआ। इसके अनंतर जब दारा के संकेत पर शाहजहाँ ने सेना को बुलवाया तब यह भी दरबार में उपस्थित हुआ और ३१ वें वर्ष में इसने डंका पाया। यह सुलेमान शिकोह के साथ शाहजादा मुहम्मद शुजाअ का सामना करने भेजा गया, जिसने मूर्खतावश अपने पिता के विरुद्ध हो बँगाल से कूचकर बादशाही राज्य के कुछ अंशों पर अधिकार कर लिया था। जब दोनों सेनाएँ बनारस के पास आमने सामने पहुँची तब शुजाअ, जो विषयासक्त असावधान अदूरदर्शी और रणनीति से अनभिज्ञ था, डर कर भागा। बिना युद्ध किए ही वह बच्चों के समान नाव पर बैठ कर पटने की ओर चला गया। सुलेमान शिकोह ने उसका पीछा किया और दिलेर खाँ की इस विजय के उपलक्ष में एक हज़ारी १००० सवार की वृद्धि हुई, जिससे मंसब तीन हज़ारी ३००० सवार का हो गया। इसके बाद जब सुलेमान शिकोह अपने पिता तथा पितामह की आज्ञा से यथाशक्ति शीघ्रता कर पटने से लौटा तब उसे कड़ा में समाचार मिला कि दारा शिकोह परास्त होकर लाहौर चला गया। इससे वह घबड़ा गया और मिर्ज़ाराजा जयसिंह जो उसका अभिभावक और सेना का प्रबंधक था, इससे अलग हो गया। सुलेमान शिकोह ने इस कष्ट में दिलेर खाँ को बुलाकर इससे सम्मति माँगी। इसने इस शर्त पर शाहजहाँपुर तक साथ देने का निश्चय किया, जिस प्रांत को उसके बड़े भाई ने शांत कर रखा था और जो अफगानों का निवास स्थान था, कि वहाँ पहुँचने पर अफ़गानों तथा अन्य सैनिकों को एकत्र करने पर जैसा उचित

समझा जायगा किया जायगा। सुलेमान शिकोह ने इसे स्वीकार कर लिया। जब राजा जयसिंह ने यह वृत्तांत सुना और समझ लिया कि दिलेर ख़ाँ अदूरदर्शिता तथा नासमझी से अपनी हानि-लाभ का विचार न कर उचित कार्य नहीं कर रहा है तब मित्रता और स्नेह के कारण इसको अच्छी सम्मति देकर इसे अनुचित विचार से दूर रखा, जिसमें उसकी तथा उसके जाति-वालों की हानि ही थी। उसने इसको औरंगजेब का साथ देने को सलाह देकर मिला लिया। जब दूसरे दिन सुलेमान शिकोह ने पूर्व निश्चयानुसार इलाहाबाद चलने की तैयारी की तब दिलेर ख़ाँ ने बहाने किए और राजा जयसिंह के साथ रह गया। इसपर बादशाही सेना ने भी सुलेमान शिकोह का साथ छोड़ दिया। दिलेर ख़ाँ मिर्ज़ाराजा से भी तीन चार दिन पहिले औरंग-जेब से सलीमपुर और मथुरा के बीच में जा मिला और एक हजारी १००० सवार की उन्नति होने पर इसका मंसब पाँच हज़ारी ५००० सवार का हो गया। इससे ज्ञात होता है कि शुजाअ के पराजय के अनंतर, जब इसका मंसब तीन हजारी था, इसने एक हजारी मंसब और भी पाया होगा।

दिलेर ख़ाँ शेख़ मीर के साथ मुलतान से दाराशिकोह का पीछा करने के लिए भेजा गया। अजमेर युद्ध में जब दारा-शिकोह ने घाटी में एक ओर से दूसरी ओर तक दीवाल खिंच-वाई और उनके आगे दृढ़ चबूतरे बनवा कर उनपर तोपें रखवाई तब औरंगजेब की सेना उस मोर्चे पर कुछ भी सफलता न प्राप्त कर सकी पर एक गुप्त ओर से सफलता ने दर्शन दिया। दाराशिकोह ने राजा राजरूप के सैनिकों को हटाने के लिये कुछ

सेना कोकिला पहाड़ी की ओर भेजी। इस सेना ने मोर्चे के बाहर निकल कर शत्रु से युद्ध ठाना, जिसपर दिलेर ख़ाँ ने सवार हो कर सेना तथा तोपखाना लेकर दाहिनी ओर से धावा किया। शेखमीर बाईं ओर से धावा कर उससे जा मिला और दोनों ने शाहनवाज़ ख़ाँ के मोर्चे पर धावा कर दिया। खूब तलवारें चलीं। शेखमीर मारा गया। दिलेर ख़ाँ ने बहुत प्रयत्न किए और गोली लगने से इसका हाथ घायल हो गया। इसी बीच और सेना आगई, जिससे साहस छोड़कर दारा भागा। इसके अनंतर दिलेर ख़ाँ मुअज्ज़म ख़ाँ मीर जुमला के सहायतार्थ बंगाल में शुजाअ को निकाल बाहर करने के लिए नियत हुआ। इस युद्ध में, जो वीरता का परीक्षास्थल था, दिलेर ख़ाँ ने ऐसे कार्य दिखलाए कि *लोग रुस्तम तथा अस्फंदियार* के नाम भूल गए।

दूसरे वर्ष के शाबान में (सन् १६५९ ई० के अप्रैल में) मुअज्ज़म ख़ाँ अपनी सेना महमूदाबाद से नदी के किनारे लाया कि उस महानदी को पार करे, जो वहाँ से दो कोस पर थी। पर यहाँ उसे ज्ञात हुआ कि यहाँ से नीचे बागला घाट पर अच्छा उतार है। शत्रु ने उस पार तोपखाने लगा रखे थे और अब वे गोले भी बरसाने लगे। पहिले दिलेर ख़ाँ अन्य सर्दारों के साथ हाथी पर सवार हो नदी में घुसा पर वहाँ भी गोले आने लगे। अतः कुछ मारे गए और कुछ घायल हुए। कुछ प्राणों के लोभ से भाग भी आए। उतार के दोनों ओर पानी गहरा था, इसलिये दोनों ओर बल्ले गाड़े गए थे पर सेना के उतरने के कारण पानी में बहुत हलचल हुआ, जिससे बलुई तह फैल

गई और कितने मनुष्य गहरे पानी में चले गए। वल्ले भी अपने स्थान पर नहीं रह गए, जिससे कितने पैदल तथा सवार डूब गए। इन्हीं में दिलेर ख़ाँ का एक लड़का फतह ख़ाँ भी था। ख़ाँ ने पार उतर कर शत्रु को मार भगाया और तोपों पर अधिकार कर लिया। शुजाअ के निकाल दिए जाने पर आसाम की चढ़ाई में दिलेर ख़ाँ ने मुअज़्ज़म ख़ाँ के हरावल में रह कर अयोग्य आसामियों को दंड देने में बहुत बहादुरी दिखलाई। विजय में वह बराबर साथ रहा। उस प्रांत की प्रसिद्ध नदी ब्रह्मपुत्र के पार करने पर शामलगढ़ पहुँचे। यह दृढ़ और बहुत ऊँचा दुर्ग है, जिसको घेर लेना उच्च विचार वालों की शक्ति के भी बाहर था। उसके निवासी दुःखरूपी पत्थरों के फेंके जाने तथा आकाश के तोपों से सुरक्षित थे। दुर्ग के दोनों ओर चौड़ी तथा ऊँची दीवालें हैं। दक्षिण की ओर यह चार कोस तक ालकर एक पहाड़ पर समाप्त होती है, जो आकाशगामी ऊँचा ़। उत्तर की ओर दीवाल तीन कोस जाकर उक्त प्रबल वेग ाली नदी तक पहुँचती है। दोनों दीवालों के भीतरी ओर बुर्ज आदि बने हुए हैं और बाहरी ओर गहरी खाई है। सर्वत्र तोप बंदूकें लगी हुई थीं। इस भारी घेरे में तीन लाख आदमी युद्धार्थ तैयार थे। कुल दुर्ग को घेर लेना असंभव था, इस लिये दिलेर ख़ाँ ने सेनापति की आज्ञा से सबसे बड़े बुर्ज के सामने मोर्चे बाँधकर तोपें लगवाईं और बाहर भीतर युद्ध होने लगा। जो गोला दीवाल तक पहुँचता था, वह उस दुर्ग की दृढ़ता के कारण केवल कुछ धूल उड़ाने के सिवा दीवाल के टूटने या बुर्ज के गिरने का कोई चिह्न न छोड़ता था। यह देश भी पहाड़ी

तथा भयानक था, क्योंकि प्राचीन काल में भी जो हिंदुस्तानी सेनायें इसे विजय करने आईं वे इस जाति के धोखे में पड़कर नष्ट-भ्रष्ट हो गईं तथा उनमें से एक भी इस भँवर से बचकर न निकल सकी। सेनापति ने इसपर भी एक दीवाल पर धावा करने की आज्ञा दी और इस कार्य के लिये दिलेर ख़ाँ चुनी सेना के साथ नियत हुआ।

दैवयोग से उस जाति का एक आदमी बहुत दिनों से शाही राज्य में रहता था और पड़ाव में एक अहदी था। उसने धूर्तता से स्वामिभक्ति का बहाना कर कहा कि मैं यहाँ का सब हाल जानता हूँ। यदि हमारे मार्ग-प्रदर्शन पर चला जाय तो मैं ऐसी जगह पहुँचा दूँ जहाँ से धावा करना सुगम हो जायगा। उसी समय उसने यह समाचार दुर्ग-वासियों को भेज दिया कि वे अमुक स्थल पर एकत्र हों, जो सबसे अधिक दुर्जय था। रात्रि में उस दुष्ट के दिखलाए मार्ग से दिलेर ख़ाँ रवाना हुआ। सवेरे वह एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ की खाई बहुत गहरी तथा दुर्गम थी और बहुत से शत्रु एकत्र थे। सहस्रों बन्दूकों से गोली बरसने लगी और बारूद के हुक्के फेंके जाने लगे। दिलेर ख़ाँ ने वीरता-पूर्ण साहस से लौटने का विचार छोड़ अपना हाथी खाई में हँकवा दिया और उसके सैनिक यह देखकर अपने सेनाध्यक्ष का अनुगमन करने लगे। घोर युद्ध हुआ, बहुत से मुसलमान मारे गए और बहुत से घायल हुए। दिलेर ख़ाँ को पाँच गोलियाँ लगीं पर कवच के कारण उसे चोट नहीं पहुँची। बहुत सी गोलियाँ हाथी तथा हौदे में लगीं। वीर ख़ाँ और कुछ दूसरे सैनिक दीवाल तक

पहुँच गए और उस पर चढ़कर शत्रु से लड़ने लगे। इसके अनंतर उसके आदमी फाटक से भीतर पहुँच गए और विजय का झंडा फहराया। काफिर लोग परास्त होकर भागे।

मीर जुमला के मरने पर ख़ाँ दरबार आया। १७वें वर्ष में यह मिर्ज़ाराजा जयसिंह के साथ शिवाजी भोसला को नष्ट करने के लिये भेजा गया, जिसने दक्षिण में अपना प्रभुत्व जमाकर डाकूपन से उपद्रव मचा रखा था। जब ८वें वर्ष में राजा ने शिवाजी के दुर्गों को लेने का निश्चय किया और पूना से पुरंधर तथा रूरमाल (रुद्रमाल) दुर्गों को लेने चला तब दिलेर ख़ाँ, जो हरावल में था, सानवर दर्रा पार कर उन स्थानों के पास ठहरना चाहता था कि शत्रु की सेना आ पहुँची और युद्ध होने लगा। शत्रु शाही सेना के वीरतापूर्ण आक्रमणों को न सँभाल सके और उस पहाड़ पर भाग गए, जिस पर दोनों दुर्ग थे। दिलेर ख़ाँ भी लड़ता हुआ पहाड़ तक आया और बहुतों को मारते हुए पहाड़ को नीचे की बस्ती माची को आग लगाकर फूँक दिया तथा दुर्ग को घेरने का प्रबंध किया।

दोनों दुर्ग से गोले गोलियाँ बरसने लगीं पर ख़ाँ लौटा नहीं और साहस के साथ दुर्ग पुरंधर के पास पहुँचकर फुर्ती से तोपखाना तथा मोर्चा लगवाया। जब इन दुर्गों को घेरे हुए कुछ समय बीत गया और रुद्रमाल का एक बुर्ज गोलों से टूट कर गिर गया तब दिलेर ख़ाँ ने अपने सैनिकों को उत्साह दिला कर उस बुर्ज पर अधिकार कर लिया। दुर्गवालों ने रक्षा चाही और शिवाजी ने भी यह देखकर कि घेरनेवाले शीघ्र पुरंधर ले लेंगे, जिसमें उसके बहुत से संबंधी तथा अफसर हैं, राजा से

परिचय कर भेंट की और कर रूप में इस दुर्ग को अन्य दुर्गों के साथ दे दिया। दिलेर खाँ दुर्ग के नीचे उपस्थित था, इसलिये राजा ने शिवाजी को उसके पास भेज दिया, जिसने भेंट होने पर सुनहले साज सहित दो सौ घोड़े और अठारह थान रेशमी कपड़ा उपहार में दिया। इस कार्य के निपट जाने पर दिलेर खाँ ने राजा के हरावल में रहकर बीजापुर राज्य में खूब लूट मचाया और इस प्रकार आदिल शाह को दंड दिया। वह कार्य समाप्त होने पर यह तथा अन्यान्य सर्दारगण दर्बार बुला लिए गए क्योंकि उसी समय शाह अब्बास द्वितीय भारतीय सीमा पर सेना भेजने का विचार कर रहा था। खाँ शीघ्रता से लौट रहा था और नर्मदा पार कर चुका था कि दैवयोग से फारस का शाह मर गया और यह उपद्रव शांत हो गया। दिलेर खाँ आज्ञा पाने पर कुछ अफसरों के साथ चाँदा और देवगढ़ गया। चाँदा के जमींदार मांजी मल्हार ने नम्रतापूर्वक उपस्थित होकर एक करोड़ नगद तथा सामान दंडस्वरूप देने की प्रतिज्ञा की और पाँच लाख दिलेर खाँ को भेंट किया। उसने कर रूप में दो लाख रुपये प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया और मानिक दुर्ग को, जो उस प्रांत का एक दृढ़ गढ़ है, तोड़ने का वचन दिया। दो महीने में जब सतहत्तर लाख रुपये मिल गए तथा दो महीने में आठ लाख और आ गया तथा तीन वर्ष में बीस लाख रुपये कुल बाकी देने का प्रण किया तब उस जमींदार को, जो बीमार तथा दुर्बल था और जिसका राज्य अस्त व्यस्त हो रहा था, अपने छोटे पुत्र तथा उत्तराधिकारी रामसिंह के साथ जाने की छुट्टी मिली।

देवगढ़ के जमींदार कौकनसिंह के यहाँ भी पंदरह लाख रुपए बाकी निकले पर उसके अधीनता स्वीकार करने पर तीन लाख दंड लगाया गया और एक लाख वार्षिक कर निश्चय हुआ। इसी समय दिलेर ख़ाँ को आज्ञा मिली कि बीजापुर राज्य को पुनः लूटने का निश्चय हुआ है, इसलिये वह वहाँ से लौटकर औरंगाबाद जाय और शाहज़ादा मुहम्मद मुअज्ज़म की आज्ञा में वहाँ ठहरे कि जब संकेत हो तभी वह इस कार्य के लिये सन्नद्ध हो जाय। दक्षिण के इसके कार्य छोटे बड़े सबके मुख पर थे। बीजापुर की सेना से भीमरा के उस पार ख़ान-जहाँ कोकलताश का जो युद्ध हुआ था उसके हरावल में स्थित दिलेर ख़ाँ ने जो बहादुरी दिखलाई, उसकी शत्रु-मित्र दोनों ने प्रशंसा की थी।

कहते हैं कि उस समय जब युद्ध हो रहा था, तब कई कोस तक हाथी के सूँड़ और मनुष्य के सिर वीरों के बल्ले और गेंद हो रहे थे। शैर का अर्थ—हाथी के सूँड़ और लड़ाकों के सिर से कुल मैदान चौगान और गेंदों से भरा था।

इसके अनंतर जब बादशाही सेना परास्त हुई तब निरुपाय हो साहस और बुद्धि ठीक रखकर धीरे-धीरे लौटे पर जिस दूरी को चार पाँच दिन में हाथी घोड़ों पर सवार होकर बीजापुरियों से युद्ध करने के लिये तै किया था, उसे तीन सप्ताह में 'क़हक़री' की चाल से पूरा किया। जब बगलाना के अंतर्गत साल्हेर दुर्ग शत्रु के हाथ में पड़ गया तब यह वहाँ गया और उसके लेने में प्रयत्न किया पर कुछ फल नहीं निकला। उस युद्ध में ऋतु की कठिनाई से बहुत से मनुष्य मर

गए। दर्बार से आज्ञा मिलने पर यह अपनी इच्छा पूरी न कर सका और १८वें वर्ष में दरबार में उपस्थित हुआ। यहाँ आने पर यह आबिद खाँ के स्थान पर मुलतान का सूबेदार हुआ। १९वें वर्ष में जब उस प्रांत पर मुहम्मद आज़मशाह नियत हुआ तब दरबार में उपस्थित होने पर दिलेर खाँ दक्षिण की चढ़ाई पर भेजा गया। २०वें वर्ष में जब दक्षिण का प्रांताध्यक्ष खानजहाँ बहादुर पदच्युत किया गया तब नये सूबेदार के नियत होने तक वहाँ का प्रबंध दिलेर खाँ को सौंपा गया। २१वें वर्ष में हैदराबाद की सेना से घोर युद्ध हुआ। एक सेवक जो हाथी पर इसके पीछे बैठा हुआ था, बान से घायल होकर मर गया। उसकी अग्नि दिलेर खाँ के कपड़ों में गिरी, जो मशक के पानी से बुझा दी गई। दोनों ओर के बहुत से आदमी मारे गए। २३वें वर्ष में दिलेर खाँ ने बड़े परिश्रम से दुर्ग मंगल सर्फ शिवाजी से ले लिया। २६वें वर्ष में जब औरंगज़ेब औरंगाबाद आया तब इसको दूसरे सर्दारों के साथ बीजापुर विजय करने पर नियत किया पर यह मुहम्मद आज़मशाह के पहुँचने तक दरबार ही में उपस्थित रहा। इसी समय यह अधिक बीमार होकर २७वें वर्ष में सन् १०९४ हि० (सन् १६८३ ई०) में मर गया।

यद्यपि यह प्रसिद्ध है कि औरंगजेब ने स्वतंत्रता तथा विद्रोह का कुछ चिह्न इसमें देखकर इसे विष दिला दिया, पर जाँच करने पर यह बात ठीक नहीं उतरी। कुछ लोग कहते हैं कि इसके भतीजे ने अफीम के बदले में दूसरी गोली रखकर इसका काम पूरा किया था। औरंगजेब इसके साहस तथा

वीरता को इसकी रणकुशलता से अधिक समझता था। कहते हैं जब वह शाह आलम के साथ दक्षिण में था तब शाहज़ादा ने चाहा था कि इसको मिलाकर विद्रोह करे पर दिलेर खाँ ने इसे स्वीकार नहीं किया, तब इससे दोनों पक्ष में वैमनस्य बढ़ा। दिलेर खाँ बादशाह के पास शीघ्रतापूर्वक कूच करता हुआ चला और शाहज़ादा ने उसका पीछा किया। दिलेर खाँ के प्रार्थना-पत्र को बादशाह ने देखा जिसका आशय था कि शाहज़ादा के विचार ठीक नहीं हैं और इसीसे उसका मैं साथ छोड़कर दर्बार में उपस्थित हुआ हूँ। इसीके साथ शाहज़ादा का पत्र भी आ पहुँचा कि यह अफ़ग़ान विद्रोही है तथा उपद्रव मचाना चाहता है, इसलिये सेना सहित मैंने इसका पीछा किया है। बादशाह इन प्रार्थनापत्रों को पाकर घबड़ाया और दो चार टट्टी गया। हिम्मत खाँ जन्म भर सेवा में रहने के कारण बादशाह का मुँह लगा हो रहा था, अतः उसने व्यंग्यपूर्वक बादशाह से कहा कि यह सब कुछ नहीं है, हजरत के घबड़ाने की क्या आवश्यकता है ? बादशाह ने क्रोधित होकर कहा कि मुझको शाहआलम की चिंता नहीं है, पर कठिनाई यह है कि वे दोनों कहीं मिले न हों। यदि दिलेर खाँ के सेनापतित्व में सेना हो तो उसका सामना करने के लिये सिवाय हमारे कोई दूसरा समर्थ नहीं है। इसलिये जब मुझको उससे युद्ध करना पड़ेगा तब वह युद्ध दो सिर का होगा।

खाँ बड़ा बलवान और भयानक शरीरवाला था। उसकी शक्ति की कई कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। अपनी जातिवालों पर उसका बहुत बड़ा प्रभाव था और वह सर्वदा विजयी रहता

था। समय के सुयोग तथा अपने ग्रहों के सुसंस्थान से आरंभ अवस्था से अंत तक यह सौभाग्य में वढ़ता गया। इसकी कभी मानहानि या अनादर नहीं हुआ। इसके पुत्र कमालुद्दीन और फतह मामूर थे। द्वितीय बीजापुर युद्ध में खाई में काम आया।

दिलेर खाँ बारहा

यह जहाँगीर के समय का एक अफसर था और बड़ौदा का फौजदार था। १८वें वर्ष में जब पिता-पुत्र में युद्ध हुआ और शाहजहाँ ने अब्दुल्ला खाँ को गुजरात का शासक नियत किया तथा उसका खोजा अहमदाबाद नगर में पहुँचा तब सैफ खाँ उपनाम सफी खाँ ने, जिसे उस नगर के शासन में कुछ अधिकार था, साहस दिखला कर खोजे को निकाल दिया और नगर को अपने अधिकार में ले लिया तथा दिलेर खाँ को बादशाह का पक्ष ग्रहण करने को बाध्य किया। जहाँगीर की मृत्यु पर जब शाहजहाँ ने जुनेर से कूचकर नर्मदा नदी पार किया तब यह उस प्रांत के कुल अधीनस्थ अफसरों से पहिले आकर सेवा में उपस्थित हुआ। यह बादशाह के साथ राजधानी आया और जलूस के पहिले वर्ष में इसने चार हजारी २५०० सवार का मंसब, खिलअत, जड़ाऊ खंजर, डंका, निशान तथा हाथी पाया। इसे अपने तालुका पर जाने की आज्ञा हुई। ३रे वर्ष में जब बादशाह दक्षिण आये तब यह गुजरात से दर्बार आया और इसके मंसब में ५०० सवारों की वृद्धि हुई। यह ख्वाजा अबुल् हसन तुरबती के साथ संगमनेर विजय करने भेजा गया। ४थे वर्ष में आज़म खाँ की सेना में नियुक्त हुआ, जो परेंदा के पास थी। इसके बाद इसे अपने पुराने तालुके को जाने के लिये छुट्टी मिली। ६ठे वर्ष सन् १०४२

हि० (सन् १६३२-३३ ई०) में यह मर गया। इसका लड़का सैयद हसन दरबार आया और उसको योग्य मंसब मिला तथा उस पर कृपाएँ हुईं। ३०वें वर्ष तक उसका मंसब १५०० सवारों का था। दूसरे पुत्र सय्यद खलील को पाँच सदी २०० सवार का मंसब मिला। दिलेर खाँ ही ने सफेद हाथी भेजा था, जो दूसरे वर्ष में शाही हथसाल में रखा गया। ख्वाजा निज़ाम नामक सौदागर विश्वास योग्य और भारी व्यापारी था। इसके लिए पंद्रह सोलह वर्ष का एक हाथी लाए, जिसका दुर्बल तथा कम अवस्था का होने से रंग नहीं खुला था। जब वह व्यापार के लिये बाहर जाने लगा तब इस हाथी को खाँ की जागीर में छोड़ गया क्योंकि दोनों में मित्र भाव था। बारह वर्ष बाद जब वह हाथी मस्त हुआ तब उसका रंग श्वेत हो गया, जिसमें कुछ लाली भी थी। खाँ ने उसे बादशाह के पास भेज दिया, जिसने उसे पसंद कर उसका गजपति नाम रखा। तालिबकलीम[1] ने यह रुबाई उस पर बनाई :—"इस श्वेत हाथी को कोई हानि न पहुँचे। जो इसे देखता है, वह इस पर मोहित हो जाता है। जब संसार के स्वामी इस पर सवार होते हैं तब कहो कि श्वेत उषा-काल से सूर्य निकल रहा है।"

---

१. अबू तालिब कलीम ईरान से भारत आया था। यह तालिब आमिली से भिन्न है, जो जहाँगीर का राजकवि था। अबू तालिब को शाहजहाँ ने मलिकुश्शोअरा की पदवी दी। इसने शाहजहाँ की बनवाई इमारतों आदि पर मसनवी लिखी है और कसीदे आदि। सन् १६४१ ई० में कश्मीर में यह मरा।

दिलेर खाँ की मृत्यु पर सैयद हसन ने दरबार आकर योग्य मंसब पाया। २८वें वर्ष में यह गुजरात अहमदाबाद में गोडरा सरकार का फौजदार तथा जागीरदार नियत हुआ। ३०वें वर्ष में डेढ़ हजारी १५०० सवार का इसका मंसब हो गया। ३१वें वर्ष के अंत में यह मुराद बख्श के साथ गया, जब वह औरंगजेब के कहने से अहमदाबाद से रवानः हुआ। मुराद बख्श के कैद होने पर सय्यद हसन को खाँ की पदवी मिली और वह गुजरात भेजा गया। दूसरे पुत्र खलील को पाँच सदी २०० सवार का मंसब मिला था।

दीनदार खाँ बुखारी

इसका नाम सय्यद भोदः[1] था। यह मुर्तजा खाँ बुखारी का नातेदार था। १८वें वर्ष जहाँगीरी में यह दिल्ली का शासक नियत हुआ। इसके अनंतर जब महावत खाँ विद्रोही होकर दरबार शाही से भागा तब उस सेना में, जो उसका पीछा करने पर नियत हुई थी, यह भी नियुक्त हुआ। यह सेना अजमेर पहुँच कर वहीं ठहरी। उसी समय जहाँगीर स्वर्ग सिधारा और शाहजहाँ की सेना उस नगर में आ पहुँची। यह सेवा में उपस्थित हुआ। प्रथम वर्ष जलूस में इसने दो हजारी १२०० सवार का मंसब, दीनदार खाँ की पदवी, खिलअत, जड़ाऊ खंजर, झंडा और घोड़ा पाया तथा मध्य दोआब का फौजदार नियत हुआ। ८वें वर्ष में जब बादशाह लाहौर से राजधानी आये तब इस्लाम खाँ मध्य दोआब के विद्रोहियों को दंड देने के लिये भेजा गया क्योंकि यहाँ उपद्रव आरंभ हो गया था। आज्ञानुसार दीनदार खाँ भी साथ गया। इसके अनंतर उसी वर्ष में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ नियत हुआ, जो सेना सहित जुझारसिंह बुंदेला से युद्ध करने भेजा गया था। कुछ दिन बाद यह सन् १०४५ हि० (सन् १६३५-३६ ई०) में मर गया।

---

१. इसे कई प्रकार से पढ़ सकते हैं, जैसे भोदः, भौदः, वहौदः आदि पर क्या ठीक है नहीं कहा जा सकता। एक अक्षर 'दाल' हटाने से वहवः होता है, जैसा तुजुक तथा मआसिर से ज्ञात होता है।

दौलत ख़ाँ मई

इसका नाम ख़वास ख़ाँ था। मई भट्टी जाति की एक शाखा है, जो पंजाब प्रांत में जमींदारी तथा डाकूपन से कालयापन करती थी। यह शेख फ़रीद मुर्तज़ा ख़ाँ का 'रूमाल-बरदार' नौकर था। यौवन के कारण इसके मुखपर बहुत लावण्य था, इसलिये जब शेख के साथ यह जहाँगीर के दरबार में जाता तो वह इसपर बहुत कृपा करता था। शेख की मृत्यु के उपरांत यह शाही नौकरी में योग्य मंसब पर नियुक्त हुआ। उसकी कुंडली अच्छी थी, इसलिये इसे बहुत जल्दी ख़वास ख़ाँ की पदवी मिली और जिलौ के मंसबदारों का दारोगा नियत हुआ। ये सभी ख़ानाज़ाद तथा विश्वस्त होते थे और यह कार्य किसी अविश्वसनीय को नहीं मिलता था। जब शाहजहाँ का राज्य हुआ तब जलूस के पहिले वर्ष में इसे ढाई हजारी १५०० सवार का मंसब मिला। युद्ध कार्य और वीरता में यह कम न था, इससे धौलपुर के युद्ध में ख़ानजहाँ लोदी के साथ बादशाही पक्ष के सर्दारों में सबके आगे था, तथा बड़ी वीरता और शौर्य दिखलाकर घायल हुआ। इसका उत्साह, वीरता आदि देखकर शाहजहाँ का उस पर विश्वास बढ़ा। ६ठे वर्ष में इसे तीन हजारी २०००

सवार का मंसब तथा दौलत ख़ाँ की पदवी मिली। उसी वर्ष शाहजादा शुजाअ के साथ दुर्ग परिंद: के घेरे पर नियत हुआ। जब यह बुर्हानपुर के आगे बढ़ा, तब महाबत ख़ाँ सिपहसालार की राय से ३००० सवार सहित अहमद नगर की ओर यह भेजा गया कि साहू भोसले को दंड दे और उसके देश चामर-कुंडा को लूटे।

८वें वर्ष में मुहर्रम सन् १०४५ हि० (सन् १६३५ ई०) में यह युसुफ़ मुहम्मद ख़ाँ ताशकंदी के स्थान पर ठट्टा का सूबेदार नियत हुआ। ९वें वर्ष में इसने जाली बायसनकर को कैद कर बादशाह के पास भेजा। यह एक साधारण मनुष्य था, जो झूठ ही अपने को बायसनकर बतला रहा था, क्योंकि वह युद्ध में शहरयार का सेनापति था और भागने पर तेलिंगाना के अंतर्गत कौलास दुर्ग पहुँच कर मर गया था। यह पहिले बल्ख़ गया, जहाँ का शासक नज़्र मुहम्मद ख़ाँ उसे संबंधी बनाना चाहता था, पर जब उसका कथन ठीक नहीं उतरा तब कुछ नहीं हो सका। यहाँ से वह ईरान गया। शाह सफ़ी ने उसे अपने सामने नहीं बुलाया था पर उस पर कुछ कृपा की थी। इसके बाद बग़दाद और रूम में घूमता फिरता रहा। अंत में बहुत दिनों के बाद मृत्यु उसे ठट्टा खींच लाई, जहाँ दौलत ख़ाँ ने उसे कैद कर दरबार भेज दिया। यहाँ वह मारा गया। दौलत ख़ाँ बहुत दिनों तक इस स्थान पर शासन करता रहा। २०वें वर्ष में इसका मंसब चार हजारी ४००० सवार का हो गया और सईद ख़ाँ बहादुर के स्थान पर कंधार में नियत हुआ। उसी वर्ष के अंत में पाँच हजारी ज़ात और

सवार पाकर सम्मानित हुआ। एकाएक अभाग्य ने पहुँच कर उससे शाही कृपा छीन ली।

२३वें वर्ष के ज़ीउल् हिज्जा (दिसं० सन् १६४८ ई०) में ईरान के शाह अब्बास द्वितीय ने जाड़े में, जब बर्फ के मारे भारत से वहाँ तक जाने का मार्ग बंद हो जाता है, कंधार घेरने का साहस किया। दुर्गाध्यक्ष ने बहुत कुछ आय-व्यय तथा रक्षा आदि का प्रबंध किया था पर घबड़ाहट के कारण क़ुलीज खाँ के बनवाए बुर्जों के दृढ़ न करने से उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। क़ुलीज खाँ ने अपने शासन के समय दूरदर्शिता से दुर्ग के रक्षार्थ चेहलज़ीने पहाड़ के ऊपर, जहाँ से गोले, तीर आदि दौलताबाद और मांडू[1] के दुर्गों तक पहुँचते थे, कई बुर्ज बनवाए थे। क़िज़िलबाश बंदूकचियों ने उन बुर्जों पर अधिकार कर वहाँ से गोले-गोलियाँ चलाना आरंभ किया। एक दिन शाह ने स्वयं सवार होकर आक्रमण का प्रबंध किया। तीन प्रहर खूब युद्ध हुआ पर कुछ सफलता नहीं होने से लौट गया। कुछ कायरों ने द्रोह से स्वामिभक्ति छोड़ कर निर्लज्जता से कहा कि बर्फ के जम जाने के कारण सहायता जल्दी पहुँचने की कोई आशा नहीं है और क़िज़िलबाशों के युद्ध से प्रकट होता है कि दुर्ग जल्दी टूट जायगा तब इसके अनंतर न उनके प्राण बचेंगे और न लड़कों को कैद से छुटकारा मिलेगा। दौलत खाँ,

---

1. शाहजहाँ ने कंधार दुर्ग को मिट्टी की दीवाल से घेर कर दृढ़ किया था और उसके पास छोटे-छोटे दुर्ग भी थे, जिनमें दो का इस प्रकार नामकरण किया गया होगा।

जो इस आग को तलवार के पानी से नहीं वुझा सका, अयोग्यता तथा कायरता से इस शैर को भूल गया कि—

'जिस जगह पर घाव करना चाहिये।
गर रखे मरहम तो वह वेसूद है॥'

और उन्हें उपदेश देने तथा उत्साह दिलाने लगा पर इससे कुछ लाभ नहीं हुआ। शादी खाँ उज़्वेग ने स्वामिद्रोह करके पहिले ही शाह से वातचीत आरंभ कर दी। जब इसी बीच दुर्ग बुस्त को पुरदिल खाँ से लेकर उसको अप्रतिष्ठा के साथ क़ैद किया तब दौलत खाँ, जिसका साहस पहले ही से छूट रहा था, कंधार के दीवान अब्दुल्लतीफ़ को शरण-पत्र (अमान नामा) जो इसकी अप्रतिष्ठा का मुहर था, लाने को ईरान के सेनापति रुस्तम खाँ के भाई अली क़ुली खाँ के साथ भेजा, जो शाह की ओर से इस आशय का पत्र लाया था कि आपस में युद्ध आदि न हो, जिससे पराजय या अप्रतिष्ठा अपनी या दूसरों की भी न हो। दौलत खाँ ने स्वयं दिखलाने को पहाड़ी दुर्ग पर आदमी भेजा पर जब उस कार्य में उसका मन नहीं था तब उससे कुछ लाभ नहीं हुआ।

यद्यपि लोग कहते हैं कि यदि वह कादर ईश्वरी मार्ग-प्रदर्शन और अपनी नैतिकता से कुछ दिन दृढ़ रहता तो क्या उसको और उसके साथी को सहायता न पहुँचती? पर अच्छे न्यायप्रिय विचारक उसका तीन महीने तक दृढ़ता से डटे रहना, जब शाहज़ादा औरंगज़ेब अल्लामी फहामी सादुल्ला खाँ के साथ १२ जमादिउल् अव्वल को दुर्ग के नीचे पहुँचा था, असंभव बतलाते हैं। तब भी जिन्हें मृत्यु से प्रतिष्ठा का

ध्यान अधिक रहता है, क्योंकि पुरुष पौरुष सिर में रखते हैं और उसकी रक्षा में प्राण और धन त्याग देते हैं, वे ऐसा न करते। इसने सदा के लिये स्वामिद्रोह और मानहानि, जो धब्बा प्रलय तक नहीं छूटता, अपने लिये पसंद किया। ९ सफ़र सन् १०५९ हि० (१२ फरवरी १६४९ ई०) को सामान और साथियों सहित यह दुर्ग से निकल कर बाहर आया और अली कुली खाँ से कहा कि शाह के सामने न आना हो तो अति उत्तम है और यदि ऐसा न हो सके तो छुट्टी में देरी न की जाय। अली कुली खाँ दोनों मतलब साधने को गंज अली खाँ के बाग में (गंज बाग़) शाह के सामने उसे लिवा गया और उसी समय इसे हिंदुस्थान जाने की आज्ञा मिल गई। बड़ी निर्लज्जता और हानि के साथ यह हिंदुस्थान आया। इसके इस राजद्रोह के कारण क्षमा का मार्ग बंद हो चुका था, इसलिये यह दिल छोटा करके एकांतवास करता रहा, जिससे इसकी बची अवस्था बीत गई।

यह सत्य है कि इसकी अयोग्यता और कायरता में किसी को शंका नहीं है, क्योंकि इसने ऐसे दृढ़ दुर्ग को, जिसके चारों ओर पाँच दीवालें थीं और जिसमें ४००० बलबरिये और धनुर्धारी तथा २००० योग्य बंदूकची थे और दो वर्ष का सामान, कोष, रसद, बारूद इत्यादि भरा था, केवल दो महीने के घेरे के बाद छोड़ दिया। इसने वश से इस कादरता को विशेष माना और प्राण से मान को अधिक नहीं समझा। उसी समय बाहर से रात्रि के अँधेरे में दुर्ग के नीचे से तीरों से समाचार मिल रहा था कि क़िज़िलबाश सेना घास और गल्ला के कम

होने से बहुत घबराई हुई है तथा इसी बीच हिंदुस्थान से सहायता पहुँच जायगी यदि यह एक मास दृढ़ रह कर ठहर जाता तो शत्रु असफल लौट जाते। उस बिगड़ी हुई बुद्धि वाले का साहस ठीक न रहा। इसी अभाग्य से इसने अपने बचे हुए जीवन के कुछ वर्षों को नष्ट कर दिया।

दौलत ख़ाँ लोदी

यह शाहू .खेल का था। यह पहिले ख़ानआज़म मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका का नौकर था। बुद्धिमानी और अनुभव में बहुत बढ़ा-चढ़ा था इसलिये जब मिर्ज़ा कोका की बहिन का विवाह बैराम .ख़ाँ के पुत्र अब्दुर्रहीम .ख़ाँ .ख़ानख़ानाँ के साथ हुआ तब ख़ानआज़म ने इसको मिर्ज़ा के सुपुर्द कर दिया और कहा कि यदि पिता के पद और प्रतिष्ठा तक पहुँचने का उत्साह हो तो इसको अपने मित्र के समान रखना। दौलत .ख़ाँ बहुत काल तक मिर्ज़ा अब्दुल् रहीम मिर्ज़ा .ख़ाँ के साथ रहा और अच्छा काम किया। गुजरात-विजय में, जिसमें मिर्ज़ा को ख़ानख़ानाँ की उपाधि मिली थी, यह सम्मिलित था। ठट्टा की चढ़ाई और दक्षिण के युद्धों में बहुत प्रयत्न कर यह प्रसिद्ध हुआ और ख़ान-ख़ानाँ की सेवा में रहते हुए इसने एक हजारी मंसब पाया। इसके अनंतर शाहज़ादा दानियाल ने इसे अपने यहाँ नौकर रख कर दो हज़ारी मंसब दिया। जब शाहज़ादा अहमदनगर से असीरगढ़ की विजय पर बधाई देने को बादशाह के यहाँ गया तब दौलत ख़ाँ को शाहरुख़ की सहायता को वहीं छोड़ा, जो उस प्रांत की रक्षा पर नियत था। यह सन् १००९ हि० में ४५वें वर्ष में शूल की बीमारी से अहमदनगर में मर गया। वह अपने समय के बहादुरों का सिरमौर था। अकबर इसकी वीरता और साहस से सर्वदा सशंकित रहता। जब इसकी

मृत्यु का समाचार मिला तो उसने कहा कि 'आज शेर ख़ाँ सूर संसार से उठ गया।' इसके कुछ विचित्र किस्से कहे जाते हैं।

सन् ९८६ हि० में २४वें वर्ष में जब शहबाज़ खाँ कंबू राणा को दंड देने के लिये नियत हुआ तब इसने कूच का अच्छा प्रबंध किया था। स्वयं कुछ सैनिकों के साथ आगे-आगे जाता तथा कुल मंसबदार तथा नौकर पीछे-पीछे आते। यात्रा-प्रबंधक लोग ऐसा कड़ा प्रबंध रखते थे कि एक घोड़ा दूसरे से एक कान भर भी आगे नहीं जाता था। एक दिन ख़ानख़ानाँ, जो सहायकों में से था, इसके साथ घोड़े पर जा रहा था। दौलत ख़ाँ सेना से आगे निकल कर चल रहा था और यसा-वलों के रोकने पर भी नहीं मानता था। शहबाज़ ख़ाँ के संकेत करने पर, जिसमें जल्दीपन अधिक था, उसके भाई अब्दुल्ल ख़ाँ ने घोड़े को कोड़ा मार के तेज कर दौलत ख़ाँ के घोड़े के नाक पर डंडा मारा। इसने तलवार खींच कर उसके घोड़े को ऐसा मारा कि वह वहीं गिर गया। शहबाज़ ख़ाँ ने सैनिकों को इसे पकड़ने की आज्ञा दी पर वह हाथ की सफ़ाई और वीरता से लड़कर सेना से निकल गया। अफ़ग़ानों ने उपद्रव मचाकर इसकी सहायता की। ख़ानख़ानाँ स्वयं अपनी निष्पक्षता प्रगट करने के लिये शहबाज़ ख़ाँ के स्थान पर ठहरा रहा। इस पर शहबाज़ ख़ाँ बाहर आकर उससे गले मिला तथा घर जाने को छुट्टी दी। दूसरे दिन ख़ानख़ानाँ ने दौलत ख़ाँ को लाकर क्षमा दिलाई और शहबाज़ ख़ाँ ने घोड़ा तथा ख़िलअत आदि देकर कहा कि तुम सेना के इमाम होकर सदा आगे चला करो।

जब अबुल्फ़ज़ल दक्षिण के कार्यों को निपटाने गया था

तब एक दिन मजलिस में, जहाँ खानखानाँ भी बैठा था, शेख ने यह बात उठाई कि तलवार हिंदी किताबों में लिखी मिली है पर मैंने अभी तक नहीं देखा है। दौलत .खाँ ने इसको आक्षेप समझ कर अपनी तलवार नंगी कर ली और कहा कि यह तलवार हिंदी है। यदि इसे तेरे सिर पर मारूँ तो नीचे तक पहुँचे। खानखानाँ हाथ पकड़ कर उसको बाहर लिवा लाया और शेख अन्यमनस्क हो गए। खानखानाँ उसे शेख के घर पर लिवा जाकर उसके लिए स्वयं क्षमा-प्रार्थी हुआ। शेख ने उससे गले मिल कर उसको हाथी और खिलअत आदि दिया तथा कहा कि वह आक्षेप नहीं था।

उनमें सबसे आश्चर्यजनक यह है, जो ज़खीरतुल्ख़वानीन में लिखा है कि जब शाहज़ादा दानियाल का ख़ानखानाँ से मन फिर गया तब यौवन के अविवेक में आकर उसने अपने एक लुच्चे साथी को संकेत किया कि जब खानखानाँ आवे तब उसे ऐसा धक्का दो कि वह दुर्ग बुर्हानपुर से, जो ताप्ती पर है, नीचे गिर पड़े। जिस दिन ऐसा वर्ताव .खानखानाँ के साथ किया गया उस दिन दैवयोग से ऐसा हुआ कि वह बिल्कुल दृढ़ रहा। उसकी केवल पगड़ी गिर पड़ी। शाहज़ादा ने स्वयं उठकर और हाथ पकड़ कर क्षमा माँगी कि यह मेरे नशे की अवस्था में हो गया। दौलत .खाँ ने शाहज़ादा की पगड़ी उतार कर .ख़ान-.खानाँ के माथे पर रख दी और घर लिवा लाया। यह बात बुद्धि में नहीं आती क्योंकि उस समय दौलत .खाँ शाहज़ादा के साथ था, .ख़ानखानाँ के नहीं इसलिए यह बुद्धिमानों द्वारा मान्य नहीं है। दौलत खाँ के पुत्रों में महमूद दुःखी होकर

पागल सा हो गया और औषधि से उसे कुछ लाभ नहीं हुआ। ४६वें वर्ष में शिकार में इसका लोगों का साथ छूट गया और कस्बा पाल में कोलियों से लड़ कर यह मारा गया। दूसरे पुत्र पीराई को ख़ानजहाँ लोदी की पदवी मिली, जिसका वर्णन अलग दिया गया है[1]।

---

१. इसी भाग का ४१वाँ शीर्षक देखिए।

नक़ीब ख़ाँ मीर ग़ियासुद्दीन अली

यह क़ज़्वीन के सैफ़ी सैयदों में से है और ईरान में सुन्नी मत का यह वंश प्रसिद्ध है। इसका पितामह मीर यहिया हसनी सैफ़ी अनेक प्रकार की विद्याओं का पूर्ण ज्ञाता था। यात्रा विवरण तथा इतिहास में अपने समय का अद्वितीय तथा सिरमौर विद्वान था। मिसरा—

किसीको इस तारीख में उसके समान न देखा।

कहते हैं कि इसने इसलाम के आरंभ से अपने समय तक के प्रतिवर्ष का वृत्तांत, जो लोग उससे पूछा करते थे, अर्थात् घटनावली और सुलतानों, शेखों, विद्वानों तथा कवियों का विस्तार से तथा व्याख्यात्मक ठीक-ठीक हाल लिखा है और उनके जन्म तथा मरण को मितियाँ भी दी हैं। लुबुत्तवारीख इसकी एक रचना है। आरंभ में शाह तहमास्प सफवी की सेवा में रहकर इसने सम्मान तथा विश्वास प्राप्त किया। शाह उसको निर्दोष बच्चा यहिया कहता था। झगड़ालुओं ने शाह को उसकी ओर से यह कहकर रुष्ट कर दिया कि मीर यहिया और उसका पुत्र मीर अब्दुल्लतीफ सुन्नी मत और समूह के हैं तथा क़ज़्वीन के सुन्नियों के वे अग्रणी हैं। शाह ने आज़रबईजान की सीमा पर से क़ोरची नियत किया कि मीर को सपरिवार सफ़ाहान लाकर कैद में रखे। उस समय मीर का द्वितीय पुत्र, नफ़ायसुल्मआसिर का रचयिता, मीर अलाउद्दौला उपनाम 'कामी' आज़रबईजान ही में था और उसने यह समाचार

शीघ्र पिता के पास भेज दिया। मीर यहिया वार्द्धक्य के कारण भाग न सका और क़ोरची के साथ सफ़ाहान जाकर एक वर्ष नौ महीने के बाद सन् ९६२ हि० में सतहत्तर वर्ष की अवस्था में मर गया। परंतु मीर अब्दुल्लतीफ यह भयानक समाचार पाते ही कैलानात को भागा। इसके अनंतर हुमायूँ के बुलाने पर वह हिंदुस्तान की ओर चला आया। इसके पहुँचने के पहिले ही उस बादशाह पर अवश्यंभावी घटना घटी। मीर अकबर के राज्य के आरंभ में सपरिवार हिंदुस्तान आया और बादशाही दरबार में भर्ती हो गया। इस पर अनेक प्रकार की कृपा हुई और इसकी प्रतिष्ठा की गई। २रे वर्ष में यह अकबर का शिक्षक नियत हुआ। वह ऐश्वर्यशाली बादशाह लिखना नहीं जानता था पर कुछ समय मनोग्राही ग़ज़लों को मीर से पढ़ा। मीर स्वयं अनेक विद्याओं तथा गुणों में और वाक्शक्ति तथा दृढ़ता में विशिष्ट योग्यता रखता था। यह उदारता तथा धर्मांधता के अभाव से एराक में सुन्नी होने की प्रसिद्धि रखते हुए भी हिंदुस्तान में शीआपन के लिए विख्यात हुआ। इस कारण मीर के शांतिगृह का नियामक होने से हर मत के लोग (धर्मांध मुसल्मान) उस पर व्यंग्य कसते। कहते हैं कि आचार-विचार में अपने धर्मग्रंथ के नियमों के अनुसार चलता और प्रतिद्वंद्वियों की भी आवश्यकता पड़ने पर इच्छा पूरी करने का साहस रखता था। शील तथा सतर्कता उसका जीवन था।

जब अकबर बैराम खाँ से बिगड़ गया और वह आगरे से निकल कर आलोर की ओर चला तथा यह प्रकट किया कि युद्ध के लिए वह पंजाब जायगा तब अकबर दिल्ली से बाहर

निकल मीर को, जिसे अपने पासवालों में सबसे अधिक बुद्धिमान तथा विश्वसनीय समझता था, खानखानाँ के पास भेजा कि उसे जाकर समझावे और कुमार्ग से दूर रखे। मीर सन् ९८१ हि० (सन् १५७४ ई०) में सीकरी कस्बे में मर गया। क़ासिम अर्सलाँ ने 'फ़ख़्रे आल यस' में इसकी तारीख कही।

मीर का बड़ा पुत्र मीर ग़ियासुद्दीन अली अपनी हितैषिता, सुस्वभाव और निरंतर की सेवा के कारण अकबर का बराबर कृपापात्र रहा और बादशाह भी उस पर सदा स्नेह रखते रहे। २६वें वर्ष में नक़ीब खाँ की पदवी इसे मिली। ४० वें वर्ष तक यह केवल एक हजारी मंसब तक पहुँचा था पर संबंध बहुत दृढ़ बना लिया था। अकबर ने मिर्जा मुहम्मद हकीम की बहिन सकीना बानू बेगम का निकाह इसके चचेरे भाई शाह ग़ाजी खाँ से कर दिया था। इसका चाचा क़ाज़ी ईसा बहुत समय तक ईरान में क़ाज़ी का कार्य करने के बाद हिंदुस्तान आकर बादशाही सेवा में भर्ती हो गया था। सन् ९८० हि० (सन् १५७४ ई०) में वह मर गया। ३८वें वर्ष में नक़ीब ख़ाँ ने प्रार्थना की कि क़ाज़ी ईसा ने अपनी पुत्री हुज़ूर को भेंट दी है और वह पर्देनशीन स्त्री उसी इच्छा से अपना कालयापन कर रही है। अकबर ने नक़ीब ख़ाँ के गृह जाकर बड़ों की चाल पर उससे निकाह कर लिया। जहाँगीर के राज्य में मंसब और विश्वास बढ़ने से यह सम्मानित हुआ। ९वें वर्ष सन् १०२३ हि० में जब जहाँगीर अजमेर में था तब इसकी मृत्यु हुई। यह चिश्ती रौज़ा में संगमरमर के घेरे में अपनी स्त्री सानम के साथ गाड़ा गया, जो गृहिणी और बुद्धिमती थी।

नक़ीब ख़ाँ भी हदीस, सैर तथा पवित्र नामों की व्याख्या करने में बड़ी योग्यता रखता था और इतिहास-ज्ञान में भी एक था। कहते हैं कि रौज़तुस्सफ़ा के सातों भाग कंठाग्र थे और 'जफ़र' विद्या में, जिससे ग़ैब की बातें जानी जाती हैं, बड़ी योग्यता रखता था। जहाँगीर ने अपने आत्मचरित में लिखा है कि नक़ीब ख़ाँ अनुमान और विचार करने में अच्छी बुद्धि रखता था तथा अत्यंत दूरदर्शी था। एक कबूतर हवा में उड़ रहा था, जिसे देखकर हमने कहा कि कई हैं पर जब गिना गया तब एक से अधिक न था। नक़ीब ख़ाँ ने अवस्था अधिक पाई थी। कहते हैं कि एतमादुद्दौला और मीर जमालुद्दीन हुसेन आंजू से मिला हुआ था। इसका पुत्र मीर अब्दुल्लतीफ भी, जिसे दादा का नाम मिला था, विद्वान और गुणी था। मिर्ज़ा यूसुफ़ ख़ाँ रिज़वी की बहिन से इसकी शादी हुई थी। इसे अच्छा मंसब मिला था। अंत में दिमाग़ बिगड़ने से इसकी मृत्यु हो गई।

नज़र बहादुर ख़ेशगी

इसका देश और जन्मस्थान कसूर कस्बा है, जो बारी दोआबे में राजधानी लाहौर से अठारह कोस पर है और खेशगियों का निवासस्थान है, जो अफ़ग़ानों में एकता तथा बड़प्पन के लिए प्रसिद्ध हैं। नज़र बहादुर शाहज़ादा पर्वेज़ का एक सर्दार नौकर था। जहाँगीर के नौकरों में भर्ती होने पर इसे डेढ़ हजारी मंसब मिला। शाहजहाँ के राज्यकाल में स्वामिभक्ति तथा विश्वास बढ़ने से २ रे वर्ष में सरकार संभल का फौजदार नियत हुआ और दौलताबाद के घेरे में इसने वीरता तथा साहस दिखलाया। एक दिन, जब अंबरकोट बादशाही अधिकार में आ गया, नीचे से तीर, गोली और बान की वर्षा दुर्गवाले टूटी हुई तथा छेदी हुई दीवाल पर ज़ोर शोर से कर रहे थे तथा दुर्ग के भीतर घुसने को तैयार सेना मलबे की ओट में रुककर आगे नहीं बढ़ रही थी उस समय नसीरी खाँ खानदौराँ आगे बढ़कर नज़र बहादुर के साथ बड़े साहस से दाईं ओर से दुर्ग में घुस गया। वहाँ घोर युद्ध होने लगा और बड़ी वीरता से इन लोगों ने दुर्गवालों को द्वितीय दुर्ग के खाई के भीतर, जिसे महाकोट कहते हैं, हटा दिया। इसके उपलक्ष में दरबार से इस पर कृपा हुई। इसके अनंतर किसी कारणवश यह दो वर्ष तक सेवा से हाथ खींच कर एकांतवास करता रहा।

इसकी सचाई, अच्छा स्वभाव, सभाचातुरी और सतर्क

सेवा प्रसिद्ध थी इसलिए १४ वें वर्ष में पुनः बादशाही कृपा होने पर ढाई हज़ारी १५०० सवार का मंसबदार हुआ। १५वें वर्ष में चगता की चढ़ाई व दुर्ग मऊ तारागढ़ के लेने में प्रयत्न कर यह प्रशंसित हुआ। १९ वें वर्ष में तीन हज़ारी २५०० सवार का मंसब हो गया और शाहज़ादा मुराद बख़्श के साथ बलख बदख़्शाँ गया। जब शाहज़ादा ने मुफ्त में मिले हुए पैतृक देश को कुछ न समझ कर आराम करने की प्रकृति के कारण वहाँ से लौटना ही निश्चित किया तब यह उसके साथ देशप्रेम के कारण अन्य अच्छे राजाओं के साथ कार्य छोड़ कर पेशावर चला आया। नजर बहादुर खेशगी को सादुल्ला ख़ाँ के प्रधान मंत्रित्वकाल में उसीके प्रस्ताव पर क़ुलीज़ ख़ाँ के साथ बदख़्शाँ की रक्षा का भार सौंपा गया था इस कारण जब अटक नदी पार करने की इसे आज्ञा नहीं मिली तब यह वहीं ठहर गया और शाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब के साथ पुनः उस प्रांत को गया। २३वें वर्ष में कंधार की चढ़ाई पर रुस्तम ख़ाँ दक्खिनी की हरावली में, जब तीस सहस्र लड़ाके क़ज़िलबाशों से युद्ध हुआ था तब, उक्त ख़ाँ ने दृढ़ता से वीरता दिखलाई और बहादुरी से खूब युद्ध किया। शत्रु जब धावों के कारण कुछ न कर सका तब उसने हट कर सेना के दूसरे भाग पर आक्रमण किया। इस विजय के अनंतर इन प्रयत्नों के पुरस्कार में एक हजारी १००० सवार बढ़ने से इसका मंसब चार हजारी ४००० सवार का हो गया। २६ वें वर्ष सन् १०६२ हि० (सन् १६५२ ई०) में लाहौर में यह मर गया। इसके बड़े पुत्र शम्सुद्दीन को उन्नति सहित डेढ़ हजारी १५०० सवार का मंसब और दूसरे

पुत्र क़ुतुबुद्दीन को डेढ़ हजारी १४०० सवार का मंसब मिला। इसे और भी पुत्र थे, एक का असदुल्ला नाम था। इसे भी यही मंसब मिला था। यह ईश्वर से डरनेवाला और धार्मिक था। ऐश्वर्य के रहते भी इसकी प्रकृति उसके उपभोग की ओर नहीं जाती थी। फकीरी चाल पर रहता था। इसके नौकर संबंधियों तथा सजातियों में से थे जिनसे यह भाईचारे का बर्ताव रखता। एक समय यह सैनिकों के साथ भोजन करता। यह ऐसा सत्यनिष्ठ था कि जागीर की कुल आय में से सेना व निजी व्यय ठीक-ठीक जो होता था काट कर कागज पर जमाखर्च कर डालता और उसे शाहजहाँ के सामने पेश कर देता और उसमें से कुछ दबा नहीं रखता था।

नजाबत ख़ाँ मिर्ज़ा शुजाअ

यह बदख़्शाँ के शासक मिर्ज़ा शाहरुख का तृतीय पुत्र था। योग्यता तथा प्रसिद्धि में अपने भाइयों में सबसे बढ़कर था। जहाँगीर के राज्यकाल में यह हिंदुस्तान में पैदा हुआ। यद्यपि अपने बड़े भाई मिर्ज़ा बदीउज्ज़माँ को मार डालने के कारण, जो क्रोध तथा उपद्रव करने में बहुत उद्दंड था, यह अपने अन्य भाइयों के साथ दंडित तथा कैद हुआ पर उसके बाद बादशाही कृपा पाकर अच्छी सेवा तथा भलाई के कारण इसने उन्नति किया। शाहजहाँ के तीसरे वर्ष में नजाबत ख़ाँ की पदवी और दो हज़ारी ʼसब पाकर यह सम्मानित हुआ तथा इसे कोल की फौजदारी मिली। ४थे वर्ष में इसका मंसब बढ़ा तथा इसने डंका पाया और मुलतान प्रांत की फौजदारी पर यह नियत हुआ, जो यमीनुद्दौला की जागीर में था। इसके अनंतर पहाड़ के नीचे कांगड़ा का फौजदार होकर इसने उस कार्य को अच्छी प्रकार सँभाला और तीन हजारी २००० सवार का मंसबदार हो गया। स्वामिभक्ति तथा कार्यशक्ति के कारण श्रीनगर का कार्य पूरा कर को यह प्रतिज्ञाबद्ध हुआ कि या तो उस प्रांत पर अधिकार कर लूँगा या उसके अध्यक्ष से भारी भेंट लेकर सरकारी कोष में जमा करूँगा। इसे दरबार से दो सहस्र सवार सहायता को दिए गए।

कहते हैं कि जब सहारनपुर और मेरठ इसके अधीन था उसी समय श्रीनगर का राजा मर गया, जो एक बड़ा पहाड़ी

राजा था और विस्तृत राज्य तथा सोने की ख़ान रखता था। उसकी स्त्री ने दोस्त बेग मुग़ल के साथ, जो पहिले ही से राजा के समय से अधिकारी था, कुल अधिकार अपने हाथ में ले लिया और जो उसकी सेवा से मुकरता उसको नाक कटवा लेती, जिससे वह 'नक कट्टी' रानी के नाम से प्रसिद्ध हो गई। कुछ अदूरदर्शी दुष्टों ने नजाबत ख़ाँ को बहकाया कि पुराना करोड़ी मिर्ज़ा मुग़ल सदा चाहता था कि इस केलागढ़ी को, जो उस राजा के अधीन था, बादशाही थाना बनावे और यदि ऐसा हो तो यह कुल प्रांत अधिकार में चला आवे। वह स्त्री क्या कर सकेगी यदि तुम अधिकार का पैर उस ओर बढ़ाओ। अनुभवहीन ख़ाँ का साहस बढ़ा और ९ वें वर्ष में यह उस प्रांत की ओर बढ़ा। दृढ़ दुर्ग जैसे शेर गढ़, जिसे श्रीनगर के राजा ने अपनी सीमा पर जमुना नदी के किनारे बनवाया था, और कानी दुर्ग को, जो पहिले सिरमौर के राजा के अधीन था, अधिकार में लाकर जमींदार को दे दिया। ननोर दुर्ग लेकर इसने हरिद्वार के पास से गंगा पार किया। यद्यपि वहाँ के शासक ने बहुत पैदल सेना एकत्र कर दर्रों तथा घाटियों को रोकने का प्रयत्न किया और नदी के उतारों को मिट्टी तथा पत्थर के रुकावटों से दृढ़ किया पर साहसी ख़ाँ वीरता तथा बहादुरी से सबको पार करता गया। जब यह श्रीनगर से तीस कोस पर पहुँचा तब वहाँ वाले इस निरंतर के युद्ध से डर गए और अधीनता स्वीकार करने के लिए प्रतिनिधि भेज कर दस लाख रुपया भेंट देना निश्चय किया और दो सप्ताह की अवधि प्रतिज्ञा पूरी करने को लिया। परंतु बहुत प्रयत्न करने पर डेढ़

महीने बाद कुल एक लाख रुपया मिला। यह अनुभवहीन सर्दार बराबर विजय प्राप्त करने के घमंड में उस कष्ट के समय को दूर करने का कोई उपाय नहीं कर सका, जब कि खानपान का सामान इतना घट गया कि मनुष्यों के प्राण ओंठ तक आ गए पर रोटी ओंठ तक न पहुँची। पहाड़ियों ने सब मार्ग बंद कर दिए थे इसलिए जो भी रसद लाने के लिए जाता था वह उनके द्वारा लूट लिया जाता था। जब काम प्राण तक और छुरी हड्डी तक पहुँची तथा उपद्रवियों ने भीड़ कर घेर लिया तब यह युवक ख़ाँ असावधानी की नींद से जागा और सिवा लौट जाने के इसने कोई उपाय नहीं देखा। निरुपाय होकर यह लौटा। कुछ लज्जाशीलों ने इस प्रकार लौटना पसंद न कर युद्ध में प्राण दे दिए पर अधिकतर छुटकारे की आशा से पैदल ही लौट चले। इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। नजाबत ख़ाँ पैदल ही जब्बाल घाटी से, जहाँ पक्षियों का जाना कठिन था, गिरता पड़ता बीस दिन में पेड़ों के पत्तों से भूख मिटाते हुए संभल के पास बाहर आया। इस असावधानी के कारण यह कुछ दिन मंसब तथा जागीर से हटाया जाकर दंडित रहा।

इसके अनंतर इसका मंसब बहाल हुआ और फिर कुलीज ख़ाँ के स्थान पर मुलतान का सूबेदार नियत हुआ। जब १५वें वर्ष में जगतसिंह का राज्य मऊ, रपुर, तारागढ़ तथा पठानकोट विजय हुआ तब यह उस विजित प्रांत पर नियत हुआ। २३वें वर्ष में कंधार की चढ़ाई पर से लौटने पर इसे पाँच हजारी मंसब की उन्नति मिली और वहाँ पहुँच कर इसने अच्छे कार्य किए।

शाहजहाँ के राज्य के अंतिम समय में यह शाहजादा के सहायकों में नियत हुआ, जो बीजापुर की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ था। जिस समय शाहजहाँ के बीमार हो जाने से हर ओर उपद्रव उठ खड़ा हुआ और युवराज शाहजादा मुहम्मद दाराशिकोह के बुलाने से दक्षिण के सहायक दरबार को चल दिए उस समय इसके सिवा कोई अच्छा बादशाही मनुष्य शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब के पास नहीं रह गया। जब शाहजादे ने साम्राज्य के लिए लड़ने का दृढ़ निश्चय किया तब यह सम्मति देने के सभी कार्यों में बढ़ा रहा। इसे सात हजारी ७००० सवार का मंसब देकर प्रथम जमादिउल् अव्वल सन् १०६८ हि० को शाहजादा मुहम्मद सुलतान को अगल की चाल पर औरंगाबाद से आगे भेजा। महाराज जसवंतसिंह के युद्ध के बाद, जिसमें सुलतान मुहम्मद के हरावल में बाएँ भाग का अध्यक्ष रहकर इसने बड़ी वीरता दिखलाई थी, यह एक लाख रुपया पुरस्कार और खानखानाँ बहादुर सिपहसालार की उच्च पदवी पाकर सम्मानित हुआ। इसके अनंतर नजाबत खाँ अपने ओछे तथा दुष्ट स्वभाव के कारण इस मित्रता से अहंकार में भरकर अपने स्वामी से ऐंठने लगा और उच्चता से नीचता करने लगा। राजाओं की प्रकृति मर्यादा भंग होने देना नहीं चाहती, विशेषकर औरंगजेब बादशाह जिसने अपने पिता तथा भाइयों से क्या बर्ताव किया और जो नहीं चाहता था कि संसार में किसीका सिर जीवित तथा रंग ठीक बना रहे, इसलिए वह इसकी चाल को न सह सका और राजगद्दी के बाद इसके पित्त को तोड़ने के लिए खट्टेपन की चाल से नीबू

काम में लाया। जिस समय वह दाराशिकोह का पीछा करनें को दिल्ली के पास सेना के साथ पहुँचा तब नजाबत ख़ाँ छोटे कारणों से घर बैठ रहा क्योंकि वह स्वयं अपने बर्ताव से लज्जित था। औरंगज़ेब ने मीर अबुल्फ़ज़्ल मामूरी को, जो पुरानी सेवा के कारण कृपापात्र हो मामूर ख़ाँ की पदवी पा चुका था और उक्त ख़ाँ से भी मित्रता दृढ़ कर रखा था, उसके स्वभाव को ठीक करने तथा कुछ संदेश देकर भेजा। मीर ने बहुत समझाकर चाहा कि यह सुव्यवहार करे पर वह मालिन्य, जो इसके हृदय में इस बीच बढ़ गया था, नहीं मिटा और यह निर्भीकता से बेतहाशा अनुचित बातें बादशाह के लिए कहने लगा। मीर मर्यादा तथा स्वामिभक्ति के विचार से उठकर चला ही था कि उस पागल ने, जिसका मस्तिष्क सहस्र पागलपन का बर्रे का छाता बन गया था, यह देखते ही कि यह जाकर स्यात् कुछ उपद्रव न करे मसनद पर रखे हुए नीमचे को उठाकर मामूर खाँ पर पीछे से ऐसा चोट किया कि उस सैयद के दो टुकड़े हो गए। ऐसा भारी दोष करने पर इसका मंसब, जागीर और ऊँची पदवी, जिसे बहुत परिश्रम से पाया था, सब छिन गई। मुलतान से लौटने पर जब बादशाह दिल्ली आए तब शेख मीर के भाई अमीर ख़ाँ की मध्यस्थता में यह सेवा में उपस्थित हुआ। ३रे वर्ष के जशन में, कि अब तक बिना शस्त्र के दरबार में आता था, इसे तलवार मिली। ५वें वर्ष में पाँच हज़ारी ४००० सवार का मंसब और पहिले की पदवी दुबारा मिली। ६ठे वर्ष मालवा का सूबेदार जाफ़र ख़ाँ वज़ीर नियुक्त किए जाने के लिए जब दरबार बुलाया गया

तब नजाबत ख़ाँ उस विस्तृत प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। वहीं ७ वें वर्ष में यह मर गया।

यह साहस, वीरता तथा उदारता में अपने समय में अद्वितीय था। चुने हुए मनुष्य अपने साथ रखता। शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर साम्राज्य के लिए युद्ध करने जब हिंदुस्तान की ओर चला तब इससे बहुधा सम्मति लिया करता था। इसके पास अच्छी सेना थी और स्वयं वीर था इससे शाहजादा भी इससे पूछताछ करते हुए बहुत अच्छा सलूक करता था। कहते हैं कि जब महाराज यशवंतसिंह के युद्ध के अनंतर औरंगजेब आगरे की ओर चला तब दाराशिकोह ने युद्ध की तैयारी करने का साहस किया। उस समय शाहजहाँ ने कहा था कि उत्तम तो यह है कि यदि मैं स्वयं बाहर निकलूँ तो स्यात् युद्ध ही न हो क्योंकि उसके साथ में अधिकतर बादशाही नौकर हैं जो ऐसी सूरत में उसकी अधीनता न करेंगे और तुम्हारे साथ जो बादशाही आदमी हैं वे हमारी उपस्थिति में अधिक प्रयत्नशील होंगे। जब यह समाचार आगरे के लेखों से शाहजादे को मिला तब वह उन पत्रों को लेकर घबड़ाहट के साथ नजाबत ख़ाँ के यहाँ गया कि उसे इस बात की सूचना दे। नजाबत ख़ाँ ने प्रार्थना की कि मेरे सोने का समय है, आप भी यहीं आराम करें। इस पर शाहजादा बैठा रहा। यह स्वयं जाकर दोपहर भर सोया और उठकर भाँग छानने पर जब नशा आया तथा दिमाग तर हुआ तब शाहजादा की सेवा में पहुँचा। सब सुनकर इसने कहा कि हमने आपकी इच्छा जानकर यह कार्य किया है और अपने स्वामी का विरोधी हो गया हूँ। अब आपको

अधिकार है। यदि अवसर पड़े तो मैं एक बार स्वयं जहाँगीर पर तलवार चला दूँ। जो होना हो वह हो। शाहजादे का साहस बढ़ा और उसने इसकी दृढ़ता की प्रशंसा की। इसे योग्य पुत्र थे और कई का इस ग्रंथ में उल्लेख हुआ है।

नजीबुद्दौला नजीब ख़ाँ

यह अफ़ग़ान था और पहिले जमादारी करता था। जिस समय एमादुलमुल्क ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ और अबुल्मंसूर ख़ाँ में युद्ध की नौबत आई तब इसने ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ की नौकरी कर दरबार में आने जाने से सभ्यता सीख ली और एमादुल्मुल्क के प्रस्ताव पर इसे सात हज़ारी मंसब और नजीबुद्दौला बहादुर साबित-जंग की पदवी मिल गई। शाह दुर्रानी के आने पर सन् ११७० हि०, सन् १७१७ ई० में दिल्ली में उससे भेंट कर स्वजाति होने से उसका विश्वासपात्र हो गया तथा अच्छे पद पर पहुँचा। यहाँ तक कि अमीरुल्उमरा तथा एमादुल्मुल्क के समान हो गया।

जब एमादुल्मुल्क ने फ़र्रुख़ाबाद से लौटकर तथा रघुनाथ राव और मल्हार राव को दक्षिण से बुलाकर एक साथ दिल्ली को घेर लिया तब नजीबुद्दौला होलकर को मिलाकर अपने सामान व परिवार के साथ बाहर निकलकर जमुना के उस पार अपने ताल्लुके को चला गया। वहाँ दत्ता सींधिया ने शकरताल में सन् ११७३ हि०, सन् १७६० ई० में इसको घेर कर इसकी खराब हालत कर दी थी पर शुजाउद्दौला की सहायता से इसे छुटकारा मिला। इसी समय दुर्रानी शाह के आने पर नजीबुद्दौला ने उसकी हरावली में नियत होकर सदाशिव राव भाऊ पर आक्रमण करने में बहुत प्रयत्न किया। इसके बाद जब शाह आलम बहादुर दिल्ली के तख्त पर बैठा और

दुर्रानीशाह अपने देश लौट गया तब यह स्थायी रूप से अमीरुल्उमरा हो गया।

सन् ११७९ हि०, सन् १७६५ ई० में सूरजमल के पुत्र जवाहिरसिंह जाट का इसने अच्छी प्रकार सामना किया, जो अपने पिता का बदला लेने को दिल्ली पर चढ़ आया था। बादशाह शाह आलम के पुत्र जवाँबख्त को शासन का अधिकार पत्र देकर यह दृढ़ता से दिल्ली में रहने लगा। दोआब का बहुत सा भाग इसने जागीर में ले लिया था। सन् ११८५ हि०, सन् १७७१ ई० में यह मर गया।

इसका पुत्र ज़ाबित खाँ अपने पिता की जागीर पर अधिकृत हुआ। जब शाह आलम बादशाह इलाहाबाद प्रांत से दिल्ली की ओर चले तब यह मजदुद्दौला की मध्यस्थता से, जो उस समय नायब वजीर था, उसके कहने पर दरबार में पहुँचा। शाही सेना दिल्ली से बारह कोस पर बादली के पास थी कि मिर्जा नजफ़ खाँ बहादुर आगरे से बुलाए जाने पर सेवा में उपस्थित हुआ। उसी समय बादशाही सरकार के माल के मुत्सद्दियों ने दिल्ली प्रांत के मध्य दोआब के महालों का, जो ज़ाबित खाँ के अधिकार में था, कुल रुपया उक्त खाँ से माँगा। यह मुत्सद्दी-कुल की शंका के कारण और उक्त बहादुर के बादशाही सेना में आ मिलने से तथा अपनी करनी से सशंकित होने से मजलिस (राजसभा) का दूसरा रंग देखकर रात्रि में बादशाही सेना से भागा और गंगाजी के उस पार गौसगढ़ में, जो बहुत दिनों से उसका निवासस्थान तथा रक्षागृह था, पहुँचकर बैठ रहा। इसके अनंतर बादशाह दिल्ली गए और मिर्जा नजफ़

ख़ाँ के साथ सेना सहित उस पर चढ़ाई कर युद्ध आरंभ कर दिया और उसके गढ़ को घेर लिया। यह तंग होकर दुर्ग से भागा तथा सिक्खों के यहाँ पहुँचा, जो पंजाब प्रांत में विद्रोह कर मुलतान से लाहौर तक और दिल्ली के कुछ महालों पर अधिकृत हो गए थे। बहुत दिनों तक उनकी सेना के साथ बादशाही महालों पर धावा करता रहा। मिर्ज़ा नजफ़ ख़ाँ ने उसे मिलाने का साहस कर अपने पास बुला लिया और बादशाह से उसे क्षमा करने की प्रार्थना की। इसके पुराने महालों में से कुछ अंश देकर इसे वहाँ का प्रबंध करने के लिए बिदा कर दिया। लिखते समय तक वह जीवित था।

नजीबुद्दौला शेखअली खाँ बहादुर

यह सैयदुल्लतायफ़: शेख़ जुनेद बगदादी के वंश में था। इसका पिता शेख़ अली खाँ कलाँ (बड़ा) व चाचा बहलोल खाँ शेख मुहम्मद जुनेदी के पुत्र थे, जिसकी पुत्री का निकाह शेख मिनहाज बीजापुरी से हुआ था, जो बीजापुर का एक सर्दार था। औरंगजेब के राज्यकाल के १७वें वर्ष में बहलोल खाँ अब्दुल्करीम खवास खाँ को, जो सिकंदर आदिलशाह के कार्यों का वकील था, कैद कर स्वयं प्रबंधक बन बैठा। इसने दक्खिनी सर्दारों पर विश्वास न होने से शेख मिनहाज को सेना के साथ शिवाजी भोंसला को दंड देने के लिए बहाने से भेजा और उसके पीछे ख़िज्र खाँ पन्नी को प्रगट में उसकी सहायता के लिए पर वास्तव में उसे मारने के लिए भेजा। एक दिन ख़िज्र खाँ ने शेख़ को भोज के लिए बुलाया पर शेख़ ने बुद्धिमानी से इस भेद को समझकर फुर्ती से उक्त खाँ को मार डाला और अपने को अपनी सेना में पहुँचा दिया। इस पर बहलोल खाँ ने स्वयं सेना के साथ पहुँचकर शेख़ से घोर युद्ध किया। शेख़ गुलबर्गा चला आया। १५ वें वर्ष में बादशाही आज्ञा से बहादुर खाँ कोका औरंगाबाद से बहलोल खाँ अब्दुल्करीम को दंड देने के लिए रवान: हुआ तब शेख भी आकर बादशाही सेना में मिल गया। संधि होने पर बहादुर खाँ ने उक्त शेख़ को गुलबर्गा भेज दिया। शेख ने लिखा कि यदि सेना भेजी जाय तो

दुर्ग पर अधिकार करने का यह अच्छा अवसर है। उक्त खाँ ने बीदर के दुर्गाध्यक्ष कलंदर खाँ के पुत्र वजीरबेग को, जो बाद को जान निसार खाँ हो गया, सेना के साथ भेजा। शेख ने दुर्ग के भीतर जाकर वहाँ के रक्षकों को कैद कर लिया और दुर्ग वजीरबेग को सौंप दिया। जब दाऊद खाँ नलदुर्ग को छोड़कर बादशाही सेना में चला आया तब बहादुर खाँ ने उसके विचार से शेख मिनहाज को हैदराबाद के शासक के पास भेज दिया। हैदराबाद के विजय के बाद बादशाही ,सेवा में चले आने से इसका विश्वास बढ़ा। निश्चित समय पर इसकी मृत्यु हो गई।

शेख मुहम्मद जुनेदी बीजापुर के सुलतान की सेवा में दिन व्यतीत कर रहा था पर बीजापुर के विजय के अनंतर बादशाही सेवा में चला आया। उसकी मृत्यु पर बहरोज खाँ को सर्दारी मिली और इसके मरने पर शेखअली खाँ को मिली। मुहम्मद-शाह के राज्य के आरंभ में जब निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह ने बहुत प्रयत्न कर दक्षिण प्रांत को बारहा के सैयदों से खाली करा लिया तब उक्त प्रांत के छोटे बड़े सभी उसके गृह पर गए। इसे भी इस कारण ऐसा ही करना पड़ा। भेंट के पहिले दिन, जब यह सलाम करने के स्थान पर खड़ा हुआ, तभी फालिज ने इसे मार दिया और इसी रोग से यह मर गया।

इसके अनंतर इसका कार्य शेख अली खाँ बहादुर को मिला और यह बराबर निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह के साथ रहा। एक बार यह नानदेर का सूबेदार हुआ और अच्छे मंसब तक पहुँचा। सलाबतजंग के शासनकाल में इसने नजीबुद्दौला की पदवी पाई। पर इस पदवी से यह प्रसन्न नहीं था कि कोई

उसे इस नाम से याद करे। यह बड़े डील वाला था पर घुड़-सवारी का इसे पूरा अभ्यास था। सन् ११८२ हि०, सन् १७६८ ई० में मर गया। बड़ा पुत्र अब्दुल्कादिर था, जो बरार प्रांत के अंतर्गत पाथरी परगना के आस्ती आदि ग्राम की जागीरदारी पाकर प्रसन्न हुआ, जो सुलतानी फर्मानों के अनुसार जागीर में इसके पूर्वजों को तथा इसके जीवन भर के लिए मिला था। यह शीघ्र ही मर गया। दूसरे पुत्रों में किसी ने योग्यता न दिखलाई।

नज्मुद्दीन अली ख़ाँ बारहः, सयद

यह अब्दुल्ला खाँ सैयद मियाँ का पुत्र था। यह साहस तथा वीरता के लिए प्रसिद्ध था, जो इसके वंश की पैत्रिक सम्पत्ति थी। जब इसके भाई .कुतबुल्मुल्क और अमीरुल-उमरा महम्मद फर्रुख़सियर बादशाह का पक्ष लेकर तथा बहुत प्रयत्न करने पर ऊँचे पदों पर पहुँचे, तब यह भी मनसब की उन्नति पाकर सम्मानित हुआ। इसके अनंतर जब उक्त बादशाह का काम बिगड़ गया और .कुतुबुल्मुल्क सुलतान रफ़ीउद्दौला के साथ राजा जयसिंह को दंड देने के विचार से राजधानी दिल्ली के बाहर निकला तब वहाँ की सूबेदारी नज्-मुद्दीन अली खाँ को मिली। महम्मदशाह के राज्य के २ रे वर्ष में जब अमीरुल्उमरा मारा गया और .कुतुबुल्मुल्क ने, जो दिल्ली प्रांत की ओर बिदा होकर अभी वहाँ पहुँचा भी नहीं था और अपने भाई के मारे जाने का समाचार सुन कर अपने आदमियों को सामान लाने को दिल्ली भेजा तथा नज्-मुद्दीन अली को वहाँ की रक्षा करने के लिए लिखा तब इसने यह समाचार सुनते ही घबड़ा कर पहिले कुछ सवार और पैदल सेना कोतवाल के अधीन एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीन ख़ाँ के मकान को घेरने के लिये भेज दिया पर अंत में .कुतुबुल्-मुल्क के लिखने पर इस काम से हाथ हटा लिया। कहते हैं

कि सेना बढ़ाने के विचार से इसने एक प्रकार से सर्वसाधारण को भोज दिया था, जिसमें छोटा टट्टू और पुराना लँगड़ा घोड़ा ताज़ी घोड़ों के साथ एक दर्जे का माना गया अर्थात् छोटे-बड़े सभी का समान स्वागत किया गया।

युद्ध के दिन हरावल की सेना का यह अध्यक्ष था और इसने बड़ी निर्भयता से साहस कर खूब लड़ाई लड़ा। युद्ध में यह बहुत घायल हो गया और इसकी एक आँख चोट लगने से काम की नहीं रह गई तथा यह पकड़ा जाकर कैदखाने में डाला दिया गया। इसकी ९-१० वर्ष की पुत्री को, जिसे इस भयंकर उपद्रव में महल से हटा कर एक वेश्या के घर में छिपा रक्खा था, पकड़ कर बादशाह के सामने ले आए। बादशाही महलों के आदमियों ने चाहा कि इसका विवाह बादशाह से कर दिया जाय पर क़ुतुबुल्मुल्क के बहुत कहने-सुनने पर कि बारहा के सैयदों से कभी ऐसा संबंध नहीं हुआ है, यह रोक दिया गया। उक्त लड़की नजमुद्दीन अली के घर भेज दी गई। ७वें वर्ष मुबारिज़ुल्मुल्क सर बुलंद ख़ाँ की प्रार्थना पर नजमुद्दीन अली को छुट्टी मिली और यह अजमेर का शासक नियत हुआ। जब गुजरात का सूबेदार सर बुलंद ख़ाँ अहमदाबाद पहुँच कर मरहठों के उपद्रव से नगर को दृढ़ कर भीतर बैठ रहा, जो उस नगर को नष्ट कर देना चाहते थे, तब नजमुद्दीन अली ने बादशाह की आज्ञा से शीघ्र सहायता को जाकर शत्रु से युद्ध किया और उसे परास्त कर दिया। इसके बाद अपने देश लौटने पर कुछ दिन के अनंतर यह ग्वालियर का शासक नियत हुआ और वहाँ के प्रबंध को

बड़ी दृढ़ता से पूरा किया। वहीं समय पर यह मर गया। कहते हैं कि जब इसकी एक आँख नष्ट हो गई तब बिल्लौर की आँख इस प्रकार बनवाई कि देखने में बनावटी नहीं मालूम होती थी।

नयाबत खाँ

इसका नाम अरब था और यह हाशिम खाँ नैशापुरी का लड़का था। जब ख़ानख़ानाँ मुनइमबेग को अकबर ने पूर्वीय प्रांत को विजय करने के लिए भेजा तब हाशिम खाँ भी उसके अधीनस्थों में नियुक्त हुआ और इसे उस ओर की घटनावली लिखने का कार्य सौंपा गया। जलूस के २० वें वर्ष में जन्नताबाद गौड़ की छावनी में इसकी मृत्यु हो गई, जहाँ का जलवायु ऐसा खराब था कि बहुत से सर्दारगण वहीं मर गए। अरब, जो पिता का प्रतिनिधि होकर दरबार में उपस्थित था, पिता के प्रार्थनापत्रों को पेश करता था इससे १९वें वर्ष में इसे नयाबत खाँ की पदवी मिली। इसके अनंतर बिहार प्रांत के विजय हो जाने पर यह वहाँ जागीर पाकर ख़ानख़ानाँ के साथ नियत हुआ, जो बंगाल विजय करने पर नियुक्त हुआ था, और वहाँ इसने बहुत काम किया। इसके कुछ दिन बाद खालसा महाल का प्रबंध इसे मिला और जब इसके जिम्मे आवार्जानवीसों ने बाकी निकाला तब इसने उसका ठीक हिसाब न देकर विद्रोह की जड़ डाली। कड़ा कस्बा को, जो इस्माइलकुली खाँ की जागीर में था, इसने जाकर घेर लिया और उक्त खाँ के नौकर लयास खाँ लंगाह को युद्ध में मार डाला। इस पर इस्माइलकुली खाँ कुछ बादशाही सेना के साथ दरबार से भेजा गया। २५ वें वर्ष में वहाँ पहुँच कर इसने उसका सामना किया और

नयाबत खाँ कुछ आदमी अपने कटाकर भागा। इसके बाद मासूम खाँ फ़रनखूदी से जा मिला, जो विद्रोह करने के विचार में था। शहबाज़ खाँ के साथ के युद्ध में यह मासूम खाँ का साथी था। जब मासूम ख़ाँ विजय प्राप्त करके भी हार गया और अवध की ओर चला गया तब शहबाज ख़ाँ ने सेना एकत्र कर उस पर चढ़ाई की। नयाबत ख़ाँ उस समय उससे अलग हो गया। २६ वें वर्ष में अरब बहादुर आदि के साथ संभल में इसने उपद्रव आरंभ किया। हकीम ऐनुलमुल्क के बरेली दुर्ग को दृढ़कर और जागीरदारों को एकत्र कर उस ओर आने पर यह कुछ जमींदारों के द्वारा अधीनता स्वीकार कर बादशाही सेना में पहुँचा। मरियम मकानी हमीदा बानू बेगम के यहाँ प्रार्थनापत्र देकर तथा उस वृद्धा बेगम से क्षमा का पत्र पाकर २७वें वर्ष में दरबार आया। बादशाह ने अवसर देखकर उसका दोष क्षमा कर दिया। इसकी मृत्यु की तारीख का पता नहीं लगा।

नवाजिश खाँ मिर्जा अब्दुल् काफ़ी

यह असालत ख़ाँ[1] और खलीलुल्ला ख़ाँ[2] मीर बख्शी का सौतेला भाई था। इस वंश का हाल इसके पितामह मीर ख़लीलुल्ला यज्दी[3] के वृत्तांत में विस्तार से दिया जा चुका है और उसका परिशिष्ट आवश्यक समझ कर भाइयों की जीवनियों में दिया गया है। उसीका कुछ बचा अंश उचित समझकर यहाँ लिखा जाता है। जब मीर ख़लीलुल्ला यज्दी ईरान के शाह अब्बास प्रथम की कठोरता से अपने देश और निवास-स्थान से मन हटाकर हिंदुस्तान चला आया तब जहाँगीर ने उसके दूर से आने को महत्व देकर उसपर बहुत कृपा की। कुछ दिन बाद उसका पुत्र मीर मीरान भी शाह के यहाँ से भागकर गिरता पड़ता जहाँगीर की शरण में पहुँच कर संसार के कष्ट से छूटा। [4]उस घबड़ाहट और उपद्रव में अपने अल्प-वयस्क पुत्रों असालत ख़ाँ और खलीलुल्ला खाँ को साथ न ला सका तथा वे ईरान में रह गए। इसकी प्रार्थना पर जहाँगीर ने इसके पुत्रों को भेज देने के लिए शाह के पास ख़ानआलम के द्वारा, जो राजदूत होकर गया हुआ था, संदेश भेजा और

१. मआसिरुल् उमरा हिंदी भा० २ पृ० ३४७–५१ देखिए।

२. इसी भाग का ३५वाँ शीर्षक देखिए।

३. इसी भाग का ३६वाँ ,, ,, ।

४. मीर खलीलुल्ला यज्दी की जीवनी में उसीके साथ आना लिखा है।

शीलवान शाह ने भी बिना किसी अप्रसन्नता के उनको उक्त ख़ाँ के पास भेज दिया। जब मीर मीरान ने हिंदुस्तान में रहना निश्चय किया और उसके वंश की उच्चता तथा भलाई सूर्य सी और प्रतिष्ठा तथा विश्वास चंद्र सा प्रकट था तब यमीनुद्दौला आसफ़ ख़ाँ ख़ानख़ानाँ की बड़ी पुत्री सालिहा बेगम इसे निकाह में दी गई। उसके गर्भ से मिर्ज़ा अब्दुल् काफ़ी और इसकी बहिन शाहज़ादा बेगम पैदा हुई, जिसका मिर्ज़ा हसन सफ़वी के पुत्र सफ़शिकन से निकाह पढ़ाया गया। अब्दुल् काफ़ी बराबर साहिबकिरान सानी शाहजहाँ की कृपादृष्टि में पालित हुआ। १९वें वर्ष में इसे नवाज़िश ख़ाँ की पदवी मिली और क्रमशः ढाई हज़ारी मंसब तक पहुँचा। ३१वें वर्ष में मिर्ज़ा सुलतान सफ़वी के स्थान पर क़ोरबेगी नियत हुआ। औरंगज़ेब के राज्यकाल में यह मांडू का फ़ौजदार हुआ, जो मालवा प्रांत के बड़े दुर्गों में से है। ८वें वर्ष में वहीं इसकी मृत्यु हो गई।

नसीर खाँ, रुक्नुद्दौला सैयद लश्कर ख़ाँ बहादुर

इसका नाम मीर इस्माइल था। इसके पूर्वज गण बलख़ के अंतर्गत सरपाल के निवासी थे। इसका वंश मीर सैयद अली दीवाना तक पहुँचता है, जिसका मक़बरा पंजाब मौजे में बना हुआ है और जो शाह नेअमतुल्ला वली के वंश में से है। इसका चाचा सैयद हाशिम ख़ाँ बादशाही सेवा में विशेषता रखता था। मीर इस्माइल का पिता शीघ्र मर गया था इसलिए हाशिम ख़ाँ ने इसका पालन किया था। इसने 'बिरादरी ख़ास' के सेवकों में, जिससे मुग़ल सर्दारों से तात्पर्य है, भर्ती होकर मुसाफिर ख़ाँ की पदवी पाई। मुहम्मद शाह के राज्य के १ म वर्ष में आलमअली ख़ाँ के युद्ध में निजामुल्मुल्क आसफ़जाह के साथ रह कर इसने बहुत प्रयत्न किया और अपने सामने के शत्रु को परास्त कर दिया। इसके अनंतर जब उक्त बहादुर मुहम्मदशाह के बुलाने पर दरबार में उपस्थित हुआ तब उसने इसकी वीरता तथा साहस को बादशाह को बख़ूबी समझा दिया। इससे यह काबुल प्रांत के अटक की फौजदारी पर नियत कर दिया गया। इसके बाद यहाँ से त्यागपत्र देकर यह आसफ़अली के पास दक्षिण चला आया और सैयद लश्कर ख़ाँ की पदवी के साथ कुल सरकार का बख़्शी नियत हुआ। कुछ दिन औरंगाबाद के अंतर्गत राजबंदरी का प्रबंध ठीक करने पर नियत रहा और तब औरंगाबाद प्रांत का शासक बहुत दिनों तक रहा। इसके अनंतर आसफ़जाह के साथ हिंदुस्तान जाकर

इसने नादिरशाह की घटना में अच्छा कार्य किया। जब दक्षिण में राजा साहू की ओर से उसके सर्दार बाजीराव ने उपद्रव किया और नासिरजंग शहीद से युद्ध हुआ तथा उक्त राव पूरा दंड पाकर कुछ समय बाद मर गया तब उक्त खाँ आसफ़जाह की आज्ञा से दक्षिण आकर मृत के भाई तथा पुत्र के यहाँ शोक मनाने जाकर उससे व्यवहार बनाया। फिर हिन्दुस्तान लौटकर सन् ११५३ हि० में दक्षिण आया। नसीरुद्दौला की मृत्यु पर यह औरंगाबाद की सूबेदारी का नायब हुआ, मंसब बढ़कर चार हजारी २००० सवार का हो गया और झंडा तथा डंका पाकर सम्मानित हुआ। नासिरजंग शहीद के राज्य-काल में इसे नसीरजंग की पदवी मिली। फूलचेरी के युद्ध के बाद यह औरंगाबाद का फिर सूबेदार हुआ। मृत सलाबतजंग के समय में इसका मंसब बढ़कर छ हज़ारी ६००० सवार का हो गया और रुकुद्दौला की पदवी के साथ वकील मुतलक के पद पर नियत हुआ। इसके बाद इस पद से त्यागपत्र देने पर यह बरार प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। जब उक्त कार्य निज़ामुद्दौला आसफ़जाह को मिला तब यह औरंगाबाद का अध्यक्ष नियत हुआ। सन् ११७० हि० (सन् १७५७ ई०) में यह मर गया। यह अपने सुव्यवहार और 'शरीअत' के रसम के मानने में प्रसिद्ध था। यह विद्वानों तथा फ़कीरों की प्रतिष्ठा करता तथा दान देता था। यह राजनैतिक कार्यों से प्रेम रखता था पर माली काम कम समझता था। इसको संतानें थीं। इसके चचेरे भाई सैयद आरिफ़ खाँ और शरीफ़ खाँ लाहौर से इसके पास आए थे, जिनमें हर एक से इसने अच्छा सलूक किया। अपनी

एक पुत्री का निकाह इसने सैयद ज़रीफ ख़ाँ के छोटे पुत्र मीर जुमला से कर दिया। लिखते समय इसका मंसब पाँच हजारी ५००० सवार का था और पदवी अज़ीमुद्दौला नसीरजंग बहादुर थी। उस समय यह औरंगाबाद के शासन के साथ निज़ामुद्दौला आसफ़जाह बहादुर की सरकार के मुहालों का, जो उक्त प्रांत में थे, मुत्सद्दी का कार्य भी करता था। यह उस सर्दार का कृपापात्र भी था। बड़ा भाई रफ़अतुद्दौला बहादुर जोरावर जंग की पदवी से बहुत दिनों तक उसी सरकार में मुगलों के रिसाले का बख़्शी रहा। उस समय यह नानदेर के शासक का प्रतिनिधि होकर कार्य करता था। इसका मंसब पाँच हजारी था और यह निर्भीक तथा स्वच्छ हृदय का था।

नसीरुद्दौला सलाबतजंग

यह अब्दुर्रहीम ख़ाँ के नाम से प्रसिद्ध था और मायंदरीख़ाँ फीरोजजंग का भाई था। औरंगजेब के समय इसे ख़ाँ की पदवी मिली और बहादुरशाह के समय चीन .कुलीज ख़ाँ की पदवी तथा जौनपुर की फौजदारी मिली। इसके बाद निज़ामुल-मुल्क आसफजाह बहादुर के साथ कालयापन करने लगा। जब आसफजाह मालवा से दक्षिण की ओर चला आया तब यह भी उसके साथ आकर सैयद दिलावर अली के युद्ध में अगल रहा। आलमअली के साथ के युद्ध में यह मध्य में रहा। विजय होने तथा औरंगाबाद पहुँचने पर सन् ११३२ हि०, सन् १७२० ई० में इसे पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब और नसीरु-द्दौला सलाबतजंग की पदवी मिली। दूसरे वर्ष मरहमत ख़ाँ के स्थान पर बुर्हानपुर का सूबेदार नियत हुआ। जब आसफजाह बहादुर को दरबार पहुँचने पर वजीरी का खिलअत मिला और हैदर .कुली ख़ाँ को दंड देने के लिए वह अहमदाबाद भेजा गया तब आसफजाह के बुलाने पर यह अपने ताल्लुका से शीघ्र आकर उससे मिल गया। वहाँ का कार्य निपट जाने पर अपने ताल्लुका को लौट गया। मुबारिज़ ख़ाँ एमादुलमुल्क के युद्ध में यह सेना के बाएँ भाग का अध्यक्ष रहा। विजयोपरांत इसका मंसब बढ़कर सात हजारी ७००० सवार का हो गया। अज़ुद्दौला की मृत्यु के अनंतर आसफजाह के बुलाने पर जाकर यह औरंगा-

वाद का अध्यक्ष हुआ और बुर्हानपुर का प्रबंध हफ़ीजुद्दीन ख़ाँ को दिया गया।

जब दूसरी बार आसफजाह दरबार गया और नासिरजंग शहीद को अपना प्रतिनिधि बनाकर औरंगाबाद में छोड़ा तब सन् ११४८ हि० में बुर्हानपुर की सूबेदारी फिर नसीरुद्दौला को मिली। नादिरशाह के आने व चले जाने के बाद बादशाह से विदा होकर जब आसफजाह दक्षिण लौटकर बुर्हानपुर के पास पहुँचा तब इसने स्वागत के लिए बाहर निकलकर भेंट किया। जब आसफजाह त्रिचिनापल्ली की ओर रवानः हुआ तब इसे बुर्हानपुर के शासन के साथ साथ औरंगाबाद का फिर अध्यक्ष नियत किया। उसी वर्ष सन् ११५६ हि०, सन् १७४३ ई० में इसकी मृत्यु हो गई।

यह बहुत मिलनसार और आतिथ्य प्रेमी था तथा सैर करने व घड़ी घड़ी पोशाक बदलने में प्रसिद्ध था। बुर्हानपुर में इसने मकान बनवाया था। औरंगाबाद के बाहर खिज़री तालाब पर का 'तमाशा मंज़िल' नामक बँगला इसी का बनवाया है। इसके यहाँ मुग़ल जाति के अधिक नौकर थे। एक पुत्र मुजाहिद ख़ाँ नाम का था, जिस पर आसफजाह का बहुत स्नेह था पर वह सादा आदमी था। अंत में फकीर हो गया और बुर्हानपुर के पिता के बनवाए मकान का अमला बेच-बेच कर बहुत दिन खाता रहा। ज्ञात नहीं कि कहाँ गया।

नामदार ख़ाँ

यह जुम्लतुल्मुल्क जाफ़र ख़ाँ[1] का बड़ा पुत्र था। इसकी माता फ़र्ज़ानः बेगम मुमताजमहल की बहिन थी। शाहजहाँ के जलूस के १९ वें वर्ष में जब बादशाह काबुल गए और जाफ़र ख़ाँ लाहौर का सूबेदार नियत हुआ तब इसे पाँच सदी १०० सवार का मंसब मिला। २३ वें वर्ष में जब उक्त ख़ाँ दिल्ली प्रांत का सूबेदार हुआ तब इसका मंसब बढ़कर एक हजारी २०० सवार का हो गया। २४ वें वर्ष में जब इसका पिता बिहार का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ तब इसके मंसब में पाँच सदी ४०० सवार और बढ़ाए गए। २८ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दो हज़ारी १००० सवार का हो गया। २९ वें वर्ष में इसे झंडा मिला। ३१ वें वर्ष में हयात ख़ाँ के स्थान पर दौलतखानः खास का दारोगा नियत हुआ और इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी १५०० सवार का हो गया। इसके अनंतर जब सुलतान मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर ने दक्खिन से आकर समूगढ़ के पास दाराशिकोह से युद्ध किया और दाराशिकोह भागकर लाहौर की ओर चला गया तथा बहुत से दरबार के आदमी आलमगीर की सेवा में उपस्थित हुए तब यह भी सेवा में पहुँचा और इसने खिलअत पाई।

---

१. इसी भाग में ८६ वाँ शीर्षक देखिए।

कुछ दिनों के अनंतर महाराज जसवंतसिंह की सहायता के लिए दक्षिण जाकर इसने बहुत प्रयत्न किया और ७ वें वर्ष में यह आज्ञानुसार दरबार लौट आया। ९ वें वर्ष में कोष को, जो पहिले आगरे से दिल्ली मँगवा लिया गया था और उक्त वर्ष उसे वहीं भेज देना बादशाह ने निश्चय किया, तब यह वहाँ उसे सुरक्षित पहुँचाने पर नियत हुआ। इसी वर्ष बादशाह और ईरान के शाह अब्बास द्वितीय के बीच मनोमालिन्य पैदा हो गया और सुलतान मुअज्जम ससैन्य अगल के तौर पर काबुल में नियत हुआ तब यह भी खिलअत, घोड़ा और तरक्की सहित चार हजारी ३००० सवार का मंसब पाकर उक्त शाहजादे के साथ भेजा गया। १० वें वर्ष में यह मुरादाबाद सरकार का फौजदार नियत हुआ और इसे खिलअत और सोने के साज सहित घोड़ा मिला। १३ वें वर्ष दरबार आकर यह सेवा में उपस्थित हुआ। इसी वर्ष इसका पिता जाफ़र ख़ाँ वज़ीर का काम करते हुए मर गया तथा सुलतान मुहम्मद आज़म और मुहम्मद अकबर नामदार ख़ाँ तथा कामगार ख़ाँ[1] के गृह पर शोक मनाने के लिए जाने को नियत हुए। इन दोनों के लिए ख़ास खिलअत और उनकी माता के लिए योग्य 'तोरा' भेजा गया। सुलतान मुहम्मद अकबर दोनों को शोक से उठाकर दरबार लिवा गया। हरएक को जड़ाऊ जमधर मोती के झूमड़ के साथ देकर तथा अन्य कृपाकर सान्त्वना दी गई।[2] १४ वें वर्ष में

१. इसी भाग में १३ वाँ शीर्षक देखिए।

२. मूल फारसी ग्रंथ में टिप्पणी में मआसिरे आलमगीरी का उद्धरण जाफर खाँ की मृत्यु के विषय में दिया गया है, जो उक्त विवरण से कुछ

यह आगरा प्रांत का शासक नियत हुआ। १७ वें वर्ष में दंडित होने पर इसका मंसब छिन गया और चालीस सहस्र रुपया वार्षिक नियत होने पर यह ओवगढ़ में एकांतवास करने लगा। १८ वें वर्ष में पुनः कृपापात्र होने पर चार हजारी २००० सवार का मंसब वहाल हुआ और सादात खाँ के स्थान पर यह अवध का सूबेदार नियत हुआ। यहाँ से बदलकर दरबार में रहने लगा, जहाँ इसकी मृत्यु हुई। इसका पुत्र मरहमत खाँ दौलतदार था, जो २५ वें वर्ष आलमगीरी में अज़ीमुश्शान के साथ अजमेर की ओर नियत हुआ। २८ वें वर्ष में दक्खिन के अंतर्गत गढ़[1] नमूना का थानेदार नियत हुआ। २९ वें वर्ष में कोष को बीजापुर पहुँचाने पर नियुक्त किया गया।[2]



विस्तृत है। ८६ वें शीर्षक में जाफर खाँ की जीवनी में भी यह विवरण है। ऐसा ज्ञात होता है कि यह वृत्तांत मआसिरे आलमगीरी ही से लिया गया है।

१. मआसिरे आलमगीरी में 'कद: नमून:' है।

२. ,, लिखा है कि जीकदः महीने में मुदकल का थानेदार हुआ और जमादिउल् अव्वल में कोष पहुँचाने पर नियत हुआ।

नासिर ख़ाँ मुहम्मद अमान

यह हुसेन बेग खाँ का पुत्र था। यह औरंगजेब के राज्य में काबुल प्रांत में नियत हुआ और वहाँ उन्नति कर इसने नासिर खाँ की पदवी पाई। बहादुरशाह बादशाह के राज्यकाल के आरंभ में, जब इब्राहीम खाँ काबुल का सूबेदार होकर पदानुकूल वहाँ का प्रबंध जैसा चाहिए न कर सौधरः में, जो उसे पुरस्कार में मिला था, जा बैठा तब वहाँ की सूबेदारी नासिर खाँ को मिली। फर्रुखसियर के राज्यकाल के अंतिम समय में स्यात् सन् ११२९ हि० (सन् १७१७ ई०) में यह मर गया। इसका पुत्र नसीरी खाँ अपने पिता के स्थान पर वहाँ का सूबेदार हुआ। इसकी माता अफ़ग़ान जाति की थी इससे इसने उस प्रांत का प्रबंध अच्छी प्रकार किया और मुहम्मदशाह के राज्य के दूसरे वर्ष में जब निजामुल्मुल्क वज़ीर था इसे वह पद स्थायी रूप में तथा पिता की पदवी मिल गई। जब नादिरशाह हिंदुस्तान जाने के लिए काबुल आया तब यह पेशावर में था। जब नादिरशाही सेना सन् ११५१ हि०, सन् १७३९ ई० में पेशावर पहुँची तब यह उससे युद्ध कर कैद हो गया और कुछ दिन तक कैद में रहा। लाहौर पहुँचने पर नादिरशाह ने इसका दोष क्षमा कर पहिले की तरह काबुल का सूबेदार नियत कर दिया और दिल्ली से लौटने पर भी इसे उस पद पर बहाल रखा। इसने बहुत दिन वहीं व्यतीत किए। दुर्रानी शाह के उपद्रव के

समय काबुल का शासन इसके हाथ से निकल गया। यह शाह-नवाज़ खाँ मिर्ज़ा फुलौरी के पास चला आया और बाद को दिल्ली आकर सन् ११६१ हि०, सन् १७४८ ई० में एतमादुद्दौला क़मरुद्दीन खाँ बहादुर के साथ दुर्रानी शाह से युद्ध करने गया। इसके बाद मुईनुलमुल्क के साथ पंजाब जाकर कुछ महाल सुपुर्दी में ले लिए। जब दोनों में मनोमालिन्य हो गया तब यह फिर दिल्ली चला आया। इंतज़ामुद्दौला के मंत्रित्वकाल में अहमद खाँ बंगश के यहाँ फर्रुख़ाबाद गया और वहाँ स्वागत होने से यह वहीं कालयापन करने लगा। अंत में वहीं इसकी मृत्यु हुई।

खानज़माँ शेख निज़ाम

यह हैदराबाद का रहनेवाला था। यह दक्षिण के सैनिक वृत्ति करनेवाले शेखों में से था। इसने उदारता तथा साहस के कारण उन्नति की। तिलिंगाना के हाकिम अबुल्हसन के राज्य-काल में यह सरदारी के पद तक पहुँच गया और सेनापतित्व, सरदारी तथा सैन्य-संचालन में इसने अच्छा नाम कमाया। गोलकुंडा के घेरे में कुतुबशाही सेना का अध्यक्ष होकर दुर्ग के बाहर बादशाही सेना के साथ युद्ध किया। एक दिन मोर्चे पर खाँ फीरोजजंग से जब इसका सामना हुआ तब घोर युद्ध हुआ और दोनों ओर से खूब प्रयत्न हुए। बादशाही सेना के वीरों ने बहुत कुछ वीरता से चाहा कि अपनी ओर के सैनिकों की लाशें उठा ले जायँ पर न कर सके और ये सब अपने आदमियों के शवों को उस ओर के कुछ लाशों के साथ उठा ले गए।

जब अबुल्हसन का सौभाग्य तथा प्रभाव बिगड़ने लगा और दुर्दशा तथा राज्यभ्रष्टता प्रतिदिन बढ़ती चली तब इसने उसका साथ और स्वामिभक्ति छोड़कर विश्वसनीय मध्यस्थता द्वारा औरंगजेब की सेवा का प्रार्थी हुआ। अबुल्हसन के अच्छे अच्छे सेवक लालच में पड़कर मंसब तथा शासन की आशा में अपने अपने कामों को छोड़कर बादशाही सेवा में पहुँचे थे पर इस समय तक इसके सिवा कोई दूसरा सेना सहित नहीं आया था, इसलिए इसका हटना अबुल्हसन के काम बिगड़ने का



खानजमाँ शेख निजाम

कारण समझ कर बहुत से लोगों को उक्त खाँ के स्वागत के लिए नियत किया। इसके सेवा में पहुँचने पर इसे छः हजारी ५००० सवार का मनसब, मोकर्रब खाँ की पदवी, झंडा व डंका, एक लाख रुपया नक़द, अरबी एराकी घोड़े, भारी हाथी और दूसरी वस्तुएँ पुरस्कार में देकर शाही कृपा दिखलाई। इसके पुत्रों तथा संबंधियों को अच्छे अच्छे मनसब दिए, जिनमें कुछ चार हजारी से कम नहीं थे और इन सब का मनसब मिलाकर पचीस हजारी २१००० सवार हो गया। हैदराबाद पर अधिकार करने के अनंतर जब बादशाही सेना बीजापुर के पास द्वितीय बार पहुँची तब इसको, जो सैनिक शिक्षा तथा सेनापतित्व में अद्वितीय था, परनाला दुर्ग घेरने को नियत किया, जो शत्रु के अधिकार में था। उक्त खाँ ने सतर्कता तथा होशियारी से अपने जासूसों को शंभाजी का समाचार लाने को नियत किया, जो अपने पिता की मृत्यु पर दक्षिण का सरदार व राजाधिराज हो गया था। एकाएक समाचार मिला कि वह वैरागी जाति की शत्रुता के कारण, जिनसे कि वह दामादी का सम्बन्ध रखता था, राहिरी से खेलना दुर्ग पहुँच गया है और उस जाति से शान्ति स्थापित करने के अनंतर आ द करने के विचार से दुर्ग से संगमनेर नामक स्थान में चला आया है, जहाँ उसके मंत्री कवि कलश ने बहुत से महल और बड़े बड़े बाग बनवा रखे थे तथा यहाँ वह आनंद करने में लगा हुआ है। शेख निज़ाम कोल्हापुर से, जो वहाँ से ४५ कोस पर था और जिसके बीच में भयानक स्थान थे, स्वामिभक्ति के कारण प्राण का भय छोड़कर चुने हुए कुछ

सिपाहियों के साथ धावा किया। शंभाजी के जासूसों ने कितना कहा कि मुग़ल सेना आ रही है, पर उस घमंड तथा मूर्खता में मस्त जीव ने उन सबों की गर्दन मरवा दी और व्यंग्य बोलने लगा कि ये दीवाने बेखबर हो गए हैं। क्या मुग़ल सेना यहाँ पहुँच सकती है? यहाँ तक कि वह बहादुर खाँ बहुत सब्र के साथ परिश्रम उठाता हुआ और कितने स्थानों पर पैदल राह तै करता हुआ ३०० सवारों के साथ बिजली के समान फुर्ती से उसके सिर पर जा पहुँचा। वह नशे में चूर चार पाँच सहस्र दक्षिणी भालेवाले सवारों के साथ युद्ध को आया। एकाएक भाग्य से छुटी हुई एक तीर कवि कलश को लगी और थोड़े ही मारकाट के अनंतर वह भागा और कवि कलश की हवेली में जा बैठा। वह स्वयं, कवि कलश तथा उसके पचीस सरदारगण'अपनी स्त्रियों तथा पुत्रियों के साथ, सिवा उसके छोटे भाई सवाई रामराजा के जो किसी दुर्ग में था, कैद हुए। इन्हीं में इसका बड़ा पुत्र राजा साहु भी था, जो सात आठ वर्ष का था। जब यह शुभ समाचार एकलौज में बादशाह के पास पहुँचा तब उस स्थान का नाम साहनगर रखा गया। इसके अनंतर जब यह विजयी खाँ उस भयानक स्थान से अनेक उपायों द्वारा बाहर निकला तब उसके सैनिकों तथा सहायकों ने इसको रोकने का साहस न किया और यह बहादुरगढ़ में बादशाह के पास पहुँच गया। शंभाजी कैद में डाल दिए गए। उस समय औरंगजेब तख्त से उतर कर और कालीन का एक कोना हटाकर खुदा का सिजदः बजा लाया। इस घटना की तारीख 'बाजनो फर्जन्द शुद संभा असीर' से निकलती

है। इस बड़ी सेवा के उपलक्ष में उक्त खाँ का मंसब बढ़ाकर सात हजारी ७००० सवार का कर दिया गया और इसे खानजमाँ फतहजंग की पदवी, पचास सहस्र रुपया नक़द तथा दूसरे प्रकार की वस्तुएँ दी गईं। इसके पुत्रों तथा मित्रों का मनसब बढ़ाया गया तथा पुरस्कार भी दिए गए। इसके अनंतर खानजमाँ बहुत दिनों तक शाहजादा महम्मद आजमशाह की सेना में नियत रहा। ३७ वें वर्ष में शाहजादा पेट फूलने की बीमारी से बादशाह के पास चला आया और खानजमाँ भी सेवा में उपस्थित होकर तथा पुत्रों और संबंधियों के साथ अच्छी प्रकार पुरस्कृत होकर शाहजादा बेदारबख्त के साथ दुष्ट शत्रु को दंड देने पर नियत हुआ। ४० वे वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। इसे बहुत संतान थी। इसके पुत्रों में खानआलम और मुनौवर खाँ सुप्रसिद्ध हो गए हैं, जिनके वृत्तांत अलग दिए गए हैं। दूसरा पुत्र फरीद साहेब था, जो अपने भाइयों के साथ आजमशाह के युद्ध में लड़ते हुए मारा गया। अमीन खाँ का वृत्तांत भी अलग दिया गया है। एक अन्य पुत्र हुसेन मुनौवर खाँ था, जो हैदराबाद में रहने लगा था और आसफजाह के राज्य में मुर्तजा नगर का आमिल था। सन् ११५८ हि० में यह मर गया। इसके पुत्र गण सरकार के हिसाब के उत्तरदायी हैं। दूसरा निजामुद्दीन खाँ था जिसे औरंगजेब ने उसके पिता की इच्छा के अनुसार कृपा कर अपने यहाँ पालन-पोषण कराया था और राजा साहू की बहिन के साथ निकाह पढ़वा दिया था, जो पसंद आ गई थी। उसकी चाल मुग़लों के समान थी और पिता तथा भाइयों से उसकी कोई समानता न

थी। यह औरंगाबाद में रहता था। यह प्रसिद्धि से खाली न था। यह कंजूसी के साथ दिन व्यतीत करता था। यह सन् ११५५ हि० में मर गया। इसके पुत्रगण, जो आपस में वैमनस्य रखते थे, पिता की संपत्ति के लिए बहुत दिनों तक आपस में लड़ते रहे।

निजामुद्दीन अहमद, ख्वाजा

यह ख्वाजा मुकीम हरवी का पुत्र था, जो बाबर बादशाह के सेवकों में भर्ती होकर उस राज्यकाल के अंत में बयूतात का दीवान नियत हो चुका था। बाबर की मृत्यु के अनंतर मिर्जा असकरी के पास पहुँच कर, जिसे हुमायूँ बादशाह ने गुजरात विजय करने के बाद अहमदाबाद दे रखा था, यह मिर्जा का वजीर नियत हुआ। चौसा के युद्ध में शेर खाँ सूर के विजयी होने पर जब हुमायूँ कुछ सवारों के साथ आगरे की ओर भागा तब यह भी उन सवारों में से एक था। इसके अनंतर अकबर बादशाह की सेवा में सम्मानित होकर रहा। ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद सचाई में अपने समय का अद्वितीय और योग्यता तथा समझदारी में सबसे बढ़कर था। ज़खीरतुल् खवानीन में जो कुछ लिखा गया है वह अन्यत्र नहीं दिखाई देता क्योंकि ख्वाजा निजामुद्दीन आरंभ में अकबर बादशाह का दीवान हुजूर था। २९ वें वर्ष जब एतमाद ख़ाँ गुजराती गुजरात का शासक नियत हुआ तब ख्वाजा उस प्रांत का बख्शी नियत हुआ। सुल्तान मुजफ्फर गुजराती के विद्रोह के समय एतमाद ख़ाँ ने अपने पुत्र को इसके पुत्र के साथ नगर की रक्षा के लिए छोड़ा और स्वयं ख्वाजा के साथ शहाबुद्दीन अहमद खाँ को लाने के लिए गढ़ी कसबा गया, जो अहमदाबाद से बीस कोस पर है। इसी बीच नगर उपद्रवियों के अधिकार में चला गया और ख्वाजा का घर

भी लुट गया। इसके अनंतर शहाबुद्दीन अहमद खाँ तथा एतमाद खाँ के साथ ख्वाजा ने उस युद्ध में, जो विद्रोहियों के साथ हुआ था, थोड़ी सेना के साथ बहुत जोर मारा पर सफल न हुआ तब अंत में निराश होकर पर मित्रों का साथ न छोड़कर उनके संग पत्तन चला गया। सुलतान मुजफ्फर गुजराती को दमन करने के लिए बादशाह ने खानखानाँ को नियत किया था और उसने अहमदाबाद से तीन कोस पर सरखेज में शत्रु से युद्ध करने की तैयारी की। उसने ख्वाजा को कुछ सरदारों के साथ नियत किया कि शत्रु के पीछे पहुँच कर आक्रमण करने में प्रयत्न करे। उस दिन बहुत परिश्रम कर मुजफ्फर का पीछा करने में इसने कोई प्रयत्न उठा न रखा और कई युद्ध किए। यह उस प्रांत में बहुत दिनों तक बख्शी का कार्य करता रहा।

जब सन् ९९८ हि० में जलूस के ३४ वें वर्ष में गुजरात का शासन मालवा के सूबेदार खानआजम को मिला और खान-खानाँ को गुजरात की जागीर के बदले जौनपुर दिया गया तब निजामुद्दीन अहमद भी दरबार बुला लिया गया। यह कुछ साँडनी सवारों के साथ छ सौ कोस का मार्ग बारह दिन में धावे की तरह तै कर ३५वें वर्ष के आरंभिक जशन में लाहौर पहुँच कर सेवा में उपस्थित हुआ। इसके पास कुछ विचित्र तमाशे थे, इसलिए आज्ञा हुई कि सब साँडनी सवारों को सामने ले आवे। इसके अनंतर ख्वाजा पर बादशाही कृपाएँ हुईं और इसका सम्मान बढ़ा। ३७ वें वर्ष में जब आसफ खाँ मिर्जा जाफर बख्शी जलाल रोशानी को दमन करने के लिए नियत हुआ तब ख्वाजा बख्शीगीरी के उच्च पद पर नियत होकर

प्रतिष्ठित हुआ। ३९वें वर्ष में सन् १००३ हि० के आरंभ में जब अकबर बादशाह शिकार के लिए बाहर निकला तब शाहे-मली के पास ज्वर बढ़ने से ख्वाजा का हाल बिगड़ गया। उसके पुत्र छुट्टी लेकर उसे लाहौर ले आए। रावी नदी के तट पर पहुँचा था कि इसकी मृत्यु हो गई। तबक़ाते अकबरी इसकी लिखी हुई है। अकबर बादशाह के ३८वें वर्ष सन् १००२ हि० तक का हिंदुस्तान का वृत्तांत इसमें लिखा गया है और लिखा है कि यदि अवस्था मिली तो अग्रलेख भी तैयार कर इस पुस्तक में जोड़ दूँगा और नहीं तो जो कोई चाहे कृपाकर उसे लिख सकता है। समाचारों को तैयार करने और उन्हें एकत्र करने में इसने बहुत परिश्रम किया था और मीर मासूम भक्करी आदि से विद्वान् इसकी रचना में सहायक रहे। इसलिए इस रचना पर पूरा विश्वास है। यह पहिला इतिहास है, जिसमें विशाल हिंदुस्तान के कुल मुसलमान सुलतानों का वृत्तांत दिया गया है, जिसे भौगोलिकों ने पृथ्वी की चार दांग भूमि कहा है। फिरिश्ता इतिहास का लेखक और उसके परवर्ती लेखकगण इस रचना के प्रेमी हैं परंतु इस ग्रंथ की पंक्तियों से प्रगट हुआ कि स्थान-स्थान पर यह अबुल्फ़ज़ल का विरोधी है। इनमें हरएक का रुतबा सभी पर प्रगट है।

इसके पुत्रों में एक मिर्ज़ा आबिद ख़ाँ था, जो जहाँगीर के समय में बादशाही कृपा का पात्र होकर सेवा में भर्ती हो गया। गुजरात प्रांत की बख़्शीगिरी करते समय, जो इसे पैतृक स्वत्व के अनुसार मिली थी, वहाँ के प्रांताध्यक्ष अब्दुल्ला ख़ाँ फ़ीरोज़जंग से इसकी बिगड़ गई। उक्त ख़ाँ ने, जो निर्भय तथा

निर्दय था, इससे घृणा कर इसे बेइज्जत कर डाला। यह अपना काम छोड़कर कुछ मुग़लों के साथ टोपी कफ़नी पहन कर जहाँगीर के दरबार में उपस्थित हुआ, इस कारण इसका दोष क्षमा कर दिया गया परंतु इसके बाद युवराज शाहजादा शाहजहाँ की शरण में जाकर उसकी सेवा में भर्ती हो गया। यह शाहजादा का दीवान नियत हुआ। अकबरनगर बंगाल में एक दिन जब शाहजादा ने इब्राहीम ख़ाँ फतहजंग के पुत्र के मकबरे पर आक्रमण किया तब आबिद खाँ दीवान तथा शरीफ ख़ाँ बख्शी कुछ अन्य लोगों के साथ युद्ध में मारे गए। आबिद खाँ को पुत्र न थे। इसका दामाद मुहम्मद शरीफ कुछ दिन शाहजहाँ के राज्यकाल में दक्षिण के अनकी तनकी का दुर्गाध्यक्ष रहा। इसके अनंतर यह हैदराबाद का अध्यक्ष होकर वहीं मर गया।

निज़ामुद्दौला बहादुर नासिरजंग

यह एक सर्दार धर्म का पोषक, न्याय करनेवाला, लज्जा-शील, साहसी तथा युद्ध और आनंद में दृढ़ था। शरीअत की आज्ञाओं के प्रचार में बहुत प्रयत्नशील रहता था। लाचार तथा निराश्रय फरियादियों के न्याय करने में बहुत ध्यान देता था। बात करने में शिष्टता तथा अनेक प्रकार के चुटकुले का प्रयोग करने में अद्वितीय था। उच्च आकांक्षावाले सुलतानों की जीवनी की घटनाओं का उल्लेख कर सुननेवालों के कानों को विचारों से भर देता था। अपनी बातचीत के अभ्यास को मिर्ज़ा सायब के उद्धरणों से ऐसा पुष्ट कर देता था कि साहित्यिक समालो-चकों तथा भाषा मर्मज्ञों की भी शक्ति न थी कि उसमें कुछ भी शिथिलता निकाल सकें। समझदारी की अवस्था प्राप्त होने के आरंभ ही से साहस तथा वीरता के उत्साह में इसने बड़े-बड़े देशों को विजय करने का ध्येय बना रखा था। सन् ११५० हि०, सन् १७३७ ई० में नवाब आसफ़जाह मुहम्मदशाह बादशाह के बुलाने पर दिल्ली चला गया और दक्षिण के प्रांतों का प्रबंध अपने इसी सुपुत्र को प्रतिनिधिरूप में सौंप गया। निज़ामुद्दौला राज्य का प्रबंध तथा नगरों की रक्षा करता रहा और प्रजा की शांति तथा सुख के लिए इसने अच्छे उपायों द्वारा प्रयत्न भी किया। राज्य से संबंध रखनेवाले भले तथा सुशील लोगों को पुरस्कार, मंसब, पदवी तथा जागीर देकर अपना

कृपापात्र बनाया। मराठों को, जिन्होंने दक्षिण में राज्य स्थापित कर मालवा पर अधिकार कर लिया था और दिल्ली के पास तक पहुँच गए थे, पूरा दंड दिया और दक्षिण को लूटमार से सुरक्षित किया। जब नवाब आसफ़जाह राजधानी दिल्ली से दक्षिण को लौटा तब नवाब निज़ामुद्दौला को दुष्टों ने युद्ध करने के लिए बाध्य किया और युद्ध भी हुआ, जिसका विवरण निज़ामुल्मुल्क की जीवनी में दिया गया है। सन् ११५५ हि० में नबाब आसफज़ाह ने पुत्र को क्षमा कर दिया। सन् ११५८ हि० में इस पर हैदराबाद में कृपा की तथा औरंगाबाद की सूबेदारी देकर वहाँ विदा किया। सन् ११५९ हि० में नवाब आसफजाह ने हैदराबाद से धारवर पहुँचकर पुत्र को औरंगाबाद से अपने पास बुलाया और नवाब निज़ामुद्दौला भी वहाँ पहुँच गया। पिता-पुत्र राज्य संबंधी बातचीत करने को वाकिनकीरा की ओर गए। वहाँ से नवाब आसफजाह ने पुत्र को मैसूर की ओर भेजा कि वहाँ के नरेश से भेंट ले आवे तथा स्वयं औरंगाबाद गया। निज़ामुद्दौला श्रीरंगपत्तन पहुँचकर, जो मैसूर की राजधानी थी, भेंट वसूल कर पिता के पास औरंगाबाद गया। प्रायः साथ ही पिता तथा पुत्र दोनों बुर्हानपुर की ओर चले। नवाब आसफ़जाह बुर्हानपुर गए और नवाब निज़ामुद्दौला दक्षिण के शासन की मसनद पर सुशोभित हुआ तथा बुर्हानपुर से औरंगाबाद को गया, जो दक्षिण के खिलाफत की राजधानी थी। वर्षा ऋतु वहीं व्यतीत किया।

इसी समय हिंदुस्तान के बादशाह अहमदशाह साम्राज्य के कामों को ठीक करने के लिए, जो दरबार के सर्दारों के झगड़ों

के कारण बहुत अस्त व्यस्त हो गया था, अपने हस्ताक्षर से आमंत्रण का पत्र लिखा। नवाब दक्षिण के उपद्रवियों के कारण तथा नवाब आसफजाह के दौहित्र हिदायत मुहीउद्दीन ख़ाँ के विद्रोह की आशंका में, जो आसफजाह के राज्यकाल ही से रायचूर तथा अदोनी का शासक था, केवल बादशाही आज्ञा पूरी करने तथा कार्यों को ठीक करने के लिए भारी सेना तथा तोपखाना लेकर हिंदुस्तान की ओर चला तथा शीघ्रता से नर्मदा नदी तक पहुँचा। इसी समय बादशाह के खास हस्ताक्षर का पत्र दिल्ली न आने का पहुँचा। साथ ही हिदायत मुहीउद्दीन खाँ के विद्रोह और उपद्रव का समाचार बार-बार आया। इसलिए इसने औरंगाबाद लौटकर वहीं वर्षा ऋतु व्यतीत किया। इसी अवसर में अर्काट के नवायतों का एक सर्दार हुसेन दोस्त ख़ाँ उर्फ़ चंदा ने पहुँच कर हिदायत मुहीउद्दीन ख़ाँ को अर्काट ले लेने को उभाड़ा। हिदायत मुहीउद्दीन खाँ अर्काट को रवानः हुआ। वहाँ फूलचरी के बंदर के निवासी फिरंगी फ़रासीसियों की एक अच्छी सेना चंदा के द्वारा हिदायत मुहीउद्दीन ख़ाँ की सेना में आकर मिल गई। सब ने मिलकर अनवरुद्दीन ख़ाँ गोपा मऊ पर चढ़ाई की, जो नवाब आसफ़जाह के समय से अर्काट का शासक था और नासिरजंग के समय में जिसे शहामतजंग की पदवी मिली थी। १६ शाबानसन् ११६२ हि० को युद्ध हुआ, जिसमें शहामतजंग मारा गया।

प्रकट था कि इस समय तक फरासीसी तथा अंग्रेज ईसाई बंदरों ही में रहते थे और अपनी सीमा से पैर बाहर नहीं निकालते थे। हिदायत मुहीउद्दीन ख़ाँ ने ही इन सबको अपना

साथी बनाकर बढ़ाया। नवाब निज़ामुद्दौला का मारा जाना भी, जिसका वर्णन अभी आता है, फरासीसियों की सहायता से हुआ। इसके बाद ईसाइयों का घमंड तथा साहस बहुत बढ़ गया और फरासीसियों का साहस देखकर अंग्रेज भी उभड़ने लगे। अर्काट प्रांत का कुछ अंश फरासीसियों ने और कुछ अंग्रेजों ने ले लिया। अंग्रेज़ों ने बंगाल के नाज़िम से युद्ध किया और लड़कर बंगाल पर अधिकार कर लिया और सूरत बंदर तथा खंभात भी ले लिया। इस प्रकार ईसाइयों के राज्य की जड़ आरंभ करनेवाला हिदायत मुहीउद्दीन ख़ाँ ही है।

शहामतजंग के मारे जाने का समाचार पाते ही नवाब निज़ामुद्दौला अपने अध्यक्ष की सहायता को दक्षिण की सेनाओं तथा प्रसिद्ध सरदारों को तथा युद्धीय सामान को एकत्र कर सत्तर हजार सवार, अगणित तोपखाना तथा एक लाख पैदल सेना लेकर विद्रोहियों को दंड देने के लिए उस ओर चला और फुर्ती से कूच करते हुए फूलचरी बंदर पहुँचकर, जो औरंगाबाद से पाँच सौ कोस पर है, युद्ध की तैयारी की। २६ रबीउल् आखिर सन् ११६३ हि० (सन् १७५० ई०) को पूरे तीन प्रहर तक फिरंगी तोपखाना आग उगलता रहा। अंत में २७ तारीख को फिरंगी मुसल्मानों के प्रभाव तथा भय से भाग गए और हिदायत मुहीउद्दीन ख़ाँ पकड़ा गया। नवाब ने हिदायत मुहीउद्दीन ख़ाँ को कैद में रखा और उसके मुसाहियों तथा सैनिकों को जान व माल क्षमा कर दिया। यद्यपि नवाब के हितैषियों ने इसको बहुत से अकाट्य तर्कों से समझाया कि हिदायत मुहीउद्दीन ख़ाँ का जीवन विशेष उपद्रव

का कारण होगा और इसलिए उसे मार डालना चाहिए पर नवाब ने दया करके उसे मारना अस्वीकार कर दिया तथा उसे सुरक्षित रखकर उसकी सेवा के लिए आदमी नियत कर दिए। अन्यायियों ने इस अच्छी कृपा को नहीं पहिचाना और इस प्राणरक्षा की भलाई को भुलाकर गुप्त रूप से बुराई करने पर कमर बाँधी। फिरंगी भी ऐसी कड़ी पराजय पाकर उपद्रव तथा विद्रोह करने के अनेक उपाय सोचते रहे। उनके उपद्रव से दुर्ग की देख-रेख के लिए ठहरना आवश्यक समझकर नवाब अर्काट को चला और उनको दमन करने के लिए सेना नियुक्त किया। दुर्भाग्य से इस्लाम की सेना को पराजय मिली और दुर्ग जिंजी नसरतगढ़, जो कर्णाटक की राजधानी थी, फरासीसियों के अधिकार में चली गई। नवाब ने लज्जा के कारण तथा अपने मत की सहायता को और राजनैतिक कारणों से, क्योंकि हर एक कार्य का तुरंत उपाय करना चाहिए जिससे विद्रोहियों को उपदेश मिले, और वर्षा ऋतु की कठिनाई, घोर आँधियों, नदी पार करने का कष्ट तथा अन्न की कमी होते हुए भी स्वयं दंड देने को उस ओर रवाना हो गया। ११ शव्वाल सन् ११६३ हि० (सन् १७५० ई०) को इसने अर्काट से कूच किया और उक्त महीने की १७वीं को एक फकीर के कहने से निषिद्ध बातों को छोड़ दिया तथा उसके बाद मृत्यु तक तौबा रखा।

खिलाड़ी आकाश समय के हर पृष्ठ में नया चित्र खींचता रहता है इसी तरह कर्णाटक के अफगान सर्दार, जो इस चढ़ाई में साथ थे, इतनी कृपाओं, रिआयतों तथा पालन के स्वत्वों के

होते भी स्वामिभक्ति का तनिक भी विचार न कर तथा दैवी बदला लेनेवाले के कोप और दंड की आशंका न कर धन तथा धरती के लोभ में हृदय से अधर्मी फिरंगियों से मिल गए। साथ ही उन्होंने कुछ अन्य स्वामिद्रोहियों को भी अपनी ओर मिला लिया और अपने जासूसों को भेजकर फिरंगियों को, जो जिंजी दुर्ग के नीचे इकट्ठे थे, रात्रि-आक्रमण करने के लिए बुलाया। १८ मुहर्रम सन् ११६४ हि० (सन् १७५१ ई०) को रात्रि के अंत में एकाएक युद्ध आरंभ कर दिया। यदि अफ़गान फिरंगियों की शक्ति न साथ लेते तो थोड़े होने के कारण सेना पर वे आक्रमण करने का साहस न कर सकते। यद्यपि कुछ हितैपियों ने इसके पहिले नवाब से बहुत कुछ कहा कि अफ़गान विद्रोह करने पर तैयार हैं पर अपने स्वच्छ हृदय के कारण नवाब ने इस बात पर विश्वास नहीं किया क्योंकि वह समझता था कि हमने इनके साथ क्या बुराई की है, जो वे ऐसा करेंगे। यहाँ तक कि युद्ध के समय वह अपना हाथी अफगानों की ओर ले गया कि उनसे मिलकर फिरंगियों को परास्त करे। जब नवाब का हाथी अफगान सर्दार हिम्मत ख़ाँ के हाथी के पास पहुँचा तब नवाब ने उसके अभिवादन करने के पहिले स्वागतार्थ अपना हाथ सिर से लगाया पर उसकी ओर से कोई प्रत्युत्तर न मिला। प्रातःकाल अच्छी प्रकार नहीं हुआ था इससे नवाब ने यह समझकर कि मुझे पहिचाना नहीं है अमारी में अपने को कुछ ऊँचा किया। इस अवसर को पाकर हिम्मत ख़ाँ तथा उस मनुष्य ने, जो खवासी में बैठा था, बंदूकें चला दीं। दोनों तीर व गोली नवाब की छाती में लगी और

उसका काम समाप्त हो गया। अफगानों ने नवाब का सिर काटकर भाले की नोक पर रखा और जो व्यवहार मुहर्रम में अनुयायियों ने इमाम हसन व हुसेन के साथ किया था, वही नवाब के नौकरों ने नवाब के साथ किया। सैनिकों ने दिन बीतने पर मुंड को रुंड से मिलाकर ताबूत को औरंगाबाद भेज दिया, जहाँ शाह बुर्हानुद्दीन ग़रीब की क़ब्र के नीचे नवाब आसफजाह के पास यह गाड़ा गया। फुलचेरी से बीस कोस पर जिंजी दुर्ग के पास यह घटना घटी। मीर ग़ुलाम अली आज़ाद कहता है—क़िता, अर्थ—

न्याय करनेवाला आली जनाब नवाब गया।
तलवार ने अवसर न दिया, घटना जल्द घट गई॥
मुहर्रम महीने की १७ वीं को मारा गया।
तारीख़ कहा रोने वाले ने कि सूर्य गया॥
(गरे आफताब)

उस रात्रि, जिसका सवेरा प्रलय का था, नवाब ने पगड़ी बाँधने के समय दर्पण माँगा और पगड़ी बाँधने लगा। उस समय दो बार अपनी प्रतिच्छाया से कहा कि ए मीर अहमद, ख़ुदा तेरा रक्षक है। इसका वास्तविक नाम मीर अहमद था। सवार होने के समय वज़ू (अर्द्धस्नान) कर चुकने पर भी फिर से वज़ू किया तथा दुबारा निमाज़ पढ़ा। इसके बाद तसबीह (माला) फेरता तथा दुआ पढ़ता हुआ हाथी पर सवार हुआ। नवाब का यह नियम था कि युद्धों में सिर से पैर तक लोहा पहिरता था पर उस रात्रि जामे के सिवा नीचे

कुछ न पहिरा। इसी हालत में यह मारा गया। नवाब बुद्धिमान और दूरदर्शी था। थोड़े समय में इसने बहुत-सी अच्छी कविता कर गजलें बनाईं। कुछ शेर, जो याद थे, ये हैं—

अर्थ—

बाग के किस फूल ने नक़ाब के कोने को तोड़ दिया।
कि ओस के आईने को सूर्य के मुख पर तोड़ दिया॥

और

ऐ हृदय, प्रिय के केशकलाप से सहायता ले सकता है।
अमर अवस्था से इच्छाएँ ले सकता है॥
यदि बेहोशी मदिराघर से यात्रा का शकुन निकालतो है।
तो प्रिय की मस्त आँख से भी यात्री ले सकता है॥

और

ऐ चंचल प्रेयसी कटाक्ष रूपो तीर मत फेंक।
यह निर्दय तीर हृदय पर असर करती है॥

और भी

ए प्रिय, प्रेयसी की खातिर से मैं सुकुमार प्रकृति रखता हूँ।
तू यदि सौंदर्य से घमंड करता है तो मैं तेरे प्रेम का घमंडी हूँ॥

और भी

पगड़ी का कोना फूल से आप ही आप काँपता है।
उसका कद ताजे पेड़ सा है यह मैं जानता हूँ॥

नवाब निजामुद्दौला के मारे जाने पर अफगानों तथा ईसाइयों ने हिदायत मुहीउद्दीन खाँ को सर्दार बनाया और इसके पुरस्कार में अफगानों ने बहुत से दुर्ग तथा देश हिदायत

मुहीउद्दीन ख़ाँ से अपने नाम लिखवा लिए। हिदायत मुहीउद्दीन ख़ाँ अफ़ग़ानों के साथ फूलचरी आया और कप्तान अर्थात् शासक से भेंट किया। इसके अनंतर ईसाई सेना को साथ लेकर हैदराबाद की ओर चला। अर्काट की सीमा लाँघ कर वह अफ़ग़ानों के देश में पहुँचा। दैवयोग से नवाब निज़ामुद्दौला के बदले का सामान तैयार हो रहा था। हिदायत मुहीउद्दीन ख़ाँ और अफ़ग़ानों के बीच मनोमालिन्य आ गया और एक दिन, जब सेना लकरैत पल्ली में पड़ाव डाले थी, यह वैमनस्य स्पष्ट हो गया तथा युद्ध होने लगा। एक ओर हिदायत मुहीउद्दीन ख़ाँ तथा ईसाई और दूसरी ओर अफ़ग़ान सेना सजाकर लड़ने लगे। हिम्मत ख़ाँ तथा अन्य अफ़ग़ान सर्दार मारे गए और हिदायत मुहीउद्दीन ख़ाँ का काम भी तीर की चोट से, जो आँख की पुतली में घुस गया था, समाप्त हो गया। सेना के सर्दारों ने नवाब आसफजाह के पुत्र नवाब सलाबतजंग को निज़ाम बनाया तथा हिम्मत ख़ाँ और अन्य अफ़ग़ान सर्दारों के सिर भाले की नोक पर रखकर खुशी के बाजे बजाते पड़ाव में गए। यह घटना १७ रबीउल् अव्वल सन् ११६४ हि० (सन् १७५१ ई०) को घटी। नवाब निज़ामुद्दौला के खून ने अच्छा रंग पकड़ा और जिन लोगों ने उसके साथ दग़ा किया सब दंड को पहुँचे। साठ दिन बाद ये सब घातक ईश्वरीय कोप से मारे गए। शैर—

देखा तूने दीपक के पर्वाना को नाहक के खून को
कुछ दिन भी शरण न दिया कि रात्रि का सवेरा तो हो।

एक योग ऐसा भी पड़ा कि जिस दिन यह युद्ध हुआ

अर्थात् १७ रबीउल् अव्वल को इन मारे गए लोगों को गाड़ने का अवसर न मिला। १८ को युद्धस्थल से हटाकर घोर जंगल में, जो जंगलियों तथा हिंसक पशुओं का घर था, गाड़े गए। इसी दिन अर्थात् १८ तारीख़ को निज़ामुद्दौला का तावूत पवित्र रौज़े में पहुँचा और संध्या के बाद खुदा के फकीरों के पास गाड़ा गया। ईश्वर की कृपा कि नवाब पहिले घातकों को मिट्टी के नीचे भेजकर तब स्वयं भूमि में आराम करने लगा। तावूत ले जाते समय जहाँ जहाँ उसे उतारा था लोगों ने गृह बनवाए और वे उनकी ज़ियारत करते तथा दान देते हैं।

इन अफ़ग़ान सर्दारों में से, जिन्होंने नवाब निज़ामुद्दौला से कपट किया था, एक अब्दुल्मजीद ख़ाँ था, जिसका दादा अब्दुल्करीम मियानः बीजापुर के सुलतानों का एक बड़ा सर्दार था और जिसके वंशज अब तक कर्णाटक के अंतर्गत बंकापुर आदि के अध्यक्ष हैं। अब्दुल्मजीद ख़ाँ ने अपने पुत्र बहलोल ख़ाँ को नसीबयावर ख़ाँ की अभिभावकता में निज़ामुद्दौला की सेवा में भेजा था। पर गुप्त रूप से वह अपने पुत्र तथा अफ़ग़ान सर्दारों को विद्रोह के लिए उभाड़ता रहता तथा इच्छारूपी कपट के शतरंज की छिपी चाल चलता रहता।

हिम्मत ख़ाँ, जिसने नवाब निज़ामुद्दौला को मारा था, अलिफ़ ख़ाँ का पुत्र था, जो ख़िज्र ख़ाँ पन्नी के लड़के इब्राहीम ख़ाँ का पुत्र था। ख़िज्र ख़ाँ उक्त अब्दुल्करीम मियानः का सम्मतिदाता था। दाऊद ख़ाँ पन्नी, जिसने अमीरुल्उमरा हसन अली ख़ाँ से कृतघ्नता की थी और युद्ध कर मारा गया था, इसी ख़िज्र ख़ाँ का पुत्र था। जब शाहआलम के राज्यकाल में दक्षिण

की सूबेदारी पर असद खाँ वजीर का पुत्र जुलफ़िक़ार खाँ नियत हुआ तब दाऊद खाँ पन्नी उसका नायब बनाया गया। इसने अपने भाई इब्राहीम खाँ को हैदराबाद में अपना प्रतिनिधि नियत किया। जब फ़र्रुख़सियर के राज्यकाल के आरंभ में हैदरक़ुली खाँ दक्षिण का दीवान नियत हुआ तब उसने इब्राहीम खाँ को कर्नूल की फौजदारी दी। उस समय से कर्नूल उसके वंशजों के पास है। बदले के युद्ध में हिम्मत खाँ और उसका दीवान अमानतुल्लाह ख़ाँ, जो इस सब उपद्रव का बीज बोने-वाला था, बहलोल ख़ाँ, नसीबयावर ख़ाँ तथा दूसरे उपद्रवी दोनों ओर के सब मारे गए। जब सेना कर्नूल पहुँची तब उसने उस नगर को लूट लिया और हिम्मत खाँ का कुल परिवार क़ैद हुआ। उस अयोग्य से जो दुष्टता हुई उसीके फलस्वरूप उसका धन, प्राण, सम्मान सभी नष्ट हो गए। इसी लोक में यह हालत हुई, परलोक में न जाने क्या हुआ होगा। हुसेन दोस्त ख़ाँ उर्फ चंदा भी बदले की तलवार से काटा गया और सिर भाले की नोक पर रखा गया।

इस बात का विवरण यह है कि अनवरुद्दीन ख़ाँ गोपामुई के मारे जाने के बाद उसके पुत्र मुहम्मद अली ख़ाँ ने त्रिचिना-पल्ली दुर्ग को दृढ़ किया। जब नवाब निज़ामुद्दौला की सेना अर्काट में पहुँची तब मुहम्मद अली ख़ाँ आकर सेवा में उपस्थित हुआ और उसने पिता की पदवी पाई। निज़ामुद्दौला के मारे जाने के बाद इसने त्रिचिनापल्ली दुर्ग में शरण ली। इसी समय अर्काट की रियासत चंदा को मिली, जो फूलचरी में बैठा हुआ था। उन्हीं फरासीसी ईसाइयों की सेना लेकर,

जिन्होंने नवाब निज़ामुद्दौला पर रात्रि में आक्रमण किया था, दूसरी सेना के साथ उसने त्रिचिनापल्ली पर चढ़ाई की। अनवरुद्दीन ख़ाँ अपनी सेना के साथ तथा अँग्रेज़ फिरंगियों को मिलाकर, जो देवानानपत्तन में रहते थे, युद्ध को आया और कुछ समय तक खूब आग बरसती रही। अंत में अनवरुद्दीन ख़ाँ विजयी हुआ और चंदा जीवित पकड़ा गया। १म शाबान सन् ११६५ हि०, सन् १७५२ ई० को मार डाला गया तथा उसका सिर भाले पर रखकर प्रदर्शित किया गया। फरासीसी अहम्मन्य सर्दारों में से सफेद चमड़ेवाले खास विलायत के पैदा ग्यारह सौ आदमी सिवा कार्दो फिर्के के जीवित पकड़े गए। नवाब निज़ामुद्दौला के मारे जाने के बाद उनमें, जिन्होंने रात्रि में आक्रमण किया था, कोई आराम न पा सका और उस कार्य का फल इस प्रकार का हुआ।[1]

---

१. हैदराबाद के निज़ामों का वृत्तांत ग्रंथकार ने चापलूसी से भरा हुआ लिखा है और तथ्य को छिपाने के लिए वास्तविक घटनाओं को घटा बढ़ाकर लिखा है या छोड़ दिया है। इसका कारण केवल यही है कि वह उस वंश का सेवक था।

निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह

इसका मातामह सादुल्ला ख़ाँ शाहजहाँ बादशाह का प्रधान मंत्री था। इसके पितामह आबिद ख़ाँ का पिता आलम शेख़ समरकंद का एक बड़ा सर्दार और शेख़ शहाबुद्दीन सुहरवर्दी का वंशज था। आबिद ख़ाँ शाहजहाँ के समय में हिंदुस्तान आया और बादशाह से परिचय तथा शाहज़ादा औरंगजेब की सेवा में भर्ती होने से सम्मानित हुआ। जब औरंगजेब को भाइयों से युद्ध करना पड़ा तब यह उन युद्धों में बराबर साथ रहा। उसकी राजगद्दी होने के बाद इसे चार हजारी मंसब मिला। ४थे वर्ष जलूसी में सदर कुल नियत हुआ और इसके बाद पाँच हजारी मंसब तथा क़ुलीज ख़ाँ की पदवी मिली। सदर पद से हटाए जाने पर १६ जमादिउल् आखिर सन् १०९२ हि० को दूसरी बार इसे सदर का खिलअत मिला। गोलकुंडा दुर्ग के घेरे में २४ रबीउल् अव्वल सन् १०९८ हि० को तोप का गोला लगने से मारा गया।

आबिद ख़ाँ का पुत्र मीर शहाबुद्दीन ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ ऊँचे पद तक पहुँचा और उसकी जीवनी 'ग़ैन' (ग) अक्षर में दी जा चुकी है। नवाब ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ का पुत्र नवाब निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह था। इसका वास्तविक नाम मीर क़मरुद्दीन था, जिसका जन्म सन् १०८२ हि० में हुआ था। यौवन में औरंगजेब का कृपापात्र था और इसे चार हजारी मंसब तथा चीन कुलीज ख़ाँ की पदवी मिली।

वाकिनकीरा दुर्ग के घेरे में बहुत प्रयत्न करने के कारण एक हज़ारी बढ़ने से इसका मंसब पाँच हज़ारी हो गया। औरंगज़ेब की मृत्यु पर शाहज़ादों की लड़ाई में इसने दूरदर्शिता से किसी का पक्ष नहीं लिया और जब शाह आलम बादशाह हुआ तब इसे खानदौराँ बहादुर की पदवी और अवध की सूबेदारी लखनऊ की फौजदारी के साथ मिली क्योंकि उस समय तक वहाँ का फौजदार दरबार से अलग नियत होता था। मृत अल्लामः मीर अब्दुल्‌जलील बिलग्रामी ने पदवी की तारीख इसी 'खानदौराँ बहादुर' में निकाली। निज़ामुल्‌मुल्क थोड़े ही समय बाद वहाँ नए सर्दारों के प्रभाव तथा पुराने अमीरों की कमी से नौकरी से त्यागपत्र देकर राजधानी दिल्ली चला आया और फ़क़ीरी कपड़े पहिर घर बैठ रहा। शाह आलम के मरने पर जब कुछ दिन की बादशाहत मुहम्मद मुइज्ज़ुद्दीन को मिली। तब इसे भी पहिले का मंसब तथा पुरानी पदवी मिली। जब फर्रुखसियर गद्दी पर बैठा तब यह निज़ामुल्‌मुल्क बहादुर फतहजंग की पदवी और सात हज़ारी मंसब पाकर सम्मानित हुआ तथा दक्षिण का शासक नियत हुआ। जब दक्षिण की अध्यक्षता अमीरुल्‌उमरा सैयद हुसेन अली ख़ाँ को मिली और नवाब राजधानी लौट आया तब इसे मुरादाबाद का शासन मिला। जब अमीरुल्‌उमरा दक्षिण से लौट आया तथा मुहम्मद फर्रुखसियर को गद्दी से हटाकर नए बादशाह को उस पर बैठाया तब निज़ामुल्‌मुल्क को मालवा प्रांत का शासन मिला। नवाब निज़ामुल्‌मुल्क मालवा आया और यहाँ के सर्दारों से विरोध होने

पर यह मुहम्मदशाही २रे वर्ष सन् ११३२ हि० में दक्षिण चला। प्रथम रज्जब को नर्मदा नदी पारकर आसीरगढ़ को तालिब ख़ाँ से और बुर्हानपुर नगर मुहम्मद अनवर ख़ाँ बुर्हानपुरी से शांति से ले लिया। अमीरुल्उमरा ने भारी सेना सैयद दिलावर ख़ाँ की अधीनता में पीछा करने को भेजा। नवाब भी उससे सामना करने को शीघ्रता से चला। सरकार हंडिया के मौज़ा हसनपुर में उक्त वर्ष के १३ शाबान महीने को युद्ध हुआ और दिलावर ख़ाँ मारा गया। नवाब विजयी होकर बुर्हानपुर में आकर ठहरा। अभी घायलों के घाव नहीं भरे थे कि दक्षिण का नायब आलम अली ख़ाँ, जो अमीरुल्उमरा का भतीजा था, युद्ध की तैयारी करने लगा और औरंगाबाद से बुर्हानपुर को फ़ुर्ती से रवाना हुआ। उसी वर्ष के ६ शव्वाल को बरार प्रांत के अंतर्गत बालापुर के पास घोर युद्ध हुआ। आलम अली ख़ाँ साहस से वीरता दिखलाते हुए मारा गया और नवाब विजयी होकर औरंगाबाद पहुँचा। बारहा के सैयदों का भाग्य पलट चुका था इससे एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीन ख़ाँ ने एक मनुष्य को नियत किया, जिसने ठीक सवारी के समय पालकी में अमीरुल्उमरा को छूरे से मार डाला। यह घटना उसी वर्ष के ६ ज़ीहिज्जा को 'तोरः' पड़ाव में हुई थी। अमीरुल्उमरा के भाई कुतुबुल्मुल्क ने यह डरावना समाचार पाकर एक शाहज़ादे को दिल्ली के दुर्ग से निकालकर गद्दी पर बैठाया और सेना एकत्र कर युद्ध को आया पर युद्ध के बाद क़ैद हो गया।

नवाब निज़ामुल्मुल्क के दक्षिण प्रांत के प्रबंध में विशेष प्रेम रखने के कारण मुहम्मद अमीन ख़ाँ को मंत्रित्व पद मिला।

यह .ख्वाजा वहाउद्दीन का पुत्र था, जो उक्त नवाब आबिद ख़ाँ का भाई तथा समरकंद नगर का क़ाज़ी था। मुहम्मद फर्रुख़-सियर के राज्यकाल में मुहम्मद अमीन ख़ाँ को द्वितीय बख्शी का स्थायी पद मिला था। एक प्रकार, जैसा लिखा गया है, प्रधान मंत्री के पद तक उसकी उन्नति हुई पर उसके बाद मृत्यु ने अवसर नहीं दिया और थोड़े दिन ही बाद मर गया। नवाब निज़ामुल्मुल्क ने दक्षिण से दिल्ली पहुँचकर मंत्रित्व का खिलअत पहिरा और चाहा कि औरंगज़ेब के समय के नियमों को फिर से प्रचलित करे, जो बंद हो गए थे। निर्द्वंद्व सर्दारों ने इसको अपनी इच्छाओं का विरोधी समझ कर बादशाह के मन को इसके विरुद्ध कर दिया। इसी समय सन् ११३५ हि० में गुजरात के नाज़िम हैदर .कुली ख़ाँ की चाल से विद्रोह के लक्षण प्रगट हुए और नवाब उसे दंड देने पर नियत हुए तथा इस बहाने सर्दारों ने नवाब को दरबार से हटा दिया। जब नवाब गुजरात के पास झाबुआ पहुँचा तब हैदर .कुली .ख़ाँ ने, जो युद्ध के लिए कई पड़ाव आगे बढ़ आया था, अपने में सामना करने की शक्ति न देख कर अपने को पागल प्रकट कर दिया। नवाब राजधानी लौट आए। इस सेवा के पुरस्कार में मंत्रित्व तथा दक्षिण के शासन के साथ इसे मालवा तथा गुज-रात की सूबेदारी मिल गई। परंतु सर्दारों के विरोध से मनो-मालिन्य बढ़ता गया। सन् ११३६ हि० में कुल दक्षिण प्रांत का शासन नवाब मुबारिज़ ख़ाँ के स्थान पर इसे मिला, जो बहुत वर्षों से हैदराबाद का नाजिम था। साथ ही छिपा हुआ मनोमालिन्य प्रगट होने लगा। इस पर आसफजाह ने राज-

धानी की वायु अपनी प्रकृति के विपरीत तथा मुरादाबाद की अनुकूल बताकर, जहाँ वह पहिले शासन कर चुका था, इसी बहाने मुरादाबाद जाने की छुट्टी ले ली। कुछ दिन यात्रा करने के बाद वह दक्षिण की ओर रवाना हो गया और बड़ी शीघ्रता से यात्रा करता हुआ दक्षिण पहुँच गया। मुबारिज़ खाँ युद्ध को आया। शकरखेड़ा के पास औरंगाबाद से साठ कोस पर सामना हुआ और २३ मुहर्रम सन् ११३७ ई० को घोर युद्ध हुआ। मुबारिज़ ख़ाँ मारा गया तथा नवाब का कुल दक्षिण प्रांत पर अधिकार हो गया। इसके अनंतर बादशाह ने नवाब को शांत रखने का प्रयत्न किया और सदा कृपापत्र और पुरस्कार भेजता रहा। इसी समय इसे आसफजाह की पदवी दी गई। सन् ११५० हि० में बादशाह ने हठ कर इसे दरबार बुलाया और नवाब भी अपने पुत्र निज़ामुद्दौला नासिरजंग बहादुर को दक्षिण में अपना प्रतिनिधि छोड़ कर राजधानी पहुँचा तथा सेवा में उपस्थित हुआ। फज्ल अली खाँ ने इसकी तारीख इस प्रकार पद्य में कही है। कित:

सौ शुक्र है कि धर्म का रक्षक आया।
बादशाही राज्य को शोभा देनेवाला आया॥
हातिफ उसके पहुँचने की तारीख बतलाओ।
कहा 'आयत रहमते इलाही आमद'॥

नवाब ने उसे एक सहस्र रुपया और चाँदी के साज सहित एक घोड़ा पुरस्कार में दिया। दिल्ली पहुँचने के दो महीने बाद बादशाह ने नवाब को मराठों को दंड देने के लिए विदा किया। नवाब जब आगरे पहुँचा तब कुछ कारणों से दक्खिनी मार्ग

छोड़कर पूर्व की ओर चला। इटावा और मकनपुर होते हुए कालपी के नीचे से जमुना नदी पार किया। वहाँ से दक्षिण को चला और मालवा में आया। कई पड़ाव तै करने पर उस प्रांत के अंतर्गत भूपाल नगर में पहुँचा। दक्षिण से आई हुई मराठा सेना ने इसका सामना किया। उक्त वर्ष के रमज़ान के महीने में भूपाल के आसपास खूब युद्ध हुए। नादिरशाह के आने का समाचार फैल रहा था इसलिए नवाब ने अवसर समझकर संधि कर ली और दरबार लौट आया। जब नादिर-शाह विजयी हुआ और जो होना था हो चुका तब अन्य सर्दारों से इसपर बहुत अधिक कृपा हुई। नादिरशाह के युद्ध में अमीरुल्उमरा ख़ानदौराँ मारा जा चुका था, इसलिए नादिर-शाह के विजय के पहिले ही अमीरुल्उमरा का मंसब अन्य पदों के साथ नवाब को मिला। नादिरशाह के जाने के बाद भी वह पद बहाल रहा। सन् ११५३ हि० में नवाब ने बादशाह से दक्षिण जाने की छुट्टी ले ली और यात्रा करता हुआ बुर्हानपुर के पास पहुँचा। नवाब के विरोधियों ने निज़ामुद्दौला नासिरजंग को बाध्य किया कि वह रास्ता रोके। दक्षिण के बहुत से सर्दारों तथा सेना ने पहिले साथ देने की प्रतिज्ञा की पर अंत में नवाब आसफजाह की स्वामिभक्ति के कारण वे युद्ध के समय हटने लगे। निज़ामुद्दौला सेना का यह रंग देखकर शाह बुर्हानुद्दीन ग़रीब के रौज़ा में जाकर एकांतवास करने लगा। जब प्रांत का प्रबंध करते हुए तथा नई आज्ञाएँ देते हुए आसफजाह ससैन्य वर्षाकाल में औरंगाबाद पहुँचा तब निज़ामुद्दौला इस आशंका से कि कहीं उसपर आक्रमण न हो रौज़ा से निकल कर मुल्हेर

दुर्ग में चला गया। नवाब आसफजाह ने पहिले के नियम के अनुसार वर्षाकाल में सेना को अपने गृह तथा चरागाह जाने की छुट्टी दे दी और स्वयं अकेले औरंगाबाद में रह गया।

दुष्ट शैतान मनुष्य का डाकू है, यहाँ तक कि अपनी माया के ओर से नबियों के फलों को बहका देता है और लोगों को (अरबी का कुछ अंश है) उद्दंड बना देता है। नवाब निज़ामुद्दौला ने दुष्टों के कहने से औरंगाबाद जाने का निश्चय किया और सात सहस्र सवारों को एकत्र कर धावा करता औरंगाबाद पहुँचा। नवाब आसफजाह जितने सैनिक मौजूद थे उन्हें तथा तोपख़ाना लेकर नगर के पास ईदगाह की ओर युद्ध के लिए ठहरा। २० जमादिउल् अव्वल सन् ११५४ हि० को युद्ध हुआ। आसफ़जाही तोपखाने की अधिकता तथा संध्या के अंधकार और समय की कमी से दूसरी ओर की सेना आप ही बिखर गई। नवाब निज़ामुद्दौला हाथी को बढ़ाकर थोड़ी सेना के साथ आसफजाह के हाथी के पास पहुँचा पर घायल होकर पिता के हाथ पकड़ा गया।

सन् ११५६ हि० में नवाब आसफजाह ने कर्णाटक विजय करने का निश्चय किया और उस प्रांत में पहुँचने पर त्रिचनापल्ली दुर्ग को घेरकर विजय किया, जो मराठों के अधिकार में था। इसके अनंतर अरकाट प्रांत को नवायतों से, जो बहुत मुद्दत से उस प्रांत पर अधिकृत थे, ले लिया और वहाँ के शासन पर अनवरुद्दीन ख़ाँ शहामतजंग गोपामुई को अपनी ओर से नियत कर सन् ११५७ हि० में यह औरंगाबाद लौट आया। सन् ११५९ हि० में दुर्ग चाल्कुंडा को, जो हैदराबाद के अंत-

गत तथा कुछ दक्खिनी सर्दारों के हाथ में था, घेर कर थोड़े समय में विजय कर लिया। सन् ११६१ हि० में अहमद ख़ाँ अब्दाली के काबुल की ओर से दिल्ली आने का समाचार सुन पड़ा। देशीय नीति के विचार से नवाब औरंगाबाद से बुर्हान-पुर चला आया और यहाँ समाचार मिला कि अहमदशाह विजयी हुए और अहमद ख़ाँ अब्दाली परास्त होकर काबुल लौट गया।

नवाब आसफजाह को इसी समय कड़ी बीमारी हो गई। उसी हालत में २७ जमादिउल् अव्वल को औरंगाबाद रवाना हुआ पर रोग के बढ़ने से बुर्हानपुर नगर के पास खेमे में ठहर गया। बीमारी प्रतिदिन बढ़ती गई यहाँ तक कि ४ जमादिउल् आखिर सन् ११६१ हि० को संध्या के समय मर गया। शव उठाते समय बड़ा शोर मचा, जिससे भूमि तथा लोग काँप उठे। बड़े-बड़े सर्दारों ने जनाज़ा कंधों पर उठाकर मैदान में पहुँचाया और नमाज़ पढ़कर शाह बुर्हानुद्दीन ग़रीब के रौज़ा को भेज दिया। शेख की क़ब्र के नीचे वह गाड़ा गया। 'मुतवज्जह बिहिश्त' से मृत्यु की तारीख निकलती है, जिसे मीर गुलाम-अली आज़ाद ने निकाला था।

नवाब आसफ़जाह 'आसफ़'

[सादुल्ला खाँ मंत्री के समय से निज़ाम अली खाँ के सन् १०७६ हि० तक का विवरण]

इसका मातामह शाहजहाँ बादशाह का प्रधान अमात्य सादुल्ला खाँ था और इसका पितामह आबिद खाँ समरकंद का था तथा शेख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी का वंशज था। शाहजहाँ बादशाह के समय आबिद खाँ हिंदुस्तान आया और शाहज़ादा औरंगजेब के सेवकों में भर्ती हो गया। शाहज़ादे के गद्दी पर बैठने पर इसका मंसब बढ़कर पाँच हजारी हो गया। यह दो बार सदर कुल पद पर नियत हुआ। २४ रबीउल् अव्वल सन् १०९८ हि० को गोकुलकुंडा दुर्ग के घेरे में गोला लगने से यह मर गया। इसका पुत्र मीर शहाबुद्दीन औरंगजेब के समय का एक प्रमुख सर्दार था। क्रमशः इसे सात हजारी मंसब और गाज़ीउद्दीन खाँ बहादुर फ़ीरोज़जंग की पदवी मिली। बीजापुर के विजय में अच्छे प्रयत्नों के उपलक्ष में इसकी पदवियों में 'फ़र्ज़ंद अर्जुमंद' शब्द बढ़ाकर इसे सम्मानित किया गया। शाह आलम के राज्यकाल में इसे गुजरात की सूबेदारी मिली। वहाँ के शासनकाल में सन् ११२२ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। इसीका पुत्र नवाब आसफ़जाह था, जिसका वास्तविक नाम मीर क़मरुद्दीन था। इसका जन्म सन् १०८२ हि० में

हुआ था और औरंगज़ेब के समय इसे चीन क़ुलीज ख़ाँ की पदवी और पाँच हजारी मंसब मिला था। उस राज्य के अंत में बीजापुर की सूबेदारी मिली। शाह आलम के समय में ख़ान-दौराँ बहादुर की पदवी और अवध की सूबेदारी मिली। थोड़े ही समय बाद सर्दारों से मनोमालिन्य हो जाने से मंसब छोड़कर फकीरी कपड़े पहिर दिल्ली में एकांतवास करने लगा। जहाँदार शाह के समय एकांत से निकलकर इसको पहिले का मंसब तथा पदवी फिर मिल गई। फर्रुख़सियर के राज्य के १म वर्ष में इसे निज़ामुल्मुल्क बहादुर फ़तहजंग की पदवी, सात हजारी मंसब तथा दक्षिण की सूबेदारी मिली। जब दक्षिण का शासन अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ को मिला और नवाब दरबार चला आया तब इस कष्ट को दूर करने के लिए कि बादशाह बिना किसी प्रभाव के नाममात्र को गद्दी पर बैठा हुआ है, इसने मुरादाबाद का शासन अपने हाथ में ले लिया। रफ़ीउद्दर्जात् के राज्यकाल में इसे मालवा की सूबेदारी मिली और दरबार के सर्दारों से झगड़ा होने के कारण इसने दक्षिण विजय करने का निश्चय किया। सन् ११३२ हि० में मालवा से दक्षिण को चला। आसीरगढ़ को तालिब ख़ाँ से और बुर्हानपुर नगर को मुहम्मद ख़ाँ अनवर से, जो रफ़ीउद्दर्जात् के समय बुर्हानपुर का सूबेदार नियत हुआ था, शांति के साथ ले लिया। १३ शाबान को उसी वर्ष सैयद दिलावर ख़ाँ पर, जो दरबार से नवाब से युद्ध करने के लिए नियत हुआ था, हंडिया सरकार के हसनपुर मौजा में विजय प्राप्त किया और बुर्हानपुर लौट आया। उसी वर्ष के ६ शव्वाल को अमीरुल्उमरा सैयद

हुसेन अली खाँ के भतीजे सैयद आलमअली ख़ाँ को, जो दक्षिण में नायब था, बालापुर के पास परास्त किया।

जब बारहा के सैयदों का समय बिगड़ गया और एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीन ख़ाँ भी, जो सैयदों के बाद मुहम्मदशाह बादशाह का मंत्री हुआ था, मर गया तब नवाब को सन् ११३४ हि० में दक्षिण से दरबार पहुँचने पर ५ जमादिउल् अव्वल को वजीर का पद मिला। यह लेखक उस समय दिल्ली ही में था। इसी समय गुजरात के प्रांताध्यक्ष मुइज्जुद्दौला हैदरक़ुली ख़ाँ इसफरायनी ने विद्रोह कर दिया तब मुहम्मदशाह ने गुजरात तथा मालवा की सूबेदारी भी मंत्रित्व तथा दक्षिण के शासन के साथ नवाब को देकर हैदरक़ुली ख़ाँ की चढ़ाई पर भेजा। नवाब फुर्ती से गुजरात के पास धावा पहुँचा था कि हैदरक़ुली ख़ाँ युद्ध करने को अपने में सामर्थ्य न देखकर पागल बन हट गया। नवाब अपने चाचा हामिद ख़ाँ को गुजरात तथा औंध में अपना नायब नियत कर मालवा आया और यहाँ अपने चचेरे भाई अज़ीमुद्दीन ख़ाँ को अपना प्रतिनिधि-शासक नियत कर उसी वर्ष के जमादिउल् अव्वल के आरंभ में राजधानी लौट गया। दरबार के सरदारगण नहीं चाहते थे कि नवाब वहाँ बादशाह के पास ठहरे, इसलिए बादशाह का मन उसकी ओर से फेर दिया। सन् ११३६ हि० में दक्षिण का शासन हैदराबाद के नाज़िम नवाब मुबारिज ख़ाँ के स्थान पर इसको मिल गया। नवाब ने राजधानी की वायु अपने विरुद्ध तथा मुरादाबाद को अपनी प्रकृति के अनुकूल होने का बहाना कर, जहाँ वह पहिले शासन कर चुका था, मुहम्मद-

शाह से वहाँ जाने की छुट्टी ले ली। यात्रा आरंभ करने पर दक्षिण की ओर वाग मोड़ दी और फुर्ती के साथ दक्षिण पहुँचा। मुबारिज खाँ ने युद्ध की तैयारी की। २३ मुहर्रम सन् ११३७ हि० को शकरखेड़ा में घोर युद्ध हुआ और मुबारिज खाँ मारा गया। दक्षिण के कुल प्रांत नवाब के अधिकार में चले आए। यह समाचार आने पर गुजरात प्रांत का शासन मुबारिज़ुल्मुल्क सर वुलंद खाँ तूनी को और मालवा प्रांत गिरिधर को नवाब के स्थान पर मिला। मुहम्मदशाह ने नवाब को शांत करने के लिए सन् ११३८ हि० में आसफ़जाह की पदवी दी। सन् ११५० हि० में वहुत कह सुनकर इसे दरवार बुलाया। नवाब अपने पुत्र नवाब निज़ामुद्दौला नासिरजंग को दक्षिण में अपना प्रतिनिधि छोड़कर दरवार गया। उसी वर्ष के रवीउल् अव्वल के अंत में यह राजधानी पहुँच गया। दो महीने बाद मुहम्मदशाह ने नवाब को शत्रु को दमन करने के लिए विदा किया और राजा जयसिंह के स्थान पर आगरे की तथा वाजीराव के स्थान पर मालवा की सूबेदारी नवाब को देकर आगरे चला आया। आसफ़जाह अपने वज़ीर तथा संवंधी मुहीउद्दीन कुली खाँ को अपने प्रतिनिधि रूप में आगरे में छोड़कर मालवा की ओर गया। खेल नदी के तट पर बहुत से गहरे गड्ढे एक के बाद एक हैं और नवाब के दक्षिण से आते समय इसी नदी के किनारे के चोरों ने सेना को बहुत हानि पहुँचाई थी इसलिए नवाब आगरा के पास ही जमुना पार कर पूर्व ओर होता चला और न देखे हुए सीधे मार्ग से कमनपुर होता कालपी के नीचे से फिर जमुना पारकर बुंदेलों

के देश में आया। बुंदेला-नरेश सेना सहित साथ हो गया और कई पड़ाव चलने पर मालवा प्रांत के अंतर्गत भूपाल पहुँचा। बाजीराव ने भी भारी सेना के साथ दक्षिण से आकर भूपाल के पास उसी वर्ष के रमजान महीने में युद्ध आरंभ कर दिया। जब नादिरशाह के आने का समाचार ठीक ज्ञात हुआ तब अन्य सर्दारों की अपेक्षा नवाब से उसने बहुत अच्छा व्यवहार किया। जब नादिरशाह के युद्ध में अमीरुल्उमरा समसामुद्दौला ख़ानदौराँ मारा गया तब अमीरुल्उमरा का पद भी नवाब को अन्य पदों के साथ मिल गया।

इसी समय दक्षिण का नायब नवाब निज़ामुद्दौला नासिर-जंग उपद्रवियों के बहकाने से विद्रोही हो गया। नवाब ने अशांति दमन करने के लिए सन् ११५३ हि० में कर्णाटक प्रांत विजय करने की आशा से कमर बाँधी। पहिले बादशाह से छुट्टी लेकर दक्षिण आया। २० जमादिउल्अव्वल सन् ११५४ हि० को औरंगाबाद के पास पश्चिम की ओर पिता-पुत्र में युद्ध हुआ, नवाब निज़ामुद्दौला घायल होकर पिता के यहाँ कैद हो गया। नवाब ने सन् ११५६ हि० में कर्णाटक प्रांत विजय करने का दृढ़ निश्चय किया। पहिले त्रिचिनापल्ली दुर्ग घेर कर विजय किया और इसके बाद नवायतों से अर्काट ले लिया। सन् ११५७ हि० में हैदराबाद के अंतर्गत दुर्ग बालकुन्हड घेर कर मुज़फ्फर ख़ाँ दक्खिनी से ले लिया। ४ जमादिउल्आख़िर सन् ११६१ हि० (सन् १७४८ ई०) को बुर्हानपुर के पास इसकी मृत्यु हो गई और इसके शव को ले जाकर दौलताबाद दुर्ग के पास शाह बुर्हानुद्दीन ग़रीब के मक़बरे में नीचे की ओर गाड़

दिया। इसी वर्ष मुहम्मदशाह बादशाह और वज़ीर क़मरुद्दीन ख़ाँ एतमादुद्दौला भी मरे। लेखक कहता है—अर्थ—

हिंदुस्तान देश के तीन स्तंभ संसार से चले गए।

संसार के हाथ से तीन अनूठे मोती गिर पड़े, शोक॥

इन हर तीन की मृत्यु के लिए तारीख मैंने निकाली।

'नमानद शाहज़माँ बा वजीर व आसफ दह्र' (न रहे संसार के बादशाह वजीर और आसफ के साथ)।

नवाब हिंदुस्तान के तैमूरी साम्राज्य के बड़े सर्दारों में से था। औरंगजेब के समय से मुहम्मदशाह के राज्य तक बहुत दिन सर्दारी में बराबर उन्नति करता रहा। प्रायः तोस वर्ष तक दक्षिण के छ प्रांतों का शासन करता रहा, जितना बड़ा राज्य कम बादशाहों का था। मुहम्मदशाह बादशाह के समय के बहुत से सर्दार इसके परिवार के थे और वे पुत्रवत् प्रतिष्ठा के रस्मों को पूरा करते थे। इसके व्यक्तित्व में विचित्र फ़िरिश्तों से गुण तथा भलाई भरी हुई थी। सर्वदा इसकी सरकार में साधुओं, विद्वानों, गुणियों तथा भले आदमियों की प्रतिष्ठा उनकी योग्यता के अनुसार होती रही। अरब, मावरुन्नहर, खुरासान, एराक तथा हिंदुस्तान के चारों ओर के प्रांतों के विद्वान और शेख इसकी गुणग्राहकता की प्रसिद्धि सुनकर दक्षिण आते थे और इसके यहाँ से बहुत कुछ ले जाते थे। इसके स्मारकों में बुर्हानपुर का नगर-रक्षक दुर्ग है, जिसकी नींव सन् ११४१ हि० में पड़ी थी और बहुत दिनों में तैयार हुई थी। इसीने फर्दापुर घाटी के ऊपर निज़ामाबाद बस्ती बसाई, जो उजाड़ पड़ा था और मस्जिद, सराय, महल तथा पुल बनवाए। इस बस्ती के समान हैदराबाद का

नगर-रक्षक दुर्ग और नहर हर्सूल है, जो औरंगाबाद नगर के बीच आती है। नवाब अच्छी कविता करते थे और भारी दीवान लिखा है। इसका कहा हुआ है—शैर—

यार ने जब आईना को अपने सौंदर्य के सामने कर दिया।
तब आईना पर आब ताज़ा आ गया॥
प्रेम के दाग़ से हमारे दीवाने दिल को जला दिया।
हम पतंग के सिर के गिर्द दीपक को फिरा दिया॥

नवाब आसफ़जाह ने मरते समय छ पुत्र छोड़े थे। मीर मुहम्मद और मीर अहमद दो एक माँ से थे तथा मीर सैयद मुहम्मद, मीर निज़ाम अली, मीर मुहम्मद शरीफ और मीर मुग़ल ये चार अन्य स्त्रियों से थे। इनमें हर एक बड़ी पदवियों से विभूषित थे। विभिन्नता के लिए प्रथम अमीरुल्‌उमरा, द्वितीय निज़ामुद्दौला, तृतीय अमीरुलमुमालिक, चतुर्थ आसफजाह सानी, पंचम बुर्हानुल्‌मुल्क और षष्ठ नासिरुल्‌मुल्क कहलाता था। नवाब आसफजाह के पुत्र अमीरुल्‌उमरा ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ बहादुर फ़ीरोज़जंग को दरबार से पितामह की पदवी मिली थी। जब नवाब आसफजाह दक्षिण से दिल्ली आकर दरबार से सम्मानित हुआ और सन् ११५२ हि० में दक्षिण जाने की मुहम्मदशाह से छुट्टी पाई तब नायब अमीरुल्‌उमरा के पद पर अपने पुत्र फीरोजजंग को नियत कर गया, जो पद ख़्वाजा आसिम खानदौराँ समसामुद्दौला के नादिरशाही में मारे जाने पर नवाब आसफजाह को मिला था। नवाब आसफजाह की मृत्यु पर अहमदशाह के समय अमीरुल्‌उमरा का पद बशारत ख़ाँ को दिया गया। कुछ दिन बाद यह पद उसके स्थान पर शहादत

खाँ फ़ीरोज़जंग को दिया गया। नवाब निज़ामुद्दौला के मारे जाने पर अमीरुल्उमरा नासिरजंग को दक्षिण के राज्य की इच्छा हुई। दरबार के सर्दारगण कुछ कारणों से पहिले इस बात पर राजी नहीं थे पर बाद को राजी हो गए। इसका हाल सफ़दर-जंग के वृत्तांत में लिखा गया है। ३ रज्जब सन् ११६५ हि० को अमीरुल्उमरा ने अहमदशाह से दक्षिण के शासन का खिलअत पाया और ठीक वर्षाकाल में दक्षिण को ओर चला। दक्षिण में तीसरा भाई अमीरुल्मुमालिक अधिकार में था इसलिए होलकर मराठा को, जो दिल्ली के पास भारी सेना के साथ उपस्थित था, अपना साथी बनाया। यात्रा करता हुआ २० ज़ीकदा को उसी वर्ष औरंगाबाद पहुँचा। अमीरुल्मुमालिक हैदराबाद में था और वह युद्ध के लिए चला। शत्रु (मराठों) ने अवसर पाकर अमीरुल्उमरा से पूरा खानदेश प्रांत, संगमनेर तथा जालना, जो अंतिम दो औरंगाबाद के अंतर्गत थे, आदि के लिए प्रार्थना की। अमीरुल्उमरा नया आया हुआ तथा अनुभव-हीन था और भारी काम अमरुल्ममालिक से युद्ध करने का सामने था इससे खानदेश आदि की सनद अपनी मुद्रा से शत्रुओं को दे दिया। ऐसा प्रांत मुफ़्त में शत्रु के हाथ चला गया।

मृत्यु की लेखनी इस प्रकार चल चुकी थी कि दक्षिण का राज्य अमीरुल्मुमालिक ही को बहाल रहे इसलिए अमीरुल्उमरा औरंगा-बाद में दाखिल होने के सत्रह दिन बाद उक्त वर्ष के अंतिम दिन ७ ज़ीहिज्जा को एकाएक मर गया। इसके मित्रगण ने, जिन्होंने

दी और इसके तावूत को रक्षा में सही सलामत मार्ग में ले चलने के लिए यह निश्चय किया कि आगे पीछे अपना व्यूह बनाकर औरंगाबाद से दिल्ली ले जायँ। अंत में ऐसा ही किया। जिस प्रकार नाश (शव, चार तारे) बिनातुल्नाश (सप्तर्षि) के पीछे चलता है उसी प्रकार मार्ग चलते हुए दिल्ली पहुँचे और वहीं शव को गाड़ा।

नवाब आसफजाह के पौत्र तथा अमीरुल्उमरा फ़ीरोज़जंग के पुत्र एमादुलमुल्क का वास्तव में नाम मीर शहाबुद्दीन था, जो एतमादुद्दौला क़मरुद्दीन ख़ाँ वज़ीरुल्मुमालिक का दौहित्र था। इसे भी पैतृक पदवी ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ बहादुर फ़ीरोज़जंग की मिली थी। जिस समय इसका पिता अमीरुल्उमरा दक्षिण जाकर एकाएक मर गया और यह भयानक समाचार दिल्ली पहुँचा, एमादुलमुल्क वज़ीरुल्मुमालिक सफ़दरजंग के घर में जा बैठा और यहाँ तक शोक प्रगट किया कि सफ़दरजंग ने दया कर इसको अहमदशाह से अमीरुल्उमरा का इसका पैतृक पद दिलवा दिया। अंत में इसने इस भलाई का टेढ़ा बदला दिया। एमादुलमुल्क ने चाहा कि सफ़दरजंग को बिगाड़ दें, जिसका विवरण सफ़दरजंग के वृत्तांत में दिया है। एमादुलमुल्क ने उक्त युद्ध के समय होलकर को मालवा से और जयापा को नागौर से अपनी सहायता को बुलवाया पर उनके पहुँचने के पहिले सफ़दरजंग से संधि हो गई। एमादुलमुल्क, होलकर व जयापा तीनों मिलकर सूरजमल जाट पर गए और भरतपुर, कुंभेर तथा डीग को, जो जाट प्रांत के तीन दृढ़ दुर्ग हैं, घेर लिया। दुर्ग तोड़ने का अच्छा

सामान तोपें हैं इसलिए मराठा सर्दारों के कहने पर एमादुल्-मुल्क ने अहमदशाह के यहाँ तोपों के लिए एक प्रार्थनापत्र अपने मुख्य कर्मचारी आक़बतमहमूद ख़ाँ कश्मीरी के हाथ भेजा। मृत एमादुद्दौला क़मरुद्दीन ख़ाँ का पुत्र इंतज़ामुद्दौला वज़ीर एमादुलमुल्क के हठ पर बादशाह को तोपों के भेजने से मना कर दिया। आक़बत महमूद ख़ाँ ने बादशाही मंसबदारों तथा तोपख़ाने के आदमियों को यह वचन देकर कि जब एतमादुद्दौला का अधिकार होगा सबके साथ ऐसी-वैसी कृपाएँ की जायगी, उन्हें अपनी ओर मिलाकर चाहा कि इंतज़ामुद्दौला को उखाड़ दें। एक दिन निश्चय कर इंतज़ामुद्दौला के गृह पर आक्रमण कर मारकाट आरंभ कर दिया। उस दिन काम न होने पर दासना की ओर भागा। उचित मार्ग को छोड़कर इसने बादशाही मह्लों तथा मंसबदारों की जागीरों को, जो राजधानी के चारों ओर थे, लूटकर विद्रोह खड़ा कर दिया। इसी समय सूरजमल जाट ने, जो घेरनेवालों से तंग आ गया था, अहमदशाह से सहायता की प्रार्थना की। अहमदशाह प्रकट में शिकार व उस प्रांत के प्रबंध के बहाने पर वास्तव में जाट की सहायता को दिल्ली से निकल कर सिकंदरा में आकर ठहरा और आक़बत महमूद ख़ाँ को, जो वहीं उपद्रव किए हुए था, शांत कर बुलाया। आक़बत महमूद ख़ाँ खुर्जा से शीघ्र आकर बादशाह की सेवा कर फिर खुर्जा लौट गया। ईश्वरी योग से होल्कर के हृदय में यह आया कि अहमदशाह ही तोपों को देने में ढिलाई करता है और अब वह बाहर आ गया है इसलिए चलकर सेना के अन्न व घास को बंद कर देना

चाहिए और इस प्रकार कष्ट देकर तोपें उससे लेना चाहिए। उसने यह भी निश्चय किया कि किसीको इस कार्य में साथी न बनावे इसलिए वह एमादुलमुल्क तथा जयापा को सूचित न कर रात्रि में चल दिया और मथुरा से जमुना पार कर जिस रात्रि को आकवत महमूद खाँ सेवा कर खुर्जा लौट आया था उसी रात्रि को होलकर अहमदशाह की सेना के पास पहुँच गया। पहिली रात्रि को कुछ गोले छोड़े कि आदमियों को शंका हो कि आकवत महमूद खाँ शरारत से फिर लौटकर युद्ध को तैयार होकर आया है और इसे साधारण बात समझकर युद्ध की तैयारी न करें और न भागने का विचार करें। परंतु इस स्वप्न देखने का कुछ फल न निकला। रात्रि के अंत में यह निश्चय हो गया कि होलकर आ गया है। सभी घबड़ा गए कि न लड़ने की शक्ति है और न भागने का अवसर। निरुपाय हो अहमदशाह, भाऊराव और अमीरुल्उमरा समसामुद्दौला खानदौराँ का पुत्र मीर आतिश समसामुद्दौला स्त्रियों, बच्चों तथा परिवारवालों को वहीं छोड़कर कुछ सैनिकों के साथ दिल्ली भागे और बादशाह के इस लड़कपन, अनुभवहीनता तथा अयोग्यता से तैमूरिया वंश के नाम पर भारी चोट पहुँची। होलकर ने पहुँचकर बिना युद्ध के साम्राज्य के सारे सामान को लूट लिया। फर्रुखसियर बादशाह की पुत्री, जो मुहम्मदशाह की स्त्री थी, तथा बादशाही खेमे की दूसरी पर्देवालियाँ सभी कैद हो गईं। यद्यपि होलकर ने इन सबको बड़े सम्मान से रखा पर ऐसे सम्मान पर धूल पड़े। एमादुलमुल्क यह समाचार पाते ही घेरा उठाकर राजधानी भागा। जब जयापा ने देखा कि ये दोनों सर्दार चल

दिए और वह अकेला घेरा नहीं चला सकता तब वह भी घेरा उठाकर नारनौल चला गया। सूरजमल को यों ही घेरे से छुट्टी मिल गई। एमादुल्मुल्क ने होलकर के जोर पर तथा दरबार के सर्दारों, विशेषकर समसामुद्दौला, के मेल से इंतज़ामुद्दौला के स्थान पर वजीर का पद स्वयं ले लिया और मीर आतिश समसामुद्दौला को अमीरुल्उमरा बना दिया। जिस दिन वजीर का पद लेकर सवेरे खिलअत पहिरा उसी दिन अहमदशाह को उसकी माता के साथ कैद कर १० शाबान आदित्यवार सन् ११६७ हि० को मुइज्जुद्दीन जहाँदारशाह के पुत्र इज्जुद्दीन को आलमगीर द्वितीय की पदवी से गद्दी पर बैठा दिया। कैद करने के एक सप्ताह बाद अहमदशाह और उसकी माँ की आँखों में, जिससे कुल उपद्रव हुए थे, सलाई फिरवा दी। कुछ दिन बाद पंजाब प्रांत का प्रबंध करने को लाहौर गया।

यह छिपा नहीं है कि सन् ११६१ हि० में लाहौर की सूबेदारी मुईनुल्मुल्क को मिली थी और उसकी मृत्यु पर लाहौर का शासन उसकी स्त्री को मिला। यह हाल शाह दुर्रानी के वृत्तांत में विस्तार से आया है। एमादुल्मुल्क आलमगीर द्वितीय को दिल्ली में छोड़कर तथा शाहजादा आलीगोहर को प्रबंध से हटाकर हाँसी हिसार के मार्ग से लाहौर चला। बौदाना पहुँचने पर आदीना बेग खाँ के कहने पर एक सेना सैयद जमीलुद्दीन सेनापति तथा एबादुल्ला खाँ कश्मीरी प्रबंधक की सर्दारी में रातोरात लाहौर को भेजा, जो वहाँ से चालीस कोस पर था। ये एक रात व दिन में लाहौर पहुँच गए और ख्वाजासराओं को हरम में भेजकर बेगम को, जो बेधड़क सोई हुई थी,

जगाकर कैद कर लिया। मकान से बाहर लाकर उसे खेमे में रखा गया। बेगम एमादुलमुल्क के मामा की स्त्री थी और इसकी पुत्री की एमादुलमुल्क से मँगनी हो चुकी थी। एमादुल्-मुल्क लाहौर की सूबेदारी आदीना बेग खाँ को तीस लाख रुपया भेंट की शर्त पर देकर दिल्ली लौट गया। जब यह समाचार शाह दुर्रानी ने सुना तब वह बहुत क्षुब्ध हुआ और शीघ्रता के साथ कंधार से वह लाहौर पहुँचा। छुट्टी के लड़के के समान, जो किताबों से भागता है, आदीना बेग खाँ हाँसी हिसार के जंगलों में भाग गया। शाह दुर्रानी फुर्ती से दिल्ली से बीस कोस पर पहुँच कर ठहरा। कुछ सामान न रखने के कारण एमादुलमुल्क अधीनता के सिवा और कोई उपाय न देख शाह दुर्रानी की सेवा में पहुँचा। पहिले यह दंडित हुआ। अंत में उक्त बेगम तथा अशरफ अनवर के अनुरोध से खाँ से प्रसन्न हुआ और बिना भेंट लिए वजीरी पर बहाल रखा। जब शाह दुर्रानी ने जहाँ खाँ को सूरजमल जाट के दुर्गों को लेने के लिए नियत किया तब एमादुलमुल्क ने जहाँ खाँ के साथ रहकर बहुत प्रयत्न किया और शाह ने उसकी प्रशंसा की। जब वजीर होने के भेंट की बात आई तब एमादुलमुल्क ने शाह से प्रार्थना की कि यदि तैमूरी वंश के चिह्न तथा दुर्रानियों की सेना साथ मिले तो अंतर्वेद से बहुत धन वसूल कर कोष में जमा कर दूँ। शाह दुर्रानी ने दो शाहजादे—एक आलमगीर द्वितीय का पुत्र हिदायतबख्श और दूसरा आलमगीर द्वितीय के भाई अजीजुद्दीन के दामाद मिर्जा बाबर को दिल्ली से बुलवा-कर जंगबाज खाँ के साथ, जो शाह के साथ के सर्दारों में से एक

था, एमादुलमुल्क के संग भेजा। एमादुलमुल्क दोनों शाहजादों तथा जाँबाज़ ख़ाँ के साथ विना पूरा सामान लिए जमुना नदी पार कर मुहम्मद ख़ाँ वंगश के पुत्र अहमद ख़ाँ के निवासस्थान फर्रुख़ाबाद को गया। अहमद ख़ाँ ने स्वागत कर शाहज़ादों को ख़ेमा, कनात, हाथी, वस्त्र आदि भेंट दिए। एमादुलमुल्क यहाँ से आगे बढ़कर गंगा नदी पार हो अवध प्रांत की ओर चला। अवध का नाज़िम शुजाउद्दौला युद्ध की तैयारी के साथ लखनऊ से निकलकर साँडी व पाली के मैदान में पहुँचा, जो अवध की सीमा पर है। दो बार साधारण युद्ध दोनों ओर के क़रावलों में हुआ। अंत में सादुल्ला ख़ाँ रुहेला की मध्यस्थता में पाँच लाख रुपए पर संधि हो गई, जिसमें कुछ नगद दिया और कुछ वादे पर रहा। ७ शव्वाल सन् ११६० हि० को एमादुल्मुल्क ने शाहज़ादों के साथ मैदान से कूच किया और गंगा नदी पार कर फर्रुख़ाबाद आया।

जव शाह दुर्रानी सेना में महामारी फैलने से स्वदेश जाने के लिए आगरे से रवाना हुआ तब जिस दिन यह दिल्ली के पास पहुँचा उस दिन आलमगीर द्वितीय नजीबुद्दौला के साथ मक़सूदाबाद तालाब पर आकर शाह से मिला और एमादुल्मुल्क की बहुत शिकायत की। इसपर शाह दुर्रानी नजीबुद्दौला को हिंदुस्तान के अमीरुलउमरा का पद देकर लाहौर चल दिया। नजीबुद्दौला जाति का अफ़ग़ान था। इसे योग्य समझकर एमादुलमुल्क ने अपनी सरकार में स्थान दिया था और जब शाह दुर्रानी हिंदुस्तान आया तब अपनी योग्यता तथा उसके स्वजातीय होने से इसने बादशाह से विशेष परिचय पैदा किया, यहाँ तक

कि स्वयं अमीरुल्उमरा हो गया और एमादुल्मुल्क का उसे विरोधी बना दिया। संक्षेपतः एमादुल्मुल्क नजीबुद्दौला को स्थानच्युत करने के लिए दिल्ली को चला और बालाजीराव के सौतेले भाई रघुनाथ राव और होलकर को बहाने से दक्षिण से बुलवाकर साथ ही दिल्ली को घेर लिया। आलमगीर द्वितीय तथा नजीबुद्दौला घिर गए और पैंतालीस दिन तोप बंदूक का युद्ध होता रहा। अंत में होलकर ने नजीबुद्दौला से भारी घूस लेकर संधि करा दी और नजीबुद्दौला को सम्मान तथा सामान आदि के साथ दुर्ग से बाहर लाकर अपने खेमे के पास स्थान दिया। उसके इलाकों को, जो जमुना नदी के इस पार थे तथा जिनमें सहारपुर, चाँदोर तथा बारहः के कुल कस्बे थे, होलकर ने अपने अधिकार में ले लिए। जब शत्रु-सर्दार ने नजीबुद्दौला को शकरताल में घेर लिया, जिसका विवरण शुजाउद्दौला की जीवनी में दिया है, तब एमादुल्मुल्क को उसने दिल्ली से सहायतार्थ बुलवाया। एमादुल्मुल्क खानखानाँ इंतजामुद्दौला से अप्रसन्न था और आलमगीर द्वितीय से भी उसका हृदय स्वच्छ नहीं था क्योंकि वह समझता था कि ये लोग शाह दुर्रानी से गुप्त पत्र-व्यवहार करते रहते हैं और नजीबुद्दौला का उसपर प्रभुत्व चाहते हैं इसलिए उसने पहिले खानखानाँ को मरवा डाला और तीन दिन बाद ८ रबीउल् आखिर गुरुवार सन् ११६३ हि० को आलमगीर द्वितीय को भी मार डाला। उक्त इतिहास में लिखा है कि औरंगजेब के पुत्र कामबख्श के लड़के मुहीउल्सुन्नः को शाहजहाँ की पदवी से गद्दी पर बैठाया। बादशाह और खानखानाँ को मारने के बाद वह दत्ता के बुलाने

पर सहायता को गया। इसी समय शाह दुर्रानी के आने-आने का शोर वहाँ मचा। दत्ता शकरताल के पास से उठकर शाह दुर्रानी से लड़ने के लिए सरहिंद की ओर चला और एमादुल्मुल्क दिल्ली आया। जब शाह दुर्रानी ने क़रावलों से दत्ता के युद्ध का समाचार सुना तब दुर्रानियों के विजय तथा चचा के पराजय होने का निश्चय किया। इस कारण कि कुश्ती लड़ते हुए दो पहलवानों में इसने देखा कि निर्बल को अधिक सबल शक्ति से नीचे ले गया। दुर्रानियों ने इसके चचा को आक्रमण कर दिल्ली की ओर भगा दिया। एमादुल्मुल्क को ज्ञात हुआ कि इसके चचा को हटाकर शाह दुर्रानी दिल्ली के पास आ पहुँचा है। उसके डर से नए बादशाह को दिल्ली में छोड़कर वह स्वयं सूरजमल जाट के यहाँ चला गया।

नवाब आसफजाह का द्वितीय पुत्र निज़ामुद्दौला सर्दारों में एक अनमोल मोती था और कवियों में प्रसिद्ध था। उसका वृत्तांत उसकी जीवनी में विस्तार से दिया हुआ है। यहाँ केवल कुछ हाल सजावट के लिए दिया जाता है। जब नवाब आसफ़जाह सन् ११५० हि० में दिल्ली आया तब अपने पुत्र को दक्षिण में अपना प्रतिनिधि छोड़ आया। अपने प्रतिनिधिकाल में इसने राजा राव को, जो अहंकार से भरा था, परास्त किया था, जो शत्रु के वृत्तांत में दिया गया है। नवाब आसफजाह की मृत्यु पर यह दक्षिण की गद्दी पर बैठा और शत्रु पर इसका ऐसा रोब छा गया था कि इसके राज्यकाल के अंत तक उसने अपनी सीमा के बाहर पैर न निकाला। हिंदुस्तान के सम्राट् अहमदशाह ने साम्राज्य के कामों को ठीक करने के

लिए अपने हाथ से नवाब निजामुद्दौला को पत्र लिखा। नवाब फुर्ती से नर्मदा नदी के किनारे तक पहुँचा था कि इसी समय अहमदशाह का दूसरा पत्र पहिली आज्ञा को रद्द करने का पहुँचा और इधर मुजफ्फरजंग ने अधीनता छोड़ दी, जिसका विवरण उसकी जीवनी में आया है। नवाब नर्मदा से लौट कर सत्तर सहस्र सवार और एक लाख पैदल सेना लेकर मुजफ्फरजंग को दंड देने के लिए चला और फूलचेरी बंदर तक, जो औरंगाबाद से पाँच सौ कोस जरीबी है, फुर्ती से पहुँचा। २६ रबीउल् आखिर सन् ११६३ हि० को युद्ध हुआ और निजामुद्दौला की विजय हुई तथा मुजफ्फरजंग जीवित कैद हो गया। निजामुद्दौला ने वर्षाऋतु अर्काट में व्यतीत किया। कर्णाटक के अफगान तथा हिम्मत खाँ आदि ने, जो इस चढ़ाई में साथ थे, स्वामिभक्ति छोड़कर जमीन और धन के लोभ में धोखा देने पर कमर बाँधी और फूलचेरी के ईसाइओं के साथ ज्योतिष के अनुसार १५ मुहर्रम की और सुनी सुनाई बात से १६ की रात्रि को सन् ११६४ हि० में रात्रि आक्रमण कर नवाब निजामुद्दौला को बाग में मार डाला। इसके ताबूत को कुछ लोगों ने शाह बुर्हानुद्दीन गरीब के रौजे में नवाब आसफजाह के मकबरे के पास गाड़ दिया।

उसके मारे जाने के बाद मुजफ्फरजंग को, जो कैद में साथ था, दक्षिण की गद्दी पर बैठाया और फूलचरी से हैदराबाद को चले। दैवयोग से नवाब निजामुद्दौला के बदले का सामान जुट गया और मुजफ्फरजंग तथा अफगानों में झगड़ा हो गया। एक दिन जब लकरीतपल्ली में पड़ाव पड़ा हुआ थ

तब यह छिपा वैमनस्य प्रगट हो गया। उक्त वर्ष के १७ रबी-उल् अव्वल को दोनों पक्ष अपने अपने स्थानों से निकल कर युद्ध करने लगे और दोनों ओर के सर्दार मुजफ्फरजंग, हिम्मत खाँ आदि मारे गए। नवाब निज़ामुद्दौला के खून ने अपने घातकों को धूलि में मिला दिया। मुजफ्फरजंग का नाम वास्तव में हिदायत मुहीउद्दीन खाँ था। इसका संबंध शाहजहाँ बादशाह के वजीर अब्दुल्ला खाँ तक पहुँचता था और यह नवाब आसफजाह का दौहित्र था। नवाब आसफजाह के समय बीजापुर का शासन इसे मिला था और नवाब निज़ामुद्दौला के समय उसने इसका विरोध किया। नवाब हुसेन दोस्त खाँ उर्फ चंदा साहब ने, जो अर्काट के नवायत सर्दारों में से था, पहुँच कर इसे अर्काट लेने की लालच दी। मुजफ्फरजंग अर्काट को ओर चला। फुलचरी के फ्रेंच ईसाइओं की एक सेना नवाब चंदा साहब की मार्फत साथ लिया और नवाब आसफजाह के समय से नियुक्त अर्काट के शासक अनवरुद्दीन खाँ गोपामूई पर गया। १६ शाबान सन् ११६२ हि० को युद्ध में वह मारा गया। शहामतजंग ने वीरता दिखलाकर अपना प्राण दे दिया।

नवाब निज़ामुद्दौला के मारे जाने पर अफगानों तथा ईसाइओं ने मुजफ्फरजंग को गद्दी पर बैठाया। मुजफ्फरजंग ने रामदास को अपना मंत्री बनाकर राजा रघुनाथदास को पदवी दी। यह रामदास ब्राह्मण सैनिक था और सिकाकोल का निवासी था। निज़ामुद्दौला को सरकार में मुत्सद्दियों के नीचे था और कुछ भी प्रतिष्ठा न रखता था। नवाब निज़ामुद्दौला के मारने में बहुत प्रयत्न कर मुजफ्फरजंग के प्रेम का

जनेऊ कमर में बाँधा, जिससे मुजफ्फरजंग ने उसे इस पद पर पहुँचा दिया। इसके बाद अफगानों के साथ फुलचरी गया और वहाँ के कप्तान अर्थात् शासक से भेंट कर तथा ईसाई सेना लेकर हैदराबाद चला। अर्काट पार कर यह अफगानों के देश में आया। दैवयोग से मुजफ्फरजंग तथा अफगानों में विरोध हो गया। जिस दिन लकरीतपल्ली में पड़ाव पड़ा हुआ था उस दिन यह गुप्त विरोध प्रकट हो गया और युद्ध छिड़ गया। एक ओर मुजफ्फरजंग और ईसाई थे तथा दूसरी ओर अफगानगण युद्ध के लिए तैयार हो गए। हिम्मत खाँ तथा अन्य अफगान सर्दार मारे गए और मुजफ्फरजंग का काम भी आँख की पुतली में तीर लगने से पूरा हो गया। यह घटना १७ रबीउल् अव्वल सन् ११६४ हि० को घटी थी।

मुजफ्फरजंग की प्रकृति विद्यार्थी सी थी और मंतिक खूब जानता था। कवियों के प्रति कुछ भी श्रद्धा नहीं थी। अपने दो महीने के राज्यकाल में प्रायः आठ दिन इस लेखक को उससे मिलने का अवसर मिला। रात्रि में वह स्वयं शास्त्रीय तर्क-वितर्क में लगा रहता और श्वास प्रश्वास को शुद्ध करने में अच्छी योग्यता नहीं रखता था। जब यह आत्मप्रशंसा करने लगता तब उपस्थित लोग उसका खूब समर्थन करते। मुजफ्फर-जंग के समय में बालाजी पूना से सेना सहित औरंगाबाद आया और वहाँ के नाजिम रुकुद्दौला ने पंद्रह लाख रुपए देकर अपनी जान छुड़ाई। यह रुकुद्दौला नवाब आसफजाह के बड़े सर्दारों में से था। ११ रज्जब सन् ११७० हि० को यह मर गया। मुज-फ्फरजंग पहिला आदमी था, जिसने ईसाइओं को नौकर रखकर

इस्लाम के पक्ष में लाया था। इसके पहिले वे अपने बंदरों में रहते थे और कभी अपनी सीमा से पैर बाहर नहीं निकालते थे। नवाब निजामुद्दौला के मारे जाने के बाद मुजफ्फरजंग ने फ्रेंच ईसाइओं को नौकर रखकर अपनी शक्ति बढ़ाई। मुजफ्फर-जंग के मारे जाने पर वे ईसाई अमीरुल्मुमालिक के नौकर हो गए तथा सिकाकोल, राजबंदरी और अन्य मौजे जागीर में ले लिए। दक्षिण में इन सब ने ऐसा सम्मान पा लिया कि इन्हीं की आज्ञा चालू हो गई। मूसा भूसा (मौंश्योर बुसी) इन ईसाइओं के सर्दार को उम्दतुल्मुल्क की पदवी मिली। अंग्रेजों तथा फरासीसियों में बराबर विरोध रहता था और दोनों जातियों के बंदर भी पास पास थे। अंग्रेज ईसाइओं को भी बादशाही राज्य में भूमि की लालच हुई, जैसे उल्लू उल्लू को देखकर द्वेष करता है। अंग्रेजों ने अर्काट के कुछ स्थान ले लिए और बंगाल में भी अधिकृत हो गए। सूरत बंदर के दुर्ग पर भी इनका अधिकार हो गया। सन् ११७४ हि० में फुलचरी बंदर को घेर कर फरासीसियों से युद्ध करने लगे और फुलचरी की इमारतों को नष्ट कर दिया। सिकाकोल, राजबंदरी तथा अन्य मौजे, जो फ्रेंच की जागीर में चले गए थे और विचार में न आता था कि किस तरह इनके हाथ से निकलेगा, आप से आप छुट गए।

नवाब आसफजाह के तृतीय पुत्र अमीरुल्मुमालिक का असली नाम सैयद मुहम्मद खाँ था। पहिले इसकी पदवी सलाबतजंग हुई और अंत में आलमगीर द्वितीय के समय अमीरुल्मुमालिक की पदवी मिली। मुजफ्फरजंग के मारे

जाने के बाद राजा रघुनाथदास तथा अन्य सर्दारों को इसने बहाल रखा। राजा रघुनाथदास को वकील मुतलक बनाया। राजा ने फ्रेंच ईसाई सेना को, जिसे मुजफ्फरजंग फुलचरी से नौकर रखकर लाया था, समझाकर अमीरुल्मुमालिक का साथी बना लिया। अमीरुल्मुमालिक कूच करता हुआ औरंगाबाद पहुँचा और वर्षाऋतु वहीं व्यतीत कर १५ जीहिज्जा सन् ११६४ हि० को बालाजी को दमन करने के लिए पचास सहस्र सवार के साथ बाहर निकला। १२ मुहर्रम सन् ११६५ हि० को युद्ध आरंभ हुआ। इस्लाम के बहादुरों ने लड़ते-लड़ते शत्रु को पूना के पास पहुँचा दिया और शत्रु की बस्तियों को जो मार्ग में पड़ीं जलाकर भस्म कर दिया। इन युद्धों में फिरंगियों ने अपने तोपखाने से शत्रु को पराभूत कर दिया था। विशेष रूप से १४ मुहर्रम की रात्रि को, जब पूर्ण चंद्रग्रहण था, ईसाइयों ने शत्रु पर रात्रि-आक्रमण किया और बहुतों को मार डाला। जब बालाजी चंद्रग्रहण की पूजा कर रहा था तभी उसने नंगे शरीर नंगे घोड़े की पीठ पर बैठ भागने ही में अपनी मुक्ति समझी। सामान तथा पूजा के सोने के बर्तन मुसलमानों ने लूट लिए। परंतु आपस के विरोध से इस सब प्रयत्न का कुछ फल न निकला। अमीरुल्मुमालिक युद्ध के बाद हैदराबाद की ओर चला। बालकी के मैदान में १३ जमादिउल् आखिर सन् ११६५ हि० को राजा रघुनाथदास को मार डाला। नवाब अमीरुल्मुमालिक हैदराबाद भागे और आज्ञानुसार रुक्नुद्दौला तथा समसामुद्दौला औरंगाबाद से हैदराबाद पहुँचे। रुक्नुद्दौला वकील मुतलक बनाया गया। एकाएक समाचार आया

कि नवाब आसफजाह का पुत्र अमीरुल्उमरा फीरोजजंग अह-मदशाह के दरबार से दक्षिण की सूबेदारी का खिलअत पहिर-कर आ रहा है। रुक्नुद्दौला वकील पद को छोड़कर कपरतला जानोजी निंबालकर के पास चला आया। इसका विचार था कि अमीरुल्उमरा होलकर मराठा के साथ दक्षिण आ रहा है और जानोजी निंबालकर तथा बालाजी की मध्यस्थता में, जिससे वह नवाब आसफजाह के समय से मेल रखता था, अमीरुल्उमरा के पास पहुँच कर मित्रता पैदा कर ले। जिस समय रुक्नुद्दौला हैदराबाद से चला उस समय समसामुद्दौला वहीं था और हैदराबाद को सूबेदारी अमीरुल्उमरा से उसे मिली। जब अमीरुल्उमरा औरंगाबाद पहुँचकर सत्रह रोज जीवित रह मर गया और उन्हीं सत्रह दिनों में क्या खराबी नहीं हुई तब शत्रु ने, जो अमीरुल्उमरा की सरकार में प्रभुत्व तथा सम्मान का अधिकारी था, खानदेश प्रांत, संगमनेर सरकार और जालना आदि पर अमीरुल्उमरा से सनद लिखाकर अधि-कार कर लिया। इसके अनंतर रुक्नुद्दौला कपरतला से निकल-कर अमीरुलमुमालिक के पास पहुँचा और फिर वकील मुतलक बन गया तथा समसामुद्दौला को उक्त पद से हटाकर औरंगा-बाद भेज दिया। जब वर्षाऋतु पास आई तब अमीरुलमुमा-लिक रुक्नुद्दौला के साथ औरंगाबाद आया। उम्दतुलमुल्क मूसा भूसा भी रुक्नुद्दौला के साथ पहुँचा। १४ सफर सन् ११६७हि० को रुक्नुद्दौला के स्थान पर समसामुद्दौला शाहनवाज खाँ औरंगाबादी को वकील का पद दिया गया। समसामुद्दौला ने चार वर्ष तक उस बड़े पद का काम किया और इस काल में

अच्छे प्रयत्नों से शत्रु को ऐसा दबाए रहा कि वे जरा भी न उभड़े। इसका विवरण मआसिरुल्‌उमरा की भूमिका में लिखा गया है।

मीर निजामअली और मीर मुहम्मद शरीफ इस मुअत्तली के समय अमीरुल्‌ मुमालिक के साथ समय व्यतीत कर रहे थे। समसामुद्दौला ने सन्‌ ११६९ हि० में प्रथम को बरार की सूबेदारी और द्वितीय को बीजापुर की सूबेदारी अमीरुल्‌मुमालिक से दिलवाकर हर एक को अपने अपने प्रांत पर भेज दिया। मीर निजामअली अंत में आसफजाह द्वितीय की पदवी से प्रसिद्ध हुआ। मुहम्मद शरीफ को पहिले शुजाअ़ुल्‌मुल्क और बाद को बुर्हानुल्‌मुल्क की पदवी मिली। ६ ज़ीकद: सन्‌ ११७० हि० को समसामुद्दौला के स्थान पर यह वकील मुतलक़ नियत हुआ, जो बीजापुर प्रांत से आकर अमीरुल्‌मुमालिक के दरबार में उपस्थित था। इसी समय आसफजाह द्वितीय अच्छी सेना के साथ बरार से औरंगाबाद आया और बुर्हानुल्‌मुल्क को हटाकर राज्य का कुल प्रबंध अपने हाथ ले लिया।

बुर्हानुल्‌मुल्क को वकील मुतलक़ का पद मिला था इसलिए वह युवराज कहलाता था। उसी वर्ष बालाजीराव युद्ध के लिए औरंगाबाद के पास पहुँचा। आसफजाह द्वितीय ने नवाब अमीरुल्‌मुमालिक को औरंगाबाद के शासन पर छोड़ा और स्वयं बुर्हानुल्‌मुल्क के साथ युद्ध करता हुआ सिंधखेड़ गया, जो औरंगाबाद से बीस कोस के लगभग दूर है। अंत में शत्रु को जागीर देना निश्चय कर संधि की। सत्ताईस लाख रुपए की आय का देश दक्षिण के प्रांतों में से शत्रु को दे दिया और इन महालों से इस्लाम के शासन की शान उठ गई। नवाब आसफ-

जाह द्वितीय संधि के बाद सिंधखेड़ से औरंगाबाद आया और ईसाइयों के सर्दार मूसा भूसा का कर्मचारी हैदरजंग हुआ। इसने जब देखा कि नवाब आसफजाह द्वितीय के कारण उसका प्रभुत्व तथा अधिकार ठीक नहीं बैठता तब उसके पतन का उपाय सोचने लगा। अनेक प्रकार के बहानों से इब्राहीम खाँ कार्पदी तथा नवाब आसफजाह की कुल सेना को उससे अलग कर मूसा भूसा के नौकरों के अधीन कर दिया। सेना का आठ लाख रुपया अपने पास से स्वीकार कर लिया और नवाब को अकेला कर दिया। इसके अनंतर समसामुद्दौला को कैद कर दोनों ओर से अपने को सुचित्त कर लिया। उसने चाहा कि नवाब आसफजाह को हैदराबाद की सूबेदारी के बहाने से वहाँ भेज दे और गोलकुंडा दुर्ग में सुरक्षित रखे तथा मैदान अपने लिए खाली कर ले। परंतु उसने न समझा कि भाग्य उपायों को घुमा देता है। ३ रमजान सन् ११७१ हि० को दोपहर के समय हैदरजंग नवाब आसफजाह के खेमे में आया। नवाब आसफजाह अपने सम्मतिदाताओं से गुप्त रूप से हैदरजंग को मार डालने का निश्चय कर चुका था इससे वहाँ के उपस्थित लोगों ने उसे पकड़कर मार डाला। नवाब आसफजाह घोड़े पर सवार हो अकेला सेना से निकल गया और फिरंगी तोपखाना आश्चर्य में पड़ा रह गया। उसने ऐसा साहस किया कि रुस्तम और अफरासियाब के कारनामे रद्द हो गए। हैदरजंग के मारे जाने से मूसा भूसा तथा सेना के अन्य सर्दारों के होश उड़ गए। इसी उपद्रव में नवाब समसामुद्दौला, यमीनुद्दौला और नवाब समसामुद्दौला का पुत्र अब्दुलगनी खाँ भी मारे

गए। इस घटना के बाद अमीरुल्‌मुमालिक, बुर्हानुल्‌मुल्क और मूसा भूसा हैदराबाद को चल दिए। नवाब आसफजाह द्वितीय हैदरजंग को मारकर बुर्हानपुर चला गया और इब्राहीम खाँ कापर्दी, जो बलात्‌ हैदरजंग द्वारा नवाब आसफजाह से अलग किया गया था, इस समय नवाब के पास पहुँचा। नवाब आसफजाह उक्त वर्ष के १३ रमजान को बुर्हानपुर के पास ठहरा और नगर के धनिकों, मुहम्मद अनवर खाँ बुर्हानपुरी आदि को धन वसूल करने को बुलाया। उक्त खाँ उगाहने वालों की कड़ाई तथा धन के शोक में उक्त वर्ष के १७ ज़ीकद: को मर गया और शाह बुर्हानुद्दीन गरीब की दरगाह में गाड़ा गया। नवाब आसफजाह बुर्हानपुर से बरार गया और पातम कस्बे में, जो बरार के बड़े कस्बों में है, छावनी डाली। इसके बाद रघूजी भोंसला के पुत्र जानोजी से, जो बरार का मकास-दार था, युद्ध करने लगा और फिर संधि की। संधि के अनंतर अमीरुल्‌मुमालिक के यहाँ चला, जो हैदराबाद के पास था। मिलने के बाद तीनों भाइयों में खूब मारकाट हुई। अंत में यह तै हुआ कि नवाब अमीरुल्‌मुमालिक और नवाब आसफ-जाह द्वितीय एक साथ रहें तथा नवाब बुर्हानुल्‌मुल्क अपने प्रांत बीजापुर में रहा करे। १८ रबीउल्‌ अव्वल सन् ११७३ हि० को विचित्र उपद्रव हुआ कि निजामशाही राजधानी अहमदनगर दुर्ग को सदाशिव तथा बालाजी के दो चचेरे भाइयों ने दुर्गाध्यक्ष के मेल से छीन लिया और उक्त तारीख को उनके आदमियों ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। अहमदनगर अहमद निजामशाह का बसाया हुआ है, जिसकी नींव सन्

९०० हि० में पड़ी थी और अपने नाम पर जिसका नाम रखा था। दो तीन वर्ष में नगर अच्छी प्रकार बस गया। कुछ दिन बाद पत्थर और मिट्टी का दुर्ग भी बन गया। इसके भीतर अपने लिए आकर्षक इमारतें तथा सुंदर प्रासाद रहने को बनवाए। इसकी मृत्यु पर इसके पुत्रगण इस दुर्ग के स्वामी हुए। अकबर बादशाह के पुत्र शाहजादा दानियाल ने अपने सेनापति ख़ानख़ानाँ के साथ सन् १००९ हि० के आरंभ में दुर्ग को निजामशाहियों से ले लिया और इसके बाद हिंदुस्तान के तैमूरिया बादशाहों की ओर से दुर्गाध्यक्ष नियत होते रहे। प्रायः दो सौ सत्तर वर्ष बाद यह दुर्ग मुसल्मानों के हाथ से निकलकर मूर्तिपूजकों के अधिकार में चला गया। इसी वर्ष यादवराव ने यह कुविचार किया कि दक्षिण से मुसलमानों का राज्य उठ जाय और मूर्तिपूजन की शोभा बढ़े। इसने इब्राहीम ख़ाँ कापर्दी को नौकर रखा, जो मूर्ति काटने वाले से भी बुरा था। यह इब्राहीम ख़ाँ एक अच्छी जाति का आदमी था, जिसने फिरंगियों के यहाँ शिक्षा पाकर उन्हीं के नियमों के साथ युद्ध करता था। युद्ध का सामान तथा तोपखाना इसके पास काफी था। पहिले यह आसफजाह द्वितीय के यहाँ नौकर हुआ और फिर खूब धन एकत्र कर अलग हो शत्रु से जा मिला। शत्रु पूना से निकलकर उक्त वर्ष के २२ जमादीउल्‌अव्वल को ऊदगिरि के पास युद्ध के लिए पहुँचा। उस समय शत्रु-सेना साठ सहस्र थी। अमीरुल्-मुमालिक और आसफजाह द्वितीय ने चाहा कि ऊदगिरि से [illegible] तक घेरा बना लें और कुछ सरकारी सेना को, जो [illegible] के पास थी, साथ लेकर युद्ध की भूमि पूना को जायँ।

यह छिपा नहीं रहा कि पहिले शत्रु से कज्जाकी चाल का युद्ध हुआ। इसका तात्पर्य है कि इसलाम की सेना के लिए अन्न, घास आदि रसद शत्रु ने बंद कर दिया और घात पाकर थोड़े सामान के साथ वे युद्ध करते रहे। मुसलमान सेना का तोपखाने ही पर दारमदार था कि दुर्ग की सेना के चारों ओर तोपों को खींचकर चलाते थे। इस वार इब्राहीम खाँ की मित्रता से शत्रु से कज्जाकी तथा फिरंगी अर्थात् गोलाधारी दोनों प्रकार का युद्ध हुआ। इसलिए तोपें भी साथ ले गए। मुसल्मानी सेना तोपखाने तथा समूह को अधिकता से धीरे-धीरे चलती थी इसलिए शत्रु के तोपखाने के गोले कम खाली जाते और मुसल्मानी तोपखाना के गोले संयोग से इन तक पहुँचते। इब्राहीम खाँ ने स्वयं अपने को मुसल्मान कहते हुए भी इस्लाम के पराजय पर कमर बाँधी। चलते या ठहरते हुए दिन रात तोपखाने को पास लाकर आग बरसाता और यात्रा करते, रुकते, सोते, जागते गोले छोड़ते हुए कभी छुट्टी न देता था। इससे मुसल्मानी सेना घटने लगी और बहुत से आदमी मारे गए। एक वर्ष के ६ जमादिउल् आखिर को मुसल्मानों ने तोपखाने को छोड़कर इब्राहीम खाँ तथा दूसरे शत्रु पर धावा कर दिया और साहस के तलवार से बहुत से शत्रु को मारा तथा घायल किया। इब्राहीम खाँ की सेना से पंद्रह झंडे छीन लाए। इसी प्रकार लड़ते हुए धारवर से तीन कोस पर नदीसा दुर्ग पहुँचे। शत्रु ने देखा कि यदि मुसल्मान सेना धारवर पहुँचकर वहाँ की सेना से मिल जायगी तो विजय पाना कठिन हो जायगा। इस कारण १५ जमादिउल् आखिर को लगभग

चालीस सहस्र घुड़सवार सेना के साथ मुसल्मानी सेना के चंदावल पर आक्रमण कर दिया। शत्रु-सेना बहुत थी और मुसल्मानी सेना दो तीन सहस्र से अधिक न थी इसलिए बहुत मारकाट के बाद चंदावल नष्ट हो गया और मुसल्मानों की पूर्ण पराजय हो गई। दूसरे दिन लौटना निश्चय हुआ। निरुपाय हो संधि की, जिससे बहुत उपद्रव हुआ। शत्रु ने साठ लाख रुपए आय की जागीर में औरंगाबाद के कुल महाल नगर को छोड़कर, बीदर प्रांत के हसूल, सितारा तथा नीमा के पर्गने और हवेली, बीजापुर, दौलताबाद दुर्ग, आसीरगढ़ तथा बीजा-पुर दुर्ग, जिनमें प्रत्येक मुसल्मान सुलतानों की राजधानी थी, ले लिया। खास सर्कारी तथा सर्दारों और मंसबदारों की बहुत सी जागीरें शत्रु के वेतन में जाने से अच्छी मारकाट हुई। सिवा हैदराबाद प्रांत और बरार तथा बीजापुर प्रांतों के कुछ भाग और बीदर के दुर्गों के कुछ भी आसफ़जाह के वंशजों के हाथ में नहीं रह गया। ये भी स्यात् चौथ के देनदार थे। खराब खून देश के रगों में दौड़ने लगा। यद्यपि इस्लाम की जड़ में बड़ी सुस्ती आ गई पर वैसा नहीं हुआ कि यादव की इच्छानुसार इस्लाम का राज्य एकदम दक्षिण से मिट जाय। इस सुस्ती का आरंभ अहमदनगर दुर्ग के जाने से है इसलिए किसीने साठ लाख रुपए की भूमि के जाने की तारीख इस प्रकार कही है—

काफिर 'इस्लाम' के शत्रु ने लिया।
बहुत से दृढ़ दुर्ग चतुराई से ॥
बुद्धि ने वर्ष की तारीख लिखी।

अहमदनगर व मुल्क दक्किन गया (रफ्त) ॥

संधि होने पर शत्रु ने दौलताबाद पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी। वहाँ के दुर्गाध्यक्ष शुजाअतजंग ने, जो सैयद महमूद कन्नोजी का वंशज था, दुर्ग को सौंपना स्वीकार नहीं किया तब शत्रु ने अमीरुलमुमालिक का शुजाअतजंग के नाम का आज्ञापत्र उसके आदमियों को बुलाकर दिखलाया और कहा कि निश्चय के अनुसार, जो दोनों पक्ष के बीच तै हुआ है, दुर्ग दे देना चाहिए। निरुपाय हो १९ शाबान सन् ११७३ हि० को शुजाअतजंग ने दुर्ग शत्रु के सैनिकों को सौंप दिया। एक ने इसकी तारीख पद्य में कही है—

काफिरों ने अहमदनगर ले लिया।
दूसरा दौलताबाद दुर्ग भी चला गया॥
बुद्धि ने साल की तारीख संसार रूपी पट्टी पर।
इस प्रकार लिखा कि 'दौलताबाद (हम रफ्त) भी गया'॥

[यहाँ दौलताबाद कब और किस प्रकार मुसलमानों के हाथ आया इसका विवरण लिखा जाता है।]

इतिहासकर्त्ताओं ने लिखा है कि दिल्ली के सुलतान जलालुद्दीन खिलजी के दामाद तथा भतीजा सुलतान अलाउद्दीन ने हिंदुस्तान आने के पहिले सुना था कि दक्षिण के राजा रामदेव के पास बहुत बड़ा पैतृक कोष है। सन् ७०४ हि० में वह सात आठ सहस्र सवार लेकर हिंदुस्तान से देवगिरि अर्थात् दौलताबाद विजय करने के लिए दक्षिण को चला। बहुत मार्ग तै कर वह एलिचपुर पहुँचा और

वहाँ से देवगिरि की ओर धावा किया। रामदेव ने, जो असावधानी की मदिरा से मस्त था, उस समय जो सेना तैयार थी उसे युद्ध करने के लिए भेजा। देवगिरि से दो कोस पर सुलतान की अग्गल सेना से मुठभेड़ हुई। दक्षिण के हिंदुओं ने कभी मुसल्मानों को नहीं देखा था और इनकी तीरंदाजी तथा बहादुरी से काम नहीं पड़ा था इसलिए इनके पहिले ही धावे को न सहकर देवगिरि नगर तक न ठहर सके। रामदेव यह हालत देखकर देवगिरि दुर्ग में जा बैठा। सुलतान अलाउद्दीन धावा करता हुआ देवगिरि नगर में पहुँचकर वहाँ के ब्राह्मणों तथा धनाढ्यों को कैदकर डेढ़ सौ मन सोना तथा कई मन मोती आदि ले लिए। दो सौ हाथी तथा कई सहस्र घोड़े रामदेव के तवेले से छीन लिए। इसके अनंतर रामदेव के कोष को लेने के लिए दूत भेज कर संधि की बात चलाई। अंत में एक सहस्र दक्खिनी मन सोना, सात मन मोती, एक मन दूसरे रत्न, एक सहस्र मन चाँदी, चार सहस्र सुनहली रुपहली रेशमी चादर तथा अन्य वस्तुएँ लीं, जिनका हिसाब बुद्धि के परे है। सुलतान ने भेंट प्राप्त कर और प्रति वर्ष के लिए रामदेव पर कर नियत कर 'काफिरों' को कैद से छुट्टी दी तथा घेरे के २५ वें दिन लौटना आरंभ कर कुशलता तथा लूट के साथ हिंदुस्तान पहुँचा और सुलतान जलालुद्दीन को मारकर स्वयं गद्दी पर बैठा।

जब रामदेव ने घमंड से तीन साल तक कर नहीं भेजा तब सुलतान ने सन् ७०६ हि० में मलिक काफूर नायब को, जो उसके बड़े सर्दारों में से था, एक लाख सवारों के साथ दक्षिण विजय करने भेजा और जब वह दौलताबाद के पास

पहुँचा तब रामदेव अपने में युद्ध की सामर्थ्य न देखकर अपने पुत्र सिकंदर देव को दुर्ग में छोड़कर स्वयं अपने सभी पुत्रों तथा भेंट का सामान आदि ले दुर्ग से बाहर निकल कर मलिक नायब से मिलने आया। मलिक नायब इसे कैद कर सन् ७०७ हि० के आरंभ में सुलतान अलाउद्दीन की सेवा में लिवा लाया। सुलतान ने उसपर कृपा कर उसे श्वेत छत्र, राय रायान की पदवी तथा देवगिरि और बहुत-सा पुराना प्रांत उसे देकर सम्मानित किया। बंदर सूरत के पास तूसारी कस्बा पुरस्कार में और एक लाख तन्का नगद देकर पुत्रों तथा साथियों के साथ उस ओर जाने की छुट्टी दे दी। रामदेव ने देवगिरि पहुँचकर सुलतान से प्राप्त प्रांतों पर अधिकार कर सारी अवस्था भर अधीनता के विरुद्ध कुछ नहीं किया। सन् ७०९ हि० में सुलतान ने मलिक नायब काफूर को भारी सेना के साथ देवगिरि के मार्ग से वारंगल भेजा। जब यह देवगिरि पहुँचा तब रामदेव ने स्वागत कर इसकी अच्छी सेवा की और काम में बहुत सहायता पहुँचाई। मलिक नायब ने वारंगल विजय के अनंतर वहाँ के राजा लद्दरदेव को शरण दी और भारी भेंट लेकर हिंदुस्तान लौटा। सन् ७१० हि० में मलिक नायब को फिर दक्षिण के एक बंदर द्वारसमुद्र, जो उस समय जल के पड़ने से खराब था, और कई अन्य बंदरों को विजय करने भारी सेना के साथ भेजा। जब यह देवगिरि पहुँचा तब इसे ज्ञात हुआ कि रामदेव मर गया है और उसका पुत्र उसका स्थानापन्न हुआ है। जब पुत्र से पिता का सा व्यवहार नहीं पाया तब सावधानी की दृष्टि से एक सेना

जालना में छोड़कर वह आगे गया। तीन महीने बाद इच्छित बंदरों तक पहुँच कर उस प्रांत को नष्ट कर दिया और कर्णाटक नरेश बल्लालदेव को कैद।कर लिया। नगद और कई सहस्र ऋरत (एक तोल) रत्न, जिसका मूल्य लगाना दैवी विद्या पर निर्भर है, लेकर वह सकुशल जालना लौट आया ओर वहाँ बल्लालदेव तथा कणोटक के दूसरे सर्दारों को, जिन्हें कैद कर लाया था, एकदम छोड़ दिया। सुलतानपुर और नजरबार के मार्ग से सन् ७११ हि० में यह दिल्ली पहुँचा। तीन सौ बारह हाथी, छान्नवे मन सोना, रत्नों के संदूक तथा बीस सहस्र घोड़े सुलतान को भेंट दिए। कुछ दिन बाद सुलतान से प्रार्थना किया कि रामदेव मर गया है और उसके पुत्र पर मेरा विश्वास नहीं है। यदि आज्ञा हो तो दक्षिण जाकर कई वर्ष का कर युद्ध से वसूल करें और रामदेव के देश को साम्राज्य में मिला लें। सुलतान ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर दक्षिण जाने की आज्ञा दे दी।

मलिक नायब जब देवगिरि पहुँचा तब रामदेव के पुत्र को पकड़ कर मार डाला। दुर्ग को अधिकार में लाकर उस देश में मुहम्मदी झंडा गाड़ दिया तथा 'राम राम' के स्थान पर सलाम चला दिया। उसी समय से यह दुर्ग मुसल्मान शासकों के अधिकार में बराबर रहा। बादशाह शाहजहाँ साहिबकिरान द्वितीय के एक सर्दार महाबत ख़ाँ ने १९ जीहिज्जा सन् १०४४ [illegible] को यह दुर्ग निजाम शाहियों से ले लिया और तब से हिंदुस्तान के तैमूरी वंश के सुलतानों के दुर्गाध्यक्षगण एक के बाद दूसरा इस दुर्ग का रक्षक रहा। प्रायः चार सौ साठ वर्ष के

अनंतर यह मुसल्मानों के अधिकार से मूर्तिपूजकों के हाथ में चला गया।

राजाओं के समय देवगिरि में दुर्ग, चहार दीवारी, खाई आदि नहीं थी। मुसल्मान सुलतानों ने भारी दुर्ग बनवाया और तुग़लकशाह के पुत्र सुलतान मुहम्मद ने देवगिरि का नाम दौलताबाद रखा तथा दुर्ग के चारों ओर पत्थर की गहरी खाई बनवाई। उसी ने बड़ी इमारतें बनवाईं तथा उसे राजधानी बनाना चाहा और दिल्ली को उजाड़ कर वहाँ के निवासियों को यहाँ लाकर बसाना चाहा। अंत में उसका यह विचार पूरा न हो सका।

बीजापुर के दुर्गाध्यक्ष ने सामान की कमी से इसकी रक्षा नहीं की, जिससे शत्रु ने अमीरुलमुमालिक की आज्ञा प्राप्त कर भेज दिया तथा दुर्ग शत्रु के आदमियों को सौंप दिया गया। बीजापुर का दुर्ग आदिलशाही राजवंश के यूसुफ आदिलशाह का निर्माण कराया हुआ है। पहिले यह मिट्टी का था, जिसे तोड़कर यूसुफ आदिलशाह ने सन् ९०० हि० के अंत में दुर्ग को पत्थर तथा मसाले से बनवाया। उसकी मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारियों का अधिकार रहा। औरंगजेब ने सन् १०९७ हि० के ज़ीक़दा महीने के आरंभ में इस दुर्ग को सिकंदर से, जो आदिलशाही वंश का अंतिम सुलतान था, ले लिया और उस समय से तैमूरी वंश के सुलतानों के दुर्गाध्यक्ष इसकी रक्षा करते रहे। दो सौ सत्तर वर्ष से कुछ अधिक बीतने पर यह दुर्ग तसबीह फेरनेवालों के हाथ से निकल कर जनेऊधारियों के हाथ में चला गया।

आसीरगढ़ के अध्यक्ष मीर नजफ अली खाँ ने इस्लाम धर्म के विचार से शत्रु के मनुष्यों को दुर्ग देना अस्वीकार कर दिया और उसके घेरा डालने पर एक वर्ष तक युद्ध कर उसकी रक्षा की। अंत में जब कुल सामान चुक गया तब १२ रबीउल्-आखिर शुक्रवार सन् ११७४ हि० को संधि कर दुर्ग शत्रु को दे दिया। लेखक कहता है—क़िता—

काफिर ने इस्लाम के शाह का दुर्ग लिया।
इस रूप में भाग्य का आज्ञापत्र गया॥
बुद्धिमान ने इसकी तारीख का वर्ष।
लिखा 'अजब हुस्न आसीर रफ्त'॥

(विचित्र दुर्ग आसीर गया)

आसीरगढ़ आसा अहीर का निर्मित कराया है जिसके अधिक प्रयोग से बीच के अक्षर लुप्त हो गए। आसा एक मनुष्य का नाम था और अहीर उसकी पदवी। अहीर हिंदी भाषा में गाय चरानेवाले को कहते हैं। खानदेश के मातबर जमींदारों में से आसा अहीर था। इसके पूर्वजगण प्रायः सात सौ वर्ष से उस ऊँचे पहाड़ में रहते थे और पशु तथा कुल माल की रक्षा के लिए पत्थर व मिट्टी का दुर्ग बनाकर उसीमें कालयापन करते रहे। जब आसा अहीर का समय आया और धन तथा पशुओं में यह अपने पूर्वजों से बढ़ गया तब पुरानी दीवाल तोड़कर पत्थर व मसाले का यह दुर्ग तैयार कराया और इससे यह इसीके नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बुर्हानपुर के शासक नसीर खाँ फारूकी ने, जो सन् ८०१ हि० में गद्दी पर बैठा, दुर्ग को आसा अहीर से छीन लिया।

विवरण यों है कि इसने आसा अहीर के पास संदेशा भेजा कि बगलाना तथा अंतूर के राजा ने भारी सेना एकत्र कर उससे शत्रुता की है जिससे वह चाहता है कि वह उसके परिवार को अपने दुर्ग में स्थान दे और वह सुचित्त होकर शत्रु को दमन कर सके। आसा ने स्वीकार कर लिया। नसीर ख़ाँ ने पहिले दिन कुछ स्त्रियों को डोलियों में दुर्ग में भेज दिया और उन्हें समझा दिया कि यदि आसा की स्त्रियाँ मिलने आवें तो जैसा उचित हो वैसा करें। दूसरे दिन बहादुर सैनिकों को डोलियों में बिठाकर भेजा और जब वे दुर्ग में पहुँच गईं तब वे सैनिक एकाएक डोलियों से निकल पड़े और तलवार खींचकर आसा के घर की ओर चल दिए। दैवयोग से आसा और उसके पुत्रगण असावधान थे और मुबारकबादी के लिए आ रहे थे। इन लोगों ने सामना होते ही सबको मार डाला। बचे हुए रक्षा माँगकर बाहर निकल गए। नसीर ख़ाँ ने यह समाचार पाकर जहाँ वह था वहाँ से शीघ्रता से चलकर अपने को आसीर में पहुँचाया। नए सिरे से उसकी मरम्मत कराकर टूटे फूटे स्थानों को ठीक किया। उस समय से यह दुर्ग नसीर ख़ाँ के वंशजों के पास तब तक रहा जब सन् १००९ हि० में अकबर ने इस दुर्ग को राजाअली ख़ाँ के पुत्र बहादुर से छीन लिया। उस समय से तैमूरी सुल-तानों के दुर्गाध्यक्षगण इसकी रक्षा का प्रबंध करते रहे। छ सौ साठ से अधिक वर्षों के बाद यह दुर्ग मुसल्मानों के अधिकार से निकल गया और काफिरों के हाथ चला गया।

साठ लाख रुपयों का देश तथा तीनों दुर्ग लेकर यादव घमंड से भर गया और लड़ाकू सेना तथा फिरंगी तोपखाना

लेकर हिंदुस्तान चला कि प्रयत्न कर दत्ता को परास्त करे पर वह यह नहीं समझा कि उपाय पर भाग्य हँसता है, मृत्यु ने मार्ग प्रदर्शन कर इसे हिंदुस्तान पहुँचा दिया। यद्यपि नाम को सेना की सर्दारी विश्वासराव को मिली थी और प्रबंधकर्ता यादव बनाया गया था पर वास्तव में यही हर्ताकर्ता था। हिंदुस्तान पहुँचने पर शाह दुर्रानी के युद्ध में विश्वासराव, यादव तथा दूसरे सर्दारगण मारे गए और यह सेना, तोपखाना तथा अचिंतनीय सामान दुर्रानियों को लूट में मिला। शाह दुर्रानी के हाल में इसका विस्तृत विवरण आवेगा। यह घटना ६ जमादिउल् आखिर सन् ११७४ हि० को हुई। बालाजीराव दक्षिण में उक्त वर्ष के १९ जीकद: को पुत्र तथा भाई से जा मिला और राज्य उसके पुत्र माधोराव को, जो अल्पवयस्क था, तथा उसके सौतेले भाई रघुनाथराव को मिला। सन् ११७५ हि० में आसफजाह द्वितीय सेना एकत्र कर अमीरुल्‌-मुमालिक के साथ बोदर से, जहाँ छावनी थी, उक्त कारणों से औरंगाबाद की ओर चला। रघुनाथराव और माधोराव भी भारी सेना तथा तोपखाने के साथ पूना से चलकर शाहगढ़ के मैदान में मुसल्मानों के सामने पहुँचे। औरंगाबाद तक युद्ध होता रहा। आसफजाह द्वितीय ने अपना अधिक सामान औरंगाबाद में छोड़कर २३ रबीउल् आखिर सन् ११७५ हि० को वहाँ से पूना की ओर यात्रा आरंभ की और शत्रु को मारते हुए पूना से सात कोस पर पहुँचा दिया। मार्ग में लौनगर को जलाकर तथा मूर्तियों को तोड़कर इमारतों को ढहा दिया। यह नगर दक्षिणी गंगा के किनारे पर है, इसमें भारी

मंदिर है तथा शत्रु ने यहाँ बड़े-बड़े प्रासाद रहने को बनवाए थे। प्रायः पूना नगर की भी यही हालत होने को थी कि एकाएक नवाब आसफजाह के छठे पुत्र नासिरुलमुल्क अपने भाई से मनोमालिन्य रखने के कारण तथा मुसल्मानी सेना के एक बड़े सर्दार राजा रामचंद्र दोनों शत्रु से मिल गए और उक्त वर्ष के २७ जमादिउल् अव्वल को मुसल्मानी सेना से हटकर शत्रु सेना में जा पहुँचे। जो कार्य नहीं करना चाहता था उसे कर डाला। इस घटना से शत्रु ने मुसल्मानों का पल्ला हलका हो जाना समझकर दूसरे दिन चारों ओर से आक्रमण कर दिया और तोपें लगाकर आग की वर्षा करने लगे। मुसल्मानों ने तोपों की मार से निकलकर छोटे शस्त्रों से युद्ध करना आरंभ किया और तेज तलवार से शत्रु के व्यूह को तोड़कर बहुतों को मार डाला। शत्रु असमर्थ हो युद्धस्थल से भाग गया। जब देखा कि विजयी सेना इतनी दूर का यात्रा कर पूना से सात कोस पर आ पहुँची है तब माधोराव के आगे जाकर फरियाद किया और कहा कि मार्ग बहुत रोका गया पर कुछ भी लाभ नहीं हुआ। कल पूना भी जलाया जायगा। पूना के निवासीगण ने भी रघुनाथराव के पास जाकर शोर मचाया कि हम लोगों के परिवार को मुसल्मानों को देना चाहता है। निरुपाय हो रघुनाथराव तथा माधोराव ने दूत भेजकर संधि का प्रस्ताव किया और औरंगाबाद तथा बीदर प्रांतों की सत्ताईस लाख की भूमि लेकर आसफजाह द्वितीय ने उसे स्वीकार कर लिया। यह संधि ६ जमादिउल् आखिर सन् ११७५ हि० को हुई। विचित्र यह है कि इसी दिन एक वर्ष पहिले शाह दुर्रानी ने यादव पर

विजय प्राप्त की थी। नवाब आसफजाह पूना से सात दूरी से कूच कर राजा रामचंद्र के महालों की ओर चल उसके किए हुए कुकर्म के बदले में उसके देश को नष्ट कर वर्षाकाल के आरंभ में १४ जीहिज्जा सन् ११७५ हि छावनी डालने की इच्छा से बीदर के दुर्ग में अमीरुल्मुस के साथ पहुँचा। उसी दिन अमीरुल्मुमालिक को दुर्ग कर दिया। इसने एक वर्ष तीन मास तथा छ दिन विताया। इस पुस्तक के लिखे जाने के बाद ८ र अव्वल गुरुवार सन् ११७७ हि० को यह मर गया शेख मुहम्मद मुलतानी के मकबरे के पास गाड़ा गया। मृत्यु की तारीख मीर औलाद मुहम्मद जका ने निकाला।

दक्षिण के स्वामी की ऊँची आत्मा।
परिश्रम के फंदे से उड़ गई॥

जका ने उसकी मृत्यु की तारीख लिखी। 'अमीरुल्मुः वजिन्नत शुदः' (अमीरुल्मुमालिक स्वर्ग गया)

आसफजाह द्वितीय ने दुर्ग बीदर में ठहरने के बाद आली गौहर के फर्मान को स्वागत कर सम्मान के हाथों जो इसके नाम अमीरुल्मुमालिक के स्थान पर दक्षि सूबेदारी की नियुक्ति पर था, और राजगद्दी को द सुशोभित किया। इसने संगमनेर निवासी ब्राह्मण राज मासूत को अपना पूर्ण प्रबंधक बनाकर कुल माली तथा कार्य उसे सौंप दिया। संधि के बाद उक्त वर्ष के ६ जमा आखिर को यह सुनने में आया कि रघुनाथराव तथा माधे पूना के पास छावनी डाली है और इस समय दोनों में

हो गया है। माधोराव के साथी चाहते थे कि अवसर पाकर रघुनाथराव को कैद कर लें और रघुनाथराव यह सूचना पाकर ३ सफर सन् ११७६ हि० को थोड़े सवारों के साथ शीघ्र पूना से निकल कर नासिक की ओर चल दिया। नवाब आसफजाह द्वितीय ने अपने एक अच्छे सर्दार मुहम्मद मुराद खाँ बहादुर औरंगाबादी को शत्रु को दंड देने के लिए नियत किया। वह औरंगाबाद में रहता था और रघुनाथराव के बाहर निकलने का समाचार सुनकर १४ सफर को उसी वर्ष सेना सहित औरंगाबाद से शीघ्रता से चलते हुए उसने नासिक के पास रघुनाथराव को जा पकड़ा। रघुनाथराव बिना कुछ सामान के घबड़ाहट में चला आया था इसलिए मुहम्मद मुराद खाँ बहादुर का आना अपने लिए अनुकूल समझकर नम्रता से व्यवहार किया। शत्रु के सर्दारों ने मुहम्मद मुराद खाँ की मित्रता देखकर समझा कि नवाब आसफजाह रघुनाथराव के पक्ष में है इसलिए उनमें से बहुतों ने उसका पक्ष ग्रहण कर लिया और माधोराव का साथ छोड़ दिया। इस कारण रघुनाथराव के पास अच्छी सेना एकत्र हो गई। २५ रबीउल् आखिर को औरंगाबाद से वह अहमदनगर गया। माधोराव भी सेना सहित पूना से निकला और अहमदनगर से बारह कोस पर वर्तमान वर्ष के २५ रबीउल् आखिर को माधोराव पराजित होकर मैदान से हट गया तथा दूसरे दिन जब प्राणरक्षा का वचन ले लिया तब अपने चाचा रघुनाथराव के पास पहुँचा। नवाब आसफजाह रघुनाथराव की सहायता को बीदर से निकलकर युद्धस्थल के पास पहुँचा था कि वहीं उसे सब समाचार मिला। जब आसफजाह चीदगाँव पहुँचा तब

रघुनाथराव ने भी वहीं पहुँचकर उसी वर्ष के १ जमादीउल् अव्वल को भेंट की तथा भोज दिया। रघुनाथराव ने इसके उपलक्ष में पचास लाख की भूमि और दौलताबाद दुर्ग नवाब आसफजाह को भेंट किया तथा सनदों को तैयार कर सरकारी वकीलों को दे दिया।

यह भारी काम मुहम्मद मुराद ख़ाँ के प्रयत्नों से हुआ था इसलिए राजा परमासुत यह न देख सका कि दौलताबाद दुर्ग तथा देश में उसका अधिकार तथा प्रभुत्व होवे और इसलिए उसने संधि तोड़ दी। उसने नवाब आसफजाह को इसपर वाध्य किया कि वह रघुनाथराव को मुअत्तल कर दे और बरार के मकासदार रघू भोंसला के पुत्र जानोजी को इस लोभ से कि तुमको रघुनाथराव के स्थान पर नियत करते हैं बुलाकर नवाब आसफजाह के साथ कर दिया। नवाब आसफजाह का छठा पुत्र नासिरुल्मुल्क, जो शत्रु की ओर चला गया था, अपमान के कारण दुखी हो उक्त वर्ष के १४ शाबान को नवाब आसफजाह के पास चला आया। नवाब भारी सेना के साथ रघुनाथराव को दंड देने चला और वह अपने में युद्ध का सामर्थ्य न देखकर भागा तथा देश को लूटने में लगा, जो शत्रु की प्रकृत चाल है। वह तीस सहस्र सवार के साथ औरंगाबाद आकर नगर के पश्चिम ओर उतरा और नगरवासियों से बहुत धन माँगा। औरंगाबाद के नाजिम मोतमिनुल्मुल्क बहादुर ने सेना तथा युद्धीय सामान की कमी के कारण बड़ी चतुराई तथा सतर्कता से बुर्ज, दीवाल आदि को दृढ़ कर तथा मोर्चों का प्रबंध नगर कोतवाल हिम्मत ख़ाँ बहादुर

को, जो मुहम्मद मुराद खाँ बहादुर का सौतेला भाई था, तथा अन्य मुत्सद्दियों और नगर निवासियों को सौंपकर नवाब आसफजाह की सहायता की प्रतीक्षा करते हुए शत्रु से बातचीत करता रहा। रघुनाथराव ने इस अर्थ का पता पाकर नगर लेना निश्चय कर दुर्ग तोड़ने के लिए सीढ़ियाँ बनवाईं। उक्त वर्ष के २० शाबान के सवेरे पूर्व ओर के छोटे द्वार से उसके साथी लुटेरे चहारदीवारी के बाहर की बस्ती में घुस आए और लूट-मार करने लगे। रघुनाथराव स्वयं ससैन्य नगर के उत्तर ओर ठहरा रहा और उसके सैनिकगण ने दुर्ग के नीचे सीढ़ियाँ लगाईं। हाथियों को दीवाल के पास खड़ा कर कुछ लोग दीवाल पर चढ़ गए और फाटक के पल्लों को, जो भीतरी दुर्ग के बड़े बाग की दीवाल में था, तोड़कर भीतर घुस जाना चाहा। हिम्मत खाँ बहादुर, मिर्जा मुहम्मद बाकर खाँ तथा नगर के तमाशाई लोगों ने तीर, गोली, पत्थर आदि की वर्षा करने में इतना प्रयत्न किया कि बहुत से कुविचारी दीवाल के नीचे नर्क चले गए और दूसरी ओर भी बहुत से लुटेरे नगरवासियों द्वारा मारे तथा घायल किए गए। ठीक युद्ध में जब गोली व तीर की वर्षा हो रही थी तभी रघुनाथराव के हाथियों पर गोले पड़े और उससे वे मैदान से निकल भागे। रघुनाथराव हसरत से हाथ मलते हुए तथा उपद्रव की धूल मुखपर डालते हुए चढ़ाई से लौट गया। आसफजाह के ससैन्य पास पहुँचने का समाचार पाकर वह बगलाने की ओर चला गया। उक्त वर्ष के २६ शाबान को आसफजाह औरंगाबाद पहुँचा। शत्रु का विचार था कि बरार प्रांत में पहुँचकर लूटमार करे, इसलिए नवाब ने प्रथम

रमजान को लंबी यात्रा कर वालापुर के लगभग पहुँच उसका मार्ग रोका। शत्रु उस ओर से लौटकर और औरंगाबाद के पास से होता हुआ हैदराबाद गया। नवाब भी गंगा नदी तक पीछा करता हुआ गया और वहाँ यह सम्मति निश्चित हुई कि पीछा करने से शत्रु के राज्य को लूटना अच्छा है इसलिए नवाब ने पीछा छोड़ पूना का रास्ता लिया। आदमनगर की घाटी पारकर सिपाहियों के झुंडों को हर ओर भेजा कि शत्रु के निवासस्थानों को लूटें। स्वयं पूना से दो कोस पर पहुँचकर पड़ाव डाला। यहाँ के निवासी पहिले ही भाग कर दुर्गों तथा पास के स्थानों को चले गए थे। मुसल्मानों ने पूना की कुल इमारतों को जलाकर खाक कर दिया। सेनाओं ने पूना के चारों ओर तथा कोंकण प्रांत में लूट-मार करने में कुछ उठा न रखा। ईश्वरेच्छा थी कि बालाजी और यादव के समय दक्षिण की सीमाओं से लाहौर तक किसीका सामर्थ्य न था कि इनके मार्ग में बाधा डाल सके पर अब इनके सामान तथा संपत्ति लूटी जा रही थी और लाखों की बनी हुई इमारतें जला दी गईं। मीर औलाद मुहम्मद 'जका' ने कहा है—किता—

आसफजाह द्वितीय, झंडों के सुलेमान ने
बिरहमन जाति की बस्ती कुल जला दी।
जका के प्रज्वलित हृदय से तारीख सुनो
'आतिशजद: पूना रा सिपाह इस्लाम'

(इस्लाम की सेना ने पूना को जला दिया, ११८१ हि०)।

रघुनाथराव ने हैदराबाद पहुँचकर उक्त वर्ष के १ जीक़द:

को नगर पर आक्रमण कर उसे लेने के लिए बहुत प्रयत्न किया पर वहाँ के शासक शुजाउद्दौला बहादुरदिल खाँ औरंगाबादी ने काफी सेना रखकर नगर का ठीक प्रबंध कर लिया था इससे वहाँ के मनुष्यों ने दृढ़ता के साथ तोप, बंदूक व तीर से धावे को रद्द कर दिया। बहुत से गाजियों ने शत्रु की सेना को नर्क की अग्नि को भेंट कर दिया। यहाँ से भी रघुनाथराव असफल लौट गया।

निज़ामुल्मुल्क निज़ामुद्दौला आसफजाह

यह निज़ामुल्मुल्क आसफजाह का चौथा पुत्र था। इसका वास्तविक नाम मीर निज़ामअली था। अपने पूज्य पिता की देखरेख में शिक्षा प्राप्त कर खाँ तथा असदजंग बहादुर की इसने पदवी पाई। इसके मुख से साहस प्रकट हो रहा था इसलिए छोटी अवस्था ही में शेख अली खाँ बहादुर की अभि· भावकता में इसे मराठों को दमन करने पर नियत किया। सलाबतजंग के अधिकार-काल में सन् ११६९ हि० में यह बरार का सूबेदार नियत हुआ। इसके अनंतर औरंगाबाद में अपने भाई सलाबतजंग के पास पहुँच कर इसने युवराज का पद पाया। इसी समय राव बालाजी के अधिक कर माँगने का विचार जानकर तथा उन्हें दमन करना उचित समझ कर इसने भाई को उक्त नगर में छोड़ा और स्वयं कुल सेना के साथ जाकर उसका सामना किया। अंत में दोनों में संधि हो गई।

इसी बीच मूसा भूमा (मौंश्योर बुसी), जो फरासीसी टोपवालों का सर्दार और सलाबतजंग के सेवकों में से था, हैदराबाद से आया। जब इसने उसके कर्मचारी हैदरजंग के विरोधी चाल को देखा तब उसके मस्तिष्करूपी प्याले को जीवन-मर्यादा से खाली कर बड़े साहस से बुर्हानपुर का मार्ग लिया। वहाँ सामान एकत्र कर साहस के साथ बरार गया और रघूजी भोंसला के पुत्र जानोजी से, जो मराठों के चौथ

के बदले में उस प्रांत में था, कई युद्ध कर प्रबंध ठीक किया। इसके बाद सलाबतजंग से भेंट करने को, जो उस समय औरंगाबाद प्रांत में मछली बंदर के पास ठहरा हुआ, उस ओर गया। इसका छोटा भाई बसालतजंग इसके आने का समाचार सुनकर बड़े भाई से अलग होकर कृष्णा नदी पार करते हुए अपने अधीनस्थ प्रांत को चला गया। यह पहुँचकर यौवराज्य के कार्यों को करने लगा। इसके अनंतर सन् ११७३ हि०, सन् १७५९ ई० में जब बालाजीराव ने अहमदनगर दुर्ग पर अधिकार कर उस प्रांत की अपनी माँग को उठा लिया तब इसने उससे युद्ध करना निश्चय किया। भाग्य से चंदावल सेना परास्त हो गई जिससे इसके सर्दारगण मारे गए तथा घायल हुए। अवसर समझ कर इसने साठ लाख रुपए के आय की भूमि मराठों को देकर संधि कर ली। सलाबतजंग से बिदा होकर यह कर उगाहने के लिए उक्त प्रांत में राजेंद्री की ओर गया। वहाँ से लौटने पर सलाबतजंग की सरकार पर सेना का वेतन अधिक चढ़ जाने से आज्ञा मानना दोनों के बीच नहीं रह गया था इसलिए हैदराबाद प्रांत के कुछ सरकार सेना का वेतन चुकाने के योग्य लेकर तथा उक्त प्रांत के अंतर्गत एलकंदल में पहुँच कर इसने वर्षा वहीं व्यतीत की। दूसरे वर्ष बालाजी का भाई रघुनाथराव ससैन्य आकर कष्ट पर कष्ट देने लगा तब दृढ़ता को हाथ से न जाने देकर युद्ध करता हुआ यह उक्त प्रांत के मेदक कस्बे तक आया और वहाँ संधि हो गई। इसके अनंतर बीदर जाकर मुरतदा खाँ से उस दुर्ग को ले लिया। वहाँ कुछ दिन ठहरकर यह हैदराबाद के पास पहुँचा।

उस समय बसालतजंग बीजापुर प्रांत के जमींदारों से, जो उसके अधीन था, धन वसूल करने के लिए सलाबतजंग को कृष्णा नदी के उस पार लिवा गया था पर कोई लाभ न होने से उससे अलग हो गुलबर्गा दुर्ग की ओर चला। यह समाचार पाकर फुर्ती से यह उस दुर्ग में पहुँचा और भाई को सान्त्वना दिलाकर अपने साथ ले बरसात व्यतीत करने को बीदर आया। इसी वर्ष में बालाजी की मृत्यु हो गई और उसके भाई रघुनाथराव तथा पुत्र माधोराव में वैमनस्य हो गया इसलिए मराठों को दमन करने का यह अवसर समझ कर सन् ११७५ हि० में युद्ध करता हुआ यह पूना से छ कोस पर पहुँचा, जो उनका निवासस्थान था। संधि हो जाने पर बीदर लौट आया। उसी वर्ष दक्षिण की सूबेदारी की सनद दरबार से इसके नाम आई, जिससे इसने अपने भाई को एकांत में बैठाकर स्वयं उस प्रांत का कुल कार्य अपने हाथ में ले लिया।

इसके दूसरे वर्ष मराठों को दमन करने का निश्चित विचार कर इसने भीमरा नदी पार किया। रघुनाथराव सेना की कमी से सामना न कर सकने पर भागा और यह शीघ्रता से उसका पीछा करते हुए, कि कभी पंद्रह कभी बीस कोस दूरी रह जाती थी, पायाँघाट बरार की सीमा तक और वहाँ से औरंगाबाद प्रांत के पत्तन कस्बा तक दौड़ता रहा। जब रघुनाथराव लूटता मारता हुआ हैदराबाद की ओर चला तब इसने पूना पहुँचकर उस जाति से बदला लेने तथा लूटने में कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा। इसके बाद ओसा दुर्ग आकर तथा

अपना बोझ हलकाकर औरंगाबाद की ओर लौटा। गंगा नदी (नर्मदा) बाढ़ पर थी इसलिए कुछ दिन उसे पार करने के लिए रुकना पड़ा। सेना दो भाग में हो गई—एक उस ओर, जो इसके साथ औरंगाबाद पहुँच गई और दूसरी इस ओर इसके दीवान राजा विट्ठलदास के साथ रह गई। मराठे घात में लगे थे इससे एकाएक इस पर आ पड़े। कुछ मारे गए, कुछ नष्ट हो गए। इसके अनंतर इसके तथा माधोराव के बीच संधि हो गई, जो अपने पितृव्य रघुनाथ-राव पर हावी हो गया था। सन् ११७८ हि०, सन् १७६४ ई० में यह कमरनगर कर्नूल गया, जहाँ का ताल्लुकेदार स्वच्छंद हो रहा था, और उससे संधि कर खिराज लेता हुआ कुंजी कोटा, तुरवती तथा कृष्णा नदी के उस ओर से यात्रा करता हुआ गुजरात प्रांत के अंतर्गत वजवारः के पास से उक्त नदी को पार किया। सन् ११८२ हि०, सन् १७६८ ई० में श्रीरंगपत्तन जाकर वहाँ के ताल्लुकेदार हैदरअली खाँ से मिलकर, जिसकी जीवनी अलग दी गई है, कर्णाटक हैदराबाद के ईसाइयों पर सेना ले गया पर इच्छानुसार लाभ नहीं हुआ और तब संधि कर हैदराबाद पहुँचा।

इसके अनंतर सन् ११८७ हि० में माधोराव की मृत्यु पर उसके भाई नारायणराव को मारकर रघुनाथराव उपद्रव करने को इसके राज्य में आया इसलिए यह जो सेना मौजूद थी उसीको लेकर बीदर पहुँचा। लगभग एक मास तक तोप बंदूक की लड़ाई होती रही। अंत में संधि हो गई। इस समय रघुनाथराव उन्मत्त हो रहा था इसलिए संधि का विचार न

कर लौटते समय उसने इसके अधीनस्थ महालों से मनमाना धन ले लिया। इसी समय बालाजीराव के पुराने सर्दारों ने, जो रघुनाथ के कड़े स्वभाव से बिगड़ गए थे और निर्दोष नारायणराव को मारने से शत्रु हो गए थे, इसके पास आकर सहायता माँगी। इसने भी सहायता पर कमर बाँधी और कल्याण दुर्ग के पास से मृच दुर्ग तक और वहाँ से बुर्हानपुर तक रघुनाथराव का पीछा करने से हाथ नहीं उठाया। वर्षाकाल व्यतीत करने के लिए यह औरंगाबाद चला आया। दूसरे वर्ष फिर उसी ओर चला यहाँ तक कि रघुनाथराव नर्वदा नदी के उस पार चला गया। इसके अनंतर बरार प्रांत के कामों को ठीक करने के लिए, जहाँ रघूजी भोंसला के पुत्रों साबाजी व माधोजी में आपस में झगड़ा था और वे वहाँ के नायब नाज़िम इस्माइल खाँ बहादुर से विद्रोह रखते थे, रवानः होकर यह नागपुर तक पहुँचने के पहिले न रुका, जो रघूजी के आदमियों के रहने का स्थान था। यद्यपि साबाजी इसके पहुँचने के पहिले अपने भाई के हाथ मारा जा चुका था पर नागपुर से लौटते समय माधोजी ने भी संधि करना उचित समझकर शत्रुता से हाथ खींच लिया। इसी समय इसकी सरकार का दीवान रुक्नुद्दौला, जो साधारण मनुष्य था, इस्माइल खाँ के सिपाहियों द्वारा सन् ११८९ हि० में मारा गया और उक्त इस्माइल खाँ भी सेना के पास पहुँचकर सरकारी सेना से वीरता से लड़ता हुआ मारा गया।

इसके अनंतर निज़ामुद्दौला नये उत्साह से अपने राज्य के कार्य में लगकर उसे पूरा करने लगा और वास्तव में ये कार्य

इसने बहुत समझकर किए। अपनी प्रजाप्रियता तथा दया करने में एक था। दक्षिण के छोटे बड़े सभी अपने भाग्य के अनुसार इससे पुरस्कृत हुए। यद्यपि यह मिलनसार तथा अधिक क्रोधी न था पर इसके दरबार में रोब छाया रहता था। यद्यपि शान व शौकत सुलतानों के ऐसी थी पर गरीबों पर कृपादृष्टि रखता था। सैनिक गुणों, तीर तथा गोली चलाने और घुड़सवारी का ज्ञाता था। सुन्नी मतानुसार ईश्वरी भय मानता और उसके कार्यों में लगा रहता। ईश्वरी कृपा से इन गुणों के साथ साथ सौंदर्य भी मिला था और इसे आराम की लंबी अवस्था भी मिली थी। इसका बड़ा पुत्र मीर अहमद ख़ाँ बहादुर, जिसकी पदवी अमीरुल्मुमालिक आलीजाह थी, बुद्धिमान था। दूसरा पुत्र मीर अकबर अली ख़ाँ उर्फ़ मीर फौलाद ख़ाँ था। यद्यपि यह अल्पवयस्क है पर होनहार है। और भी संतान हैं। वह इन सबको अपनी साया में रख कर योग्य बना रहा है।



नूर क़ुलीज

यह अल्तून क़ुलीज ख़ाँ का पुत्र था, जो अकबरी क़ुलीज ख़ाँ का एक संबंधी था। अकबर के राज्य में पाँच सदी मंसब तक पहुँचकर २१ वें वर्ष में जब बादशाह अजमेर से राणा के राज्य में गोघूँदा पहुँचा तब यह क़ुलीज ख़ाँ के साथ ईडर भेजा गया। वहाँ के राजा के साथ युद्ध में हाथ में चोट लगने पर भी बराबर युद्धीय प्रयत्न करता रहा। २६ वें वर्ष में शाहजादा सुलतान मुराद के साथ मिर्जा मुहम्मद हकीम की चढ़ाई पर गया। ३१ वें वर्ष में गुजरात के अध्यक्ष क़ुलीज ख़ाँ ने अमीन ख़ाँ गोरी की सहायता को भेजा। ३२वें वर्ष ख़ान-ख़ानाँ के साथ दरबार आया।

नौजर सफवी, मिर्जा

यह मिर्जा मुजफ्फर हुसेन कंधारी के द्वितीय पुत्र मिर्जा हैदर का पुत्र था। जब मिर्जा मुजफ्फर का विश्वास अकबरी दरबार में ठीक न बैठा तब उसके पुत्रगण भी कुछ समय तक दूर रहे। जहाँगीर के राज्यकाल में मिर्जा हैदर पाँच सदी १५० सवार के मंसब तक पहुँचा था। जब हिंदुस्तान के राज-सिंहासन की शाहजहाँ ने शोभा बढ़ाई तब इसके प्राचीन वंश के कारण इसका मंसब एक हजारी २०० सवार का हो गया। ४थे वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। इसका पुत्र मिर्जा नौजर-सौभाग्य से बादशाही कृपापात्र होकर १८वें वर्ष में दो हजारी २००० सवार का मंसबदार हो गया। १९वें वर्ष में पाँच सदी मंसब में बढ़ाया गया और कोशबेगी की सेवा मिली। इसी वर्ष पाँच सदी और बढ़ने से इसका मंसब तीन हजारी हो गया। इसके बाद कृपा के कारण २२वें वर्ष में सौर तुला के समय इसका मंसब चार हजारी ३००० सवार का हो गया। कंधार की पहिली चढ़ाई में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ बाएँ भाग की सेना का सर्दार नियत हुआ। मोर्चे बाँटने में चिलरनिया पहाड़ के पीछे के मोर्चे की रक्षा इसे तथा इसके भाई मिर्जा सुलतान को मिली और इन दोनों ने अच्छा प्रयत्न भी किया। २३वें वर्ष में एतकाद खाँ के स्थान पर अवध के अंतर्गत बहराइच की जागीर मिलने

पर वहाँ का प्रबंध करने को भेजा गया। इसके बाद मांडू का फौजदार हुआ।

बीमारी के बहुत दिनों तक रहने तथा असाध्य हो जाने से यह काम करने के योग्य नहीं रह गया। यहाँ तक कि यह अपनी जागीर की भी रक्षा नहीं कर सकता था इसलिए २६वें वर्ष में इसे सेवाकार्य से छुट्टी मिली और तीस सहस्र रुपया वार्षिक वृत्ति नियत कर दी गई। यह भी आज्ञा हुई कि इसके पिता के चाचा रुस्तम कंधारी का पुत्र मिर्जा मुराद इल्तफात खाँ पटना में एकांतवास कर रहा है इसलिए यह भी वहीं जाकर रहे। यह कुछ दिनों बाद पटने से आगरे आकर बड़े आराम से दिन रात एकांत में व्यतीत करता रहा। औरंगजेब के ७वें वर्ष में सन् १०७४ हि० (सन् १६६४ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई। मिर्जा व्यय करने में तेज था, जो आता उड़ा देता पर बहुधा गरीबों को भी देता। यह शेर अपनी हालत पर सजअ की तरह जोड़ा था—शेर

नौजर मिस्कों अगर जर रक्खे।
बेनवाई जहाँ में न बच जावे॥[1]

---

१. नौज़र = नया धन। मिस्कीं = गरीब। बेनवाई = दरिद्रता।

भौगोलिक अनुक्रम

ध

अनुक्रम

(व्यक्तिगत)

ख